कोशविज्ञान

© डॉ० भोलानाथ तिवारी
मूल्य : सोलह रुपये
संस्करण : 1979
प्रकाशक :
शब्दकार
2203, गली डकौतान
तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006
आवरण :
अशोक धीमान
आवरण-मुद्रक :
परमहंस प्रेस, दिल्ली-110006
मुद्रक :
शान प्रिन्टर्स, दिल्ली-110032
पुस्तक-बंध :
खुराना बुक बाइंडिंग हाउस,
दिल्ली-110006

# कोशविज्ञान

डॉ० भोलानाथ तिवारी

मित्रवर

डॉ० विद्यानिवास मिश्र को

सस्नेह

## दो शब्द

हिन्दी में कोश-विषयक चिन्तन का आरंभ यों तो 19वीं सदी में उन कोशों के संपादकों द्वारा शुरू हो गया था, जिन्होंने हिन्दी के एकभाषिक (अर्थात् हिन्दी-हिन्दी) कोशों की रचना की। किन्तु, हिन्दी के द्विभाषिक (क. हिन्दी-अन्य भाषा; ख. अन्य भाषा-हिन्दी) कोशकारों ने भी इस दिशा में कुछ न सोचा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हाँ, उनके चिन्तन का जो स्वरूप कोशों की भूमिका में मिलता है, प्रायः हिन्दीतर भाषाओं में मिलता है। यों यदि भाषा के माध्यम का प्रश्न न उठाएँ तो 19वीं सदी में इस दिशा में सोचनेवालों में शेक्सपीयर (1817), आदम (1829), फ़ेलन (1884), प्लैट्स (1884) आदि का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। भूमिका के अतिरिक्त, किसी कोश के वास्तविक निर्माण में प्रयुक्त प्रविधि भी कोशकार के कोशविज्ञान-विषयक चिन्तन पर कुछ प्रकाश डालती है। इन सभी दृष्टियों से 19वीं सदी में प्लैट्स ही सर्वोपरि हैं।

20वीं सदी में पहला प्रमुख चिन्तन 'हिन्दी शब्द-सागर' की भूमिका के रूप में उसके संपादकों (श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल आदि) का मिलता है। वैयक्तिक स्तर पर इस सदी में कोशकार और कोशविज्ञानी के रूप में हिन्दी में पहला नाम रामचन्द्र वर्मा का आता है। वर्माजी 'हिन्दी शब्द-सागर' के संपादकों में थे तथा बाद में 'प्रामाणिक हिन्दी कोश,' 'उर्दू-हिन्दी कोश' तथा 'मानक हिन्दी कोश'—इन तीन कोशों का उन्होंने संपादन किया; साथ ही, 'शब्द-साधना,' 'शब्दार्थ-मीमांसा' और 'शब्दार्थ-विवेचन' के रूप में शब्दों के अर्थ एवं पर्यायों में अर्थ-भेद पर भी काम किया। इन सबके अतिरिक्त इस क्षेत्र में उनकी विशिष्ट कृतियाँ 'हिन्दी-कोश-रचना : प्रकार और रूप' तथा 'कोश-कला' भी हैं, जो भारतीय साहित्य में इस क्षेत्र में प्रथम प्रयास हैं, और व्यावहारिक दृष्टि से काफ़ी अच्छी हैं।

कोशकार के रूप में दूसरा नाम डॉ० हरदेव बाहरी का लिया जा सकता है, जिन्होंने 'हिन्दी सिमेंटिक्स' (हिन्दी अर्थ-विचार) रूप में हिन्दी की आर्थी-संरचना पर विचार किया, तथा 'बृहद् अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश,' 'प्रसाद साहित्य कोश' और 'सूरकोश'—इन तीन कोशों का संपादन किया। साथ ही इस विषय पर कुछ लेख भी लिखे।

डॉ० कामिल बुल्के ने केवल एक ही कोश संपादित किया है 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश,' किन्तु निश्चित रूप से, समवेततः, अपनी सीमाओं के बावजूद, वह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कोश है। कोई भी दूसरा कोश, एकभाषिक हो अथवा द्विभाषिक, कोशविज्ञान की दृष्टि से उससे अच्छा हिन्दी में नहीं है।

इन पंक्तियों के लेखक ने भी इस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत काम किया है। मेरे संपादित कोशों में (1) तुलसी-शब्द-सागर, (2) हिन्दी मुहावरा-कोश, (3) हिन्दी बाल-कोश, (4) वृहत् पर्यायवाची कोश, (5) हिन्दी साहित्य की अन्त-र्कथाएँ, (6) कथाकोश, (7) भाषाविज्ञान-कोश, (8) व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश, (9) व्यावहारिक हिन्दी कोश, (10) ताजुब्बेकी-हिन्दी कोश, (11) खालिकबारी (हिन्दी का प्राचीनतम कोश), (12) वृहद् लोकोक्ति कोश आदि मुख्य हैं। सम्मेलन से प्रकाशित मानक हिन्दी कोश का संकलन-कार्य इलाहाबाद में एक वर्ष से ऊपर, मेरी देख-रेख में हुआ, और बाद में तत्का-लीन (सम्मेलन के) रिसीवर श्री जगदीशस्वरूप ने श्री रामचन्द्र वर्मा से राय लेकर उसका व्युत्पत्ति-कार्य भी करने को मुझसे कहा था, किन्तु उसी बीच प्रयाग छोड़ दिल्ली आ जाने से, मैं चाहते हुए भी उसे नहीं कर सका। सम्मेलन से प्रकाशित 'मानक अंग्रेज़ी कोश' का कार्य भी दो वर्षों तक दिल्ली में श्री रामचन्द्र टंडन के निर्देशन में मेरी देख-रेख में चला, यों प्रारम्भ में प्रयाग में भी कुछ दिनों के लिए जब डॉ० बाहरी ने वह कार्य छोड़ दिया था तो भी मुझे देखना पड़ा था।

यों कोश-विषयक 10-12 लेख भी समय-समय पर संगम, अमृतपत्रिका, सम्मे-लन-पत्रिका, सप्तसिंधु, तथा भाषा आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। कोशविज्ञान के पूरे विषय पर सन् 1960 के आसपास मेरा एक लेख छपा था, जो बाद में मेरी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' में एक अध्याय के रूप में प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार कोश के लिए सामग्री-संकलन, व्यवस्था और संपादन तथा चिन्तन से मेरा सम्बन्ध लगभग 1949 से है। 1968 में अपनी पुस्तक 'शब्दों का अध्ययन' में मैंने कोश-विषयक काफ़ी बातों को विभिन्न अध्यायों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से लिया था। प्रस्तुत पुस्तक में कोशविज्ञान और कोशकला में पूरे आयाम को, हिन्दी में ही नहीं, कदाचित् भारतीय भाषाओं में प्रथम बार समेटने का प्रयास किया जा रहा है। यों यह पुस्तक कुछ और बड़ी बन गई थी, किन्तु पुस्तक को छोटी रखने के प्रयास में मुझे अन्त के कुछ अध्याय इसमें देने से रोकने पड़े हैं।

इस दिशा में डॉ० जखमोला, डॉ० वंशीधर पंडा, तथा डॉ० युगेश्वर ने भी अपने शोधप्रबन्धों में अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है। डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ० रोहरा, तथा डॉ० सूरजभान सिंह आदि कुछ लोगों ने भी इधर कोश-निर्माण के विभिन्न पक्षों पर अच्छे लेख लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में मैं उपर्युक्त सभी से लाभान्वित हुआ हूँ तथा सभी के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

डॉ० शशि प्रभा, डॉ० किरणबाला, इन्दुबाला, मुकुलप्रियदर्शिनी, राजीव ऋतुपर्ण तथा मेरी पत्नी दुलारी ने भी मेरी तरह-तरह से इस पुस्तक में सहा-यता की है। आज पुस्तक की समाप्ति पर, विभिन्न भावनाओं से इन सभी का स्मरण आना सर्वथा स्वाभाविक है।

मित्रवर जवाहर चौधरी ने मेरी अस्वस्थता एवं व्यस्तताओं के बावजूद इस समय मुझसे यह पुस्तक लिखवा ली, और इतनी जल्दी प्रकाशित कर दी, इसके लिए उनके प्रति मेरा हार्दिक धन्यवाद।

—भोलानाथ तिवारी

## क्रम

कोशविज्ञान

# 1. कोश और उसके प्रकार

## कोश

संस्कृत में 'कोश' शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से ही मिलने लगता है। ऋग्वेद में यह शब्द अनेक वार आया है तथा दोनों ही अक्षरों (श, ष) से युक्त वर्तनियों (कोश, कोष) में। यों ऋग्वेद में 'कोश' रूप में यह अधिक आया है, और 'कोष' रूप में कम। 'कोश' शब्द की मुख्यतः दो व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं। कुछ लोगों ने इसे 'कुश्' (निरुक्त, 5-26) धातु से जोड़ा है तो कुछ ने 'कु' (उणादि, 2-3-140) से। इन धातुओं का अर्थ 'घेरना', 'ढकना', 'अपने में रखना' आदि है। 'कोश' के पुराने अर्थ पीपा (द्रव पदार्थ रखने का वर्तन), वादल, वाल्टी, कटोरा, म्यान, ढक्कन, खोल, सन्दूक, थैली आदि हैं। लगता है कि मूलतः उन चीज़ों को 'कोश' कहते थे, जिनमें कुछ रखा जाए। इसी से विकसित होकर यह शब्द खज़ाना' का वाचक हो गया, जिसमें रुपये रखे होते हैं, और फिर बौद्ध तथा जैन साहित्य में यह उस ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसमें गाथाएँ या छन्द आदि संगृहीत होते थे। इसी के साथ उन पुस्तकों को भी 'कोश' कहने लगे, जिनमें 'शब्द' तथा उनके 'अर्थ' होते हैं। हरिवंश पुराण में 'कोशकार' का अर्थ 'सन्दूक वनाने वाला' है किन्तु रामतापनी उपनिषद् में इसका अर्थ, आधुनिक अर्थ में 'कोशकार' है। वस्तुतः 'शब्दकोश' अर्थ में 'कोश' (कोष) शब्द का प्रयोग वहुत पुराना नहीं है। भारतीय परंपरा में पहले 'निघंटु', 'नाममाला', 'माला', 'शब्दार्णव', 'अभिधान' आदि शब्दों का 'शब्दकोश' अर्थ में प्रयोग होता था। अमरसिंह के 'अमरकोष' नाम से प्रसिद्ध कोश का भी मूल नाम 'अमरकोष' न होकर 'नाम-लिंगानुशासन' है। यों इसमें तीन कांड हैं, अतः इसे 'त्रिकांड' भी कहा गया है। वहुत वाद में जव 'कोष' शब्द का 'शब्दकोश' के अर्थ में प्रयोग चल पड़ा, तव इस ग्रन्थ को 'अमरकोष' या देवभाषा का शब्द-संग्रह होने के कारण 'देवकोष' कहा गया। कुछ लोग इसे 'निघंटु' भी कहते हैं। यह स्मरण रखने की वात है कि संस्कृत में इसे 'कोश' और 'कोष' दोनों ही रूपों में लिखते रहे हैं, तथा दोनों ही वर्तनियों का प्रयोग 'शब्दकोश' तथा 'खज़ाना' दोनों अर्थों में होता रहा है। उसी परंपरा में हिन्दी में भी इन दोनों अर्थों में 'कोश'-'कोष' दोनों ही प्रयुक्त होते रहे हैं। 1950 के वाद हिन्दी में यह परंपरा चली कि 'कोष' का प्रयोग तो 'खज़ाने' के लिए हो तथा 'कोश' का शब्दकोश के लिए।

इस प्रसंग में अंग्रेज़ी शब्द 'डिक्शनरी' भी देखा जा सकता है। मूलतः यह शब्द लैटिन का dicere है जिसका अर्थ होता है 'कहना' या 'वोलना'। इससे
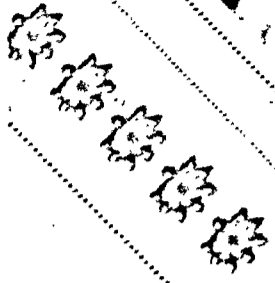
'डिक्शन' शब्द बना जिसका मूल अर्थ है 'जो बोला या कहा जाय' या 'शब्द'। इन्हीं शब्दों का समूह 'डिक्शनरी' है। अंग्रेज़ी में 'कोश' को 'लेक्सिकन' भी कहते हैं, जिसका सम्बन्ध मूलत: यूनानी धातु legein से है। इस धातु का मूल अर्थ 'कहना' या 'बोलना' है। इससे यूनानी शब्द lexis बना है, जिसका अर्थ 'शब्द' है। lexis से ही यूनानी भाषा में lexikon बना जिसका अर्थ 'शब्दकोश' है। यही अंग्रेज़ी में lexicon हो गया है। अंग्रेज़ी में 'ग्लॉसरी' (glossary) भी 'शब्दकोश' को ही कहते हैं। इसका मूल यूनानी glossa है जिसका अर्थ है ऐसा 'शब्द' जिसका अर्थ या जिसकी व्याख्या अपेक्षित हो। अंग्रेज़ी में प्राय: 'शब्दकोश' के अर्थ में एक शब्द थेसॉरस (thesaurus) भी चलता है जिसका, सम्बन्ध यूनानी शब्द thesauros से है, जिसका मूल अर्थ 'ख़ज़ाना' या 'भंडार' होता है। अब अंग्रेज़ी में कई प्रकार के कोशों (जैसे पर्याय-विलोम युक्त) को 'थेसॉरस' कहते हैं।

अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू में 'शब्दकोश' को 'लुग़त' कहते हैं। यह शब्द मूलत: अरबी का है तथा इसका 'माद्दा' (धातु) है 'लाम-ग़ैन-ते' जिसका अर्थ है 'बोलना'। इसी आधार पर प्राचीन अरबी में 'लुग़त' का प्रयोग 'शब्द' के लिए हुआ, और फिर 'शब्दों के संग्रह' को भी 'लुग़त' कहने लगे।

इस तरह हिन्दी 'कोश' तथा अंग्रेज़ी 'थेसॉरस' मूल अर्थ की दृष्टि से एक-दूसरे के समान हैं, तो अंग्रेज़ी 'डिक्शनरी' तथा 'लेक्सिकन' और अरबी-फ़ारसी-उर्दू 'लुग़त' मूलार्थ की दृष्टि से एक-दूसरे के समान हैं।

## कोश की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने अपने ग्रन्थों और लेखों में 'कोश' के नाम पर 'शब्दकोश' की परिभाषा दी है, जो कुछ इस प्रकार है : कोश उस ग्रन्थ को कहते हैं, जिसमें वर्णानुक्रम से शब्द तथा उनके अर्थ दिये रहते हैं। कहना न होगा कि यह कोश की सर्व-समावेशी परिभाषा नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि 'शब्दकोश' में शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के अर्थ होते हैं, 'विलोम कोश' में विलोम होते हैं, 'पर्याय कोश' में शब्दों के पर्याय होते हैं, विषय-विशेष के कोशों में उसके तकनीकी शब्दों या प्रविष्टियों के माध्यम से उस विषय को समझाया जाता है, विश्व-कोशों में तरह-तरह की प्रविष्टियों के द्वारा अधिक-से-अधिक विषयों को स्पष्ट किया जाता है, नामकोशों में व्यक्ति या भौगोलिक नामों का परिचय होता है तथा उद्धरणकोश में उद्धरणों का संकलन होता है। कहना न होगा कि इन सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए कोश की परिभाषा देना काफ़ी कठिन है। यों काम-चलाऊ ढंग से 'कोश' को कुछ इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है : **कोश ऐसे सन्दर्भ ग्रन्थ को कहते हैं, जिसमें भाषा-विशेष के शब्दादि का संग्रह हो, या संग्रह के साथ उनके अर्थ, पर्याय या विलोम हों; या विशिष्ट या विभिन्न विषयों की प्रविष्टियों की व्याख्या, नामों (स्थान, व्यक्ति आदि) का परिचय, या कथनों आदि का संकलन क्रमबद्ध रूप में हो।**

इस परिभाषा में 'क्रमबद्ध' शब्द ध्यान देने योग्य है। प्राय: इसके स्थान पर

लोगों ने 'वर्णानुक्रम' (alphabetical order) का प्रयोग किया है, किन्तु यह उल्लेख्य है कि विश्व की सभी भाषाओं के कोश सदा-सर्वदा वर्णानुक्रम से ही नहीं बनाए जाते रहे हैं। इसीलिए यहाँ 'क्रमबद्ध' शब्द का प्रयोग किया गया है। यों 'क्रमबद्धता' मोटे रूप से आदि-वर्णानुक्रम, अंत्यवर्णानुक्रम (कुछ संस्कृत कोशों में), अक्षर-संख्याक्रम (कुछ चीनी तथा संस्कृत कोशों में) या विषयक्रम (जैसे कुछ पर्याय कोश) की हो सकती है।

यहाँ कोश की सार्वसमावेशी तथा अत्यन्त व्यापक किन्तु कामचलाऊ परिभाषा दी गयी। वास्तविकता यह है ठीक परिभाषा अलग-अलग प्रकार के कोशों की तो दी जा सकती है, सभी प्रकार के कोशों की एक साथ नहीं। इसीलिए ठीक परिभाषा के लिए आगे 'कोशों के प्रकार' शीर्षक भाग देखा जा सकता है।

## कोश की उपयोगिता

उपयोगिता का प्रश्न भी 'कोश के प्रकार' से ही बहुत कुछ जुड़ा है। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि व्युत्पत्ति, मानक वर्तनी, व्याकरणिक कोटि, मानक उच्चारण, अर्थ, मानक प्रयोग, परिचय, पर्यायता, अनेकार्थता तथा एक भाषा के शब्द का दूसरी भाषाओं में प्रतिशब्द आदि की दृष्टि से कोश का उपयोग 'अज्ञात' को 'ज्ञात' बनाने के लिए, 'अर्धज्ञात' को 'पूर्णज्ञात' बनाने के लिए, तथा शंकाओं के समाधान के लिए किया जाता है। अर्थात् अलग-अलग प्रकार के कोशों का अलग-अलग उपयोग है। अर्थात् शब्दकोश का एक उपयोग है, तो विश्वकोश, विषयकोश (जैसे अर्थशास्त्र कोश, भाषाविज्ञान कोश, मनोविज्ञान कोश आदि) का दूसरा, तथा प्रयोगकोश का तीसरा। ऐसे ही पारिभाषिक कोश का एक उपयोग है, तो पर्याय कोश और उद्धरण कोश का दूसरा, या व्युत्पत्ति कोश का एक उपयोग है तो उच्चारण कोश का कुछ और।

## कोश-निर्माण तथा कोशकार

'कोश,' विशेषतः 'शब्दकोश' बनाना कितना कठिन काम है, इसका अनुमान कोई कोशकार ही लगा सकता है। 16-17वीं सदी के प्रसिद्ध कोशकार स्कैलिगर (J. J. Scaliger) ने लैटिन भाषा में लिखित अपने एक सुन्दर छन्द में कहा है कि बड़े-से-बड़े अपराधी को कोई और दंड न देकर, कोश बनाने का दंड देना पर्याप्त है, क्योंकि इस दंड में वे सभी प्रकार की पीड़ाएँ होती हैं, जो किसी भी अन्य प्रकार के दंड में सम्भावित हैं।

डॉ० सैमुअल जानसन ने कोशकार को ऐसा अथक परिश्रमी कहा था जो किसी भी दृष्टि से किसी की कोई हानि नहीं करता (harmless drudge)। यह तो कहना कठिन है कि कोशकार हानि नहीं कर सकता, उसकी ग़लती अनेक प्रकार की हानियों की जननी हो सकती है, हाँ वह अथक परिश्रमी अवश्य होता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। यदि वह अथक परिश्रमी न हो, तो ऐसा थका देने वाला तथा कठिन काम कर न सके।

कहा जाता है, किसी न्यायाधीश ने एक बार किसी अपराधी को सज़ा दी।
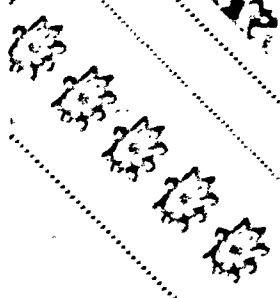
सजा में दो विकल्प थे। या तो वह किसी चपटी नाक वाली लड़की से विवाह करे, या फिर एक कोश बनाए। अपराधी ने निश्चय ही चपटी नाक वाली लड़की से विवाह करना पसन्द किया होगा, क्योंकि वही अपेक्षाकृत कम कष्टप्रद है।

इस तरह कोश-निर्माण बहुत ही कठिन काम है तथा कोशकार को बहुत ही परिश्रमी, धैर्यवान तथा लगन वाला होना चाहिए।

## कोशों का वर्गीकरण : मुख्य आधार

कोशों के वर्गीकरण के मुख्य आधार निम्नांकित सात हो सकते हैं :

(1) उद्देश्य—कोश का उद्देश्य मोटे रूप से **अर्थ**, **प्रतिशब्द**, **पर्याय**, **विलोम**, **परिचय**, **विवेचन**, **प्रयोग**, **व्युत्पत्ति**, **उच्चारण**, **संग्रह** आदि देना हो सकता है। शब्दकोश में अर्थ होता है, दो या अधिक भाषाओं के तुलनात्मक पारिभाषिक कोशों में प्रतिशब्द, पर्याय और विलोम कोशों में क्रमशः पर्याय और विलोम, तथा व्युत्पत्ति और उच्चारण कोशों में व्युत्पत्ति और उच्चारण, प्रयोग कोशों में प्रयोग, विश्वकोशों में प्रायः परिचय होता है तथा विषय कोशों (जैसे समाजशास्त्र कोश, शिक्षा कोश, भाषाविज्ञान कोश) में परिचय और विवेचन। संग्रह में उद्धरण कोश, सूक्ति कोश, शब्दानुक्रमणी आदि आते हैं। कुछ कोश ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें इन उद्देश्यों में से कई को ले लिया गया हो। उदाहरण के लिए, 'हिन्दी शब्द सागर' में अर्थ, व्युत्पत्ति, परिचय तीनों हैं।

(2) भाषा—भाषा के आधार पर **एकभाषिक**, **समभाषिक**, **द्विभाषिक**, **त्रिभाषिक** तथा **बहुभाषिक** कोश हो सकते हैं।

(3) प्रविष्टि—प्रविष्टि के आधार पर **शब्दों** (सामान्य शब्दों, पारिभाषिक शब्दों तथा भौगोलिक-ऐतिहासिक-पौराणिक नामों आदि के), **मुहावरों**, **लोकोक्तियों** आदि के अलग-अलग कोश हो सकते हैं।

(4) काल—काल की दृष्टि से **एककालिक** कोश हो सकते हैं। (जिनमें किसी एक काल के शब्दादि को लिया गया हो। उदाहरण के लिए, बँगला का एक कोश 'चलंतिका' है, जिसमें आज की बँगला भाषा में चलने वाले शब्दों आदि को ही लिया गया है) तथा **ऐतिहासिक या कालक्रमिक** (कोश जिनमें ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से विवेचन होता है। बड़ी आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी इसी प्रकार की है। पूना से प्रकाशित हो रहा संस्कृत कोश भी इसी तरह का है)।

(5) अर्थ—अर्थ के आधार पर समानार्थी, विलोमार्थी, अनेकार्थी, एकार्थी आदि कोश हो सकते हैं।

(6) प्रविष्टि-क्रम—प्रविष्टियों के क्रम की दृष्टि से **आदिवर्णानुक्रमानुसारी** (आजकल के अधिकांश कोश ऐसे ही हैं), **अक्षरसंख्यानुसारी** (चीनी भाषा के कई कोश इस तरह के हैं, संस्कृत में भी कुछ में इस क्रम से शब्द रखे गये हैं), **अंत्यवर्णानुक्रमानुसारी** (संस्कृत के कई कोशों में इस क्रम का प्रयोग मिलता है), **धातुक्रमानुसारी** (सर्दुल खूरी का अरबी कोश ऐसा ही है। ऐसे कोशों में धातुओं को क्रम से रखते हैं तथा हर धातु से बनने वाले शब्द और उनके अर्थ धातुओं के पेटे में ही दिए जाते हैं), **विषयानुसारी** (संस्कृत का अमर कोश,

रॉजिट का अंग्रेज़ी थेसॉरस, मेरा पर्याय कोश इसी प्रकार है। इनमें अलग-अलग विषयों के शब्द अलग-अलग होते हैं) आदि कोश हो सकते हैं।

(7) **विशिष्ट दृष्टिकोण**—एक दृष्टि से शब्दकोश दो प्रकार के हो सकते हैं : सामान्य और भाषावैज्ञानिक। सामान्य कोश से तो हम परिचित हैं, भाषावैज्ञानिक कोश में अर्थीय घटक (जैसे माता = + मानव, − पुरुष, + वयस्क, + संतान), प्रयोग और रूपांतरण-विशिष्टिता (जैसे धातु की प्रविष्टि में : प्रेरणार्थक रूप बनेगा या नहीं, सकर्मक है तो उससे अकर्मक बनेगा या नहीं, अकर्मक है तो उससे सकर्मक बनेगा या नहीं, उससे आज्ञा का रूप बनेगा या नहीं, केवल सामान्य है या रंजक भी, या वृत्तिक (modal) भी या कालद्योतक भी या योजक भी; संज्ञा है तो गणनीय या अगणनीय; विशेषण है तो विशेष्य विशेषण अथवा विधेय विशेषण, अथवा दोनों, अथवा प्रविशेषण, अथवा सभी, किसके साथ सहप्रयोग हो सकता है, किसके साथ नहीं आदि-इत्यादि) आदि ऐसी बातें दी जाती हैं, जो भाषाविज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। अनुवादी मशीन के लिए अपेक्षित द्विभाषिक कोश में सामान्य और भाषावैज्ञानिक कोशों दोनों ही का एक सीमा तक समन्वय होता है।

एक दूसरी दृष्टि से कोश दो प्रकार के हो सकते हैं : सामान्य और विश्वकोशीय। सामान्य में अर्थ आदि होते हैं तो विश्वकोश में विस्तृत परिचय आदि।

## कोशों के प्रकार

ऊपर कोशों के वर्गीकरण के आधारों को देखा गया। मैंने अपने 'भाषाविज्ञान' में कोशों को मूलतः चार प्रकारों का कहा है : व्यक्तिकोश, पुस्तककोश, भाषाकोश, विषयकोश। यों तो इनमें भी काफ़ी तरह के कोश समाहित किए जा सकते हैं, किन्तु यहाँ एक नये ढंग से कोशों को रखा जा रहा है—

(1) शब्द कोश

- (अ) पुस्तक कोश
- (आ) साहित्यकार कोश
- (इ) साहित्यधारा कोश
- (ई) काल कोश
- (उ) बोली कोश
- (ऊ) भाषा कोश

भाषा और बोली के कोश मोटे रूप से 17-18 प्रकार के हो सकते हैं : (क) वर्णनात्मक कोश; (ख) ऐतिहासिक कोश; (ग) तुलनात्मक कोश : (i) सामान्य; (ii) पारिभाषिक शब्दावली; (घ) शब्द-परिवार कोश; (ङ) धातु कोश; (च) उपसर्ग कोश; (छ) प्रत्यय कोश; (ज) संज्ञा कोश; (झ) विशेषण कोश; (ञ) अव्यय कोश; (ट) प्रयोग कोश; (ठ) उच्चारण कोश; (ड) व्युत्पत्ति कोश; (ढ) पर्याय कोश; (ण) विलोम कोश; (त) संक्षेप कोश; (थ) अनेकार्थ कोश; (द) तुक कोश।

(2) विषय कोश

(अ) एकविषय कोश
- (क) कोश
- (ख) विश्वकोश
- (ग) परिभाषा कोश
- (घ) उद्धरण (सूक्ति) कोश

(आ) अनेकविषय कोश
- (क) विश्वकोश
- (ख) नामकोश
- (ग) उद्धरण (सूक्ति) कोश

(3) अन्य कोश
- (अ) लोकोक्ति कोश
- (आ) मुहावरा कोश
- (इ) प्रयोग कोश
- (ई) शब्दसूची (अनुक्रमणिका)

यों यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत अच्छा होते हुए भी पूर्णतः निर्दोष नहीं कहा जा सकता। हाँ, काम चलाने के लिए बुरा नहीं है। इसमें अब तक बनाये जाने वाले प्रायः सभी प्रकार के कोशों को लेने का यत्न किया गया है, किन्तु कोश का विषय इतना विशाल है, और नये-नये तरह के कोशों के निर्माण की सम्भावनाएँ इतनी अधिक हैं, कि ऐसा वर्गीकरण देना संभव नहीं है, जो सदा-सर्वदा संगत हो। आगे इन विभिन्न प्रकार के कोशों में कुछ मुख्य को अलग-अलग लिया जा रहा है।

पुस्तक-कोश—पुस्तक कोश गद्य या पद्य की किसी भी पुस्तक का हो सकता है। हिन्दी में 'विनयपत्रिका' के शब्दों का 'विनय कोश' (महावीरप्रसाद मालवीय) तथा 'मानस' के शब्दों का 'रामायण कोश' (केदारनाथ भट्ट) प्रकाशित हो चुके हैं। ये दोनों ही कोश सारे शब्दों के न होकर केवल मुख्य शब्दों के हैं। यों किसी पुस्तक के सभी शब्दों के भी कोश बन सकते हैं।

साहित्यकार-कोश—किसी भी साहित्यकार द्वारा प्रयुक्त सारे या प्रमुख शब्दों के कोश इसके अन्तर्गत आते हैं। तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दों का 'तुलसी शब्द सागर' (संग्रह—हरिगोविन्द तिवारी, संपादन—भोलानाथ तिवारी), सूरदास के शब्दों (तथा ब्रजभाषा के अन्य शब्दों का भी) का 'ब्रजभाषा सूर कोश' (प्रेमनारायण टंडन), मीरां कोश (शशिप्रभा), कबीर कोश (परशुराम चतुर्वेदी, तथा महेन्द्र) आदि इसी प्रकार के हैं।

साहित्यधारा-कोश—काव्य या गद्य की धाराओं का भी कोश हो सकता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में 'सन्त काव्यधारा' का कोश बन रहा है। संपादक हैं रमेशचन्द्र मिश्र। राम काव्यधारा, कृष्ण काव्यधारा, छायावादी काव्यधारा आदि अन्य धाराओं के भी इस प्रकार के कोश बन सकते हैं।

काल-कोश—किसी काल-विशेष के पूरे साहित्य के भी कोश बन सकते हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक तथा रसालसिंह 'आदिकालीन हिन्दी कोश' बना रहे हैं। रीतिकाल का एक कोश भी प्रकाशित हो चुका है। इस प्रकार का कोश भक्तिकाल या अन्य कालों का भी हो सकता है।

**बोली-कोश**—किसी भी बोली का कोश इसके अन्तर्गत आता है। हिन्दी में अवधी कोश (रामाज्ञा द्विवेदी समीर), ताजुव्वेकी कोश (भोलानाथ तिवारी), मगही कोश (सम्पत्ति अर्याणी) आदि कई बोलियों के कोश निकल चुके हैं।

**भाषा-कोश**—किसी भाषा के कोश को भाषाकोश कह सकते हैं। जैसे हिन्दी कोश, अंग्रेजी कोश, रूसी कोश आदि।

बोली और भाषा कोश अपनी प्रकृति में अनेकानेक दृष्टि से समान होते हैं। ये दोनों ही कोश मुख्यतः निम्नांकित प्रकार के हो सकते हैं :

**वर्णनात्मक कोश**—यह किसी भाषा या बोली का किसी एक काल का कोश होता है। इसमें उसी काल में प्रयुक्त होने वाले शब्द तथा उसी काल में प्रयुक्त उन शब्दों के अर्थ दिए जाते हैं। इस कोश में जिन शब्दों के एक से अधिक अर्थ होते हैं, उन अर्थों को मनमाने क्रम से न देकर, प्रयोगाधिक्य के आधार पर दिया जाता है। अर्थात् वह अर्थ सबसे पहले दिया जाता है, जिसका सर्वाधिक प्रयोग होता है, तथा वह अर्थ सबसे बाद में दिया जाता है, जिसका प्रयोग सबसे कम होता है। बीच के अर्थों को भी इसी प्रकार प्रयोगाधिक्य या प्रयोगावृत्ति के क्रम से रखते हैं।

**ऐतिहासिक कोश**—यह एक काल का न होकर कई कालों का होता है। अर्थात् किसी भाषा या बोली के सभी कालों में प्रयुक्त शब्द, इसमें लिए जाते हैं तथा उनके वे सभी अर्थ लिए जाते हैं जो किसी भी काल में प्रयुक्त रहे हों। वर्णनात्मक कोश की तरह इसमें 'अर्थ' प्रयोगावृत्ति (frequency of usage) के आधार पर नहीं दिए जाते, बल्कि प्रयोग-काल के आधार पर दिए जाते हैं। अर्थात् वह शब्द जिस अर्थ में सबसे पहले प्रयुक्त हुआ है, वह अर्थ सबसे पहले देते हैं तथा बाद में विकसित होने वाले अर्थ क्रमशः बाद में। संभव हो तो हर 'अर्थ' का प्रथम प्रयोग (उद्धरण और संदर्भ के साथ) तथा उसके काल का भी संकेत किया जाता है। अंग्रेजी की आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी इस दृष्टि से आदर्श कोश है। वैसा कोश विश्व की किसी भी भाषा का अभी तक नहीं बन सका है। ऐतिहासिक कोशों में प्रायः व्युत्पत्ति अवश्य देते हैं। पूना से संस्कृत भाषा का ऐसा ही कोश प्रकाशित हो रहा है जिसके कुछ भाग आ भी चुके हैं।

**तुलनात्मक कोश**—इस वर्ग के कोशों को यह नाम किसी अन्य अच्छे नाम के अभाव में दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत, दो, तीन, चार या अधिक भाषाओं के कोश आते हैं। ये कोश दो प्रकार के होते हैं : (क) सामान्य शब्दों के; (ख) पारिभाषिक शब्दों के। सामान्य शब्दों के तुलनात्मक कोश मोटे रूप से दो प्रकार के होते हैं। एक में स्रोत भाषा के शब्दों की लक्ष्यभाषा या भाषाओं में व्याख्या की जाती है। दूसरे में केवल प्रतिशब्द दिये जाते हैं। पहले का उद्देश्य होता है शब्दों को समझाना। दूसरे का उद्देश्य होता है अनुवादकों के लिए प्रतिशब्द देना। यों इन दोनों को एक में मिलाकर व्याख्या और प्रतिशब्द दोनों का भी कोश बनाया

जा सकता है, जो अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी होता है। इस प्रकार का एक ही कोश, दोनों काम (शब्दार्थ समझाना, प्रतिशब्द प्रस्तुत करना) करता है। हिन्दी में इस प्रकार के द्विभाषी कोशों में बुल्के के 'अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश' तथा महेन्द्र चतुर्वेदी और भोलानाथ तिवारी के 'हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश' के नाम लिए जा सकते हैं। इस प्रकार के व्याख्या और प्रतिशब्द वाले तुलनात्मक कोश प्रायः दो भाषाओं के ही होते हैं। यों अपवादतः तीन भाषाओं के भी कुछ प्रकाशित हुए हैं जैसे सिन्धी-अंग्रेज़ी-हिन्दी, बँगला-अंग्रेज़ी-हिन्दी आदि। दूसरे प्रकार के कोश सामान्य शब्दों के न होकर पारिभाषिक शब्दों के होते हैं। तुलनात्मक पारिभाषिक शब्दावली दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ आदि कितनी ही भाषाओं की हो सकती है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से प्रकाशित हिन्दी-अंग्रेज़ी पारिभाषिक कोश, जो चार भागों (दो भाग मानविकी, दो भाग विज्ञान) में हैं, इस प्रकार का अच्छा कोश है। ऐसा एक कोश भारत की सभी भाषाओं का बनाया जा सकता है। यूरोप की अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, स्पैनिश, इतैलियन, रूसी तथा एशिया की अरबी एवं जापानी आदि की कुछ तुलनात्मक पारिभाषिक शब्दावलियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

**उच्चारण-कोश**—यों तो प्रायः उच्च कोटि के सामान्य वर्णनात्मक, तुलनात्मक, या ऐतिहासिक कोशों में भी उच्चारण दिये जाते हैं। अंग्रेज़ी के वेब्स्टर तथा चैम्बर्स आदि वर्णनात्मक कोशों में, बुल्के के अंग्रेज़ी-हिन्दी, महेन्द्र चतुर्वेदी तथा भोलानाथ तिवारी के हिन्दी-अंग्रेज़ी आदि तुलनात्मक या द्विभाषिक कोशों में तथा अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक कोश 'आक्सफ़ोर्ड' में उच्चारण दिए गए हैं। किन्तु ऐसे कोशों में उच्चारण-विषयक सारी बातें नहीं आ पातीं। किसी भाषा का अलग से उच्चारण-कोश उस भाषा की उच्चारण-विषयक सारी विशेषताओं को अंकित करता है। डैनियल जोन्स का अंग्रेज़ी भाषा का उच्चारण-कोश बहुत प्रसिद्ध है। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने हिन्दी भाषा का उच्चारण-कोश बनाया है। उच्चारण-कोश किसी शब्द के उच्चारण में स्वर-व्यंजनों का ठीक उच्चारण, आक्षरिक विभाजन, बलाघात, क्षेत्रीय तथा समाजस्तरीय उच्चारणों आदि को अंकित करता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार के कोश में केवल मानक उच्चारण, सामान्य दृष्टि से दे दिया जाता है। उदाहरण के लिए, 'अध्यापक' शब्द लें। सामान्य कोश में इसका उच्चारण या तो नहीं दिया जाता है या अधिक-से-अधिक 'अद्ध्यापक' लिखकर छुट्टी पा ली जाती है, किन्तु उच्चारण-कोश में इसे अद्-ध्या-पक् रूप में दिया जाएगा जिसका अर्थ यह है कि (1) इसके उच्चारण में एक अतिरिक्त 'द्' बोला जाएगा जो वर्तनी में नहीं है, (2) अन्त का 'अ' उच्चरित नहीं होगा जो वर्तनी में है, (3) इस शब्द में तीन अक्षर हैं जिन्हें 'अद्' 'ध्या' 'पक' रूप में तोड़कर दिखाया जाएगा, तथा (4) बलाघात 'ध्या' अंकित होगा। ऐसे ही 'उपन्यास' का उच्चारण 'उ-पन्-न्याँस्' (वर्तनी से अलग चार बातें : (1) एक अतिरिक्त 'न', (2) 'आ' पर अनुनासिकता, (3) स के 'अ' का लोप, (4) 'न्यास' पर बलाघात) लिखा जाएगा तो 'अभ्यास' का 'अब्-भ्यास्' या 'कन्या' का 'कन्-न्याँ'। 'विज्ञान' के उच्चारण में 'विग्-ग्यान्' तो मानक उच्चारण के रूप में दिया जाएगा, किन्तु

साथ ही दो बातों का संकेत और होगा : (क) हिन्दी प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में उच्चारण 'विग्-ग्यांन्' है तो संस्कृत परंपरा के लोगों में 'विज्-ज्यांन्' तथा मराठी-गुजराती मूल के लोगों में 'विद्-नांन'। कुछ शब्दों के उच्चारण में आक्षरिक विभाजन तथा बलाघात की दृष्टि से क्षेत्रीय उच्चारण में अन्तर मिलता है : मानक उच्चारण 'आ-मद्-नीं,' पूर्वी क्षेत्र में उच्चारण 'आम्-द-नीं'। कभी-कभी केवल कुछ ही लोगों में उच्चारण का अन्तर मिलता है। उसका क्षेत्र या सामाजिक स्तर से सम्बन्ध नहीं होता : मानक उच्चारण 'छिप्-क-ली,' कुछ लोगों में 'छि-पक्-ली'। उच्चारण-कोश, इस तरह उच्चारण की सारी बारीकियों को अंकित करने का यत्न करता है। उच्चारण-कोश में प्राय: व्याकरण-संकेत या अर्थ नहीं दिए जाते हैं, किन्तु वहाँ दिए जाते हैं जहाँ उच्चारण-भेद से उनका सम्बन्ध हो। जैसे अंग्रेज़ी में present का संज्ञा तथा विशेषण रूप में उच्चारण 'प्रेज़ंट' है तो क्रिया रूप में प्रिज़ेंट। रूसी में तो वर्तनी एक होते हुए भी बलाघात के अन्तर से कुछ शब्दों में अर्थ-भेद है। जैसे Zamok—ताला, Zamok—क़िला। जिन भाषाओं में ऐसी सम्भावनाएँ काफ़ी हों उनमें आद्यन्त व्याकरण-संकेत तथा अर्थ-संकेत भी उच्चारण के साथ दिए जाने चाहिए।

व्युत्पत्ति-कोश—यों तो सामान्य वर्णनात्मक कोशों (जैसे हिन्दी शब्दसागर या मानक कोश), ऐतिहासिक कोशों (जैसे अंग्रेज़ी की आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी) या तुलनात्मक कोशों (जैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित मानक अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश) में भी व्युत्पत्ति दी जाती है, किन्तु 'व्युत्पत्ति-कोश' का तो पूरा ही ध्यान व्युत्पत्ति पर केन्द्रित होता है। 'व्युत्पत्ति' के अन्तर्गत तीन प्रकार की सूचनाएँ आती हैं। पहली तो यह कि अमुक शब्द किस उपसर्ग, प्रत्यय तथा धातु से बना है। जैसे 'व्याकरण' शब्द की व्युत्पत्ति होगी वि+आ+कृ+ल्युट् अर्थात् इस शब्द के निर्माण में 'वि' और 'आ' दो उपसर्ग हैं, 'कृ' धातु है तथा 'ल्युट्' प्रत्यय है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के कोशों में इसी प्रकार दी गयी है। मानक हिन्दी कोश में भी तत्सम शब्दों की व्युत्पत्ति ऐसे ही दी गयी है। दूसरे यह कि उसका स्रोत क्या है ? तद्भव शब्दों का स्रोत कोष्ठक में मूल तत्सम शब्द रख-कर देते हैं। जैसे, घोड़ा (सं० घोटक), कौड़ी (सं० कपर्दिका) या अंझा (सं० अनध्याय)। विदेशी शब्दों का स्रोत देने में, यदि वह शब्द प्राय: अपने मूल रूप में ही आया है, तो कोष्ठक में भाषा का नाम देते हैं। जैसे पेंट (अं०), खुदा (फ़ा०), किताब (अर०) आदि। किन्तु यदि उसमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन हो तो कोष्ठक में भाषा का नाम देने के साथ-साथ मूल शब्द का भी संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए, तिजोरी (अं० ट्रेज़री), सड़क (अर० शरक)। देशज शब्दों के साथ कोष्ठक में 'दे०' लिखते हैं, तथा जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो उनके सामने कोष्ठक में प्रश्नवाचक चिह्न देते हैं : घपला (?), झंझट (?)। तीसरे प्रकार की व्युत्पत्ति में शब्द की यात्रा का पूरा उल्लेख करते हैं। उदाहरण के लिए, 'गो' की व्युत्पत्ति परंपरागत ढंग से संस्कृत पंडित 'गम्+डो' देंगे, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह शुद्ध कल्पना है तथा यह शब्द मूलत: संस्कृत का नहीं है, बल्कि संस्कृत के जन्म के पूर्व उस परिवार में था जो अंग्रेज़ी cow, फ़ारसी

'गाव' आदि से प्रमाणित है। प्रायः यह बहुस्वीकृत बात है कि मूलतः यह शब्द सुमेरी शब्द 'गु' से आया है, अतः इसकी व्युत्पत्ति में उसका संकेत करेंगे, साथ ही तुलनात्मक ढंग से अन्य भाषाओं में प्राप्त इसके रूप भी देंगे। उदाहरणार्थ, हिन्दी के व्युत्पत्ति कोश में 'गाय' के साथ लिखा जायेगा—मूलतः सुमेरी 'गु', संस्कृत गो, अं० cow, फ़ा० गाव, जर्मन कुवो, रूसी गोवे आदि। स्कीट का अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध व्युत्पत्ति कोश, टर्नर की 'नेपाली डिक्शनरी' तथा कुलकर्णी का मराठी व्युत्पत्ति कोश इस दृष्टि से उल्लेख्य हैं। व्युत्पत्तियों को देने में कभी-कभी मूल शब्द का प्राप्त ध्वन्यात्मक प्रमाणों के आधार पर पुनर्निर्माण भी करना पड़ता है। कभी-कभी पुनर्निर्माण द्वारा बीच की कड़ी भी जोड़नी पड़ती है। टर्नर ने अपने भारतीय आर्य-भाषा कोश में काफ़ी स्थानों पर इस प्रकार के काल्पनिक शब्द बनाये हैं।

पर्याय-कोश—पर्याय या पर्यायवाची कोशों में शब्दों का अर्थ न देकर पर्याय दिये जाते हैं। संस्कृत के निघंटु, अमरकोश, मेदिनीकोश आदि इसी प्रकार के हैं। पर्याय-कोशों में दो प्रकार के क्रम होते हैं। एक क्रम तो विषय का होता है, जिसकी रूपरेखा कोश के प्रारम्भ में स्पष्ट कर दी गयी होती है। ऐसे कोश में शब्दों का ध्वन्यात्मक दृष्टि से कोई क्रम नहीं होता। भोलानाथ तिवारी के 'बृहद् पर्याय-वाची' कोश में यही क्रम है। उसमें सब्ज़ियों के नाम एक स्थान पर हैं, तो पेड़ों के एक स्थान पर, रंगों के एक स्थान पर और जानवरों के एक स्थान पर। इस तरह शब्द विषयानुसार संकलित हैं। हाँ, अन्त में मुख्य प्रचलित शब्दों की शब्दानुक्रम-णिका अवश्य है जिसके आधार पर अपेक्षित शब्द खोजा जा सके। लेखकों के लिए यह कोश काम का होता है, जहाँ एक शब्द के अर्थ, या विषयवर्ग से सम्बद्ध सारे शब्द एक स्थान पर मिल जाते हैं। यदि किसी को उस शब्द का पता भी न हो, जिसे वह जानना है या पाना चाहता है तो इसमें मिल जाता है, क्योंकि वह शब्द अपने वर्ग के साथ दिया होता है। दूसरे प्रकार का क्रम अन्य कोशों की तरह वर्णा-नुसार होता है। उसमें अज्ञात शब्दों को पाने की उपर्युक्त प्रकार की सुविधा नहीं होती। महेन्द्र चतुर्वेदी तथा ओंप्रकाश गावा का व्यावहारिक पर्याय कोश इसी प्रकार का है। ज्ञात शब्द के पर्याय इसमें अपेक्षाकृत सरलता से मिल जाते हैं। विलोम शब्दों के अलग से कोश प्राय: नहीं मिलते, अतः पर्याय-कोशों में ही कुछ लोग उन्हें भी समाहित कर लेते हैं। राजेट के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पर्याय कोश (Thesauras) तथा भोलानाथ तिवारी के बृहत् पर्यायवाची कोश में ऐसा किया गया है।

विलोम-कोश—ऐसे कोश बहुत ही कम बनते हैं। सभा के पुस्तकालय के पांडुलिपि-अनुभाग में किसी अज्ञात लेखक का एक विलोम-कोश मैंने देखा था जिसमें मूल शब्द वर्णानुक्रम से थे, तथा विलोम उसके साथ थे। जैसे 'बड़ा-छोटा,' 'खाली-भरा', 'स्वर्ग-नरक' आदि। कुछ शब्दों के एकाधिक विलोम भी उसमें थे। जैसे 'आदमी-औरत, जानवर'। विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित व्याकरणों और कोशों में विलोम खंड प्राय: दिया जाता है। उदाहरणार्थ, भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी तथा ओंप्रकाश गावा के 'व्यावहारिक हिन्दी कोश में' विलोम शब्दों की सूची है।

संक्षेप-कोश—कुछ भाषाओं (जैसे अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच) में सुविधा के

लिए संक्षेप अथवा संकेत का प्रयोग बहुत होता है, अतः इनके कोश की भी आवश्यकता होती है। प्रायः सभी भाषा के कोशों में प्रारम्भ में एक-दो पृष्ठों की इस प्रकार की सूची दी होती है। हिन्दी में भाषाओं के नामों (अं०, फ़ा०, अर०, तु०, हि०, सं०, प्रा०, अप०), लिंग (स्त्री०, पुं०), वचन (एक०, बहु०), वाग्भाग (सर्व०, क्रि०, विशे०) या कुछ अन्य प्रकार के शब्दों (पृ०, कृ० पृ० उ०, डॉ०, उ० प्र०, म० प्र०) के संक्षेपों का प्रायः प्रयोग होता है, यद्यपि उनकी संख्या उतनी बड़ी नहीं है कि कोश बन सके। विज्ञान में ऐसे संक्षेप बहुत अधिक प्रयुक्त होते हैं। रूसी में प्रयुक्त संक्षेपों का एक कोश प्रकाशित है। अंग्रेज़ी में भी ऐसा एक कोश है। यों अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मन आदि के कई अच्छे कोशों में अन्त में 10-12 पृष्ठों का संक्षेप-कोश दिया है।

**अनेकार्थी कोश**—ऐसे कोशों में केवल वे शब्द लिए जाते हैं जिनके एकाधिक अर्थ होते हैं। संस्कृत में ऐसे कोशों की समृद्ध परम्परा रही है। इन्हीं कोशों के अनुकरण पर हिन्दी में भी कुछ कोश बने थे। अब वर्णनात्मक तथा ऐतिहासिक कोशों में शब्दों के सारे अर्थ आ जाते हैं, अतः ऐसे अलग कोशों की आवश्यकता नहीं रह गयी है। इसीलिए अब अनेकार्थी कोश नहीं बनते।

**प्रयोग-कोश**—इसमें किसी भाषा के विभिन्न शब्दों, प्रत्ययों, उपसर्गों अथवा अभिव्यक्तियों का प्रयोग दिया होता है। अंग्रेज़ी में फ़ाउलर का 'इंगलिश यूसेज' प्रसिद्ध कोश है। इन पंक्तियों के लेखक ने 1964 में 'हिन्दी प्रयोग कोश' पर काम शुरू किया था। 13 वर्ष में 1977 में यह पूरा हुआ और एक बार दुहरा-कर प्रेस में देने की बात थी, कि 1978 की दिल्ली की बाढ़ में नष्ट हो गया। अब फिर काम शुरू कर दिया है। उसमें उन सभी प्रकार की प्रविष्टियों को लिया गया था, जिनके प्रयोग के सम्बन्ध में संदर्भ तथा अन्य दृष्टियों से विवाद हो सकता है, ग़लती हो सकती है या जिनके प्रयोग के विषय में कोश देखने की आवश्यकता हो सकती है। यहाँ तक कि निश्चयात्मक, निषेधात्मक, प्रश्नवाचक, आदरार्थ आदि अभिव्यक्तियाँ भी अलग-अलग ली गयी थीं।

**द्विभाषी कोश**—इस पर आगे अलग अध्याय में विचार किया गया है।

**एकभाषिक अथवा समभाषिक कोश**—इस पर आगे अलग अध्याय में विचार किया गया है।

**अनुक्रमणिका अथवा शब्द-सूची**—कुछ पुस्तकों आदि की मात्र शब्द-सूचियाँ भी बनी हैं। हिन्दी में मानस (सूर्यकांत की, तथा कलकत्ता से अग्रवाल की), पद्मावत (सूर्यकांत की), तथा कामायनी (भोलानाथ तिवारी) की शब्द-सूची प्रकाशित हो चुकी है। इनका उपयोग उन पुस्तकों के अध्येता, 'किन-किन शब्दों का प्रयोग हुआ है,' 'कितनी बार हुआ है,' 'किन-किन अर्थों में हुआ है' आदि की जानकारी के लिए करते हैं।

**पारिभाषिक कोश**—ये केवल पारिभाषिक शब्दों के होते हैं। इनमें कभी तो एक भाषा से दूसरी भाषा में या एक भाषा से कई भाषा में शब्द दिए जाते हैं, और कभी-कभी शब्द देने के साथ-साथ व्याख्या, परिचय तथा विवेचन आदि भी होता है। हिन्दी में कई प्रादेशिक सरकारों तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से

ऐसी सूचियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से कुछ परिभाषा कोश भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें शब्दों का विषय की दृष्टि से विवेचन भी है।

**शब्द-परिवार कोश**—इसमें हर शब्द के साथ उससे बनने वाले शब्द (अर्थात् उसके परिवार के शब्द) दिये होते हैं। हिन्दी में एक ऐसा कोश प्रकाशित हो चुका है।

**धातु-कोश**—संस्कृत के धातु पाठ इसी प्रकार के हैं। हिन्दी धातुओं का भी एक कोश प्रकाशित हो चुका है।

**तुक-कोश**—छंद दो प्रकार के होते हैं, तुकांत और अतुकांत। तुकांत छंदों के लिए ऐसे शब्दों की आवश्यकता पड़ती है जिनका तुक मिल सके। उर्दू में ऐसे शब्दों को काफ़िया कहते हैं। तुकांत कविता करने वालों के लिए ऐसे कोश काम के होते हैं। राजस्थान में कदाचित बीकानेर में मैंने एक छोटा-सा तुक-कोश (हस्तलिखित) देखा था, जिसमें प्रविष्टि के तुक उसके साथ दिए गए थे। जैसे 'आह, वाह, राह, शाह, चाह' अथवा 'काल, गाल, चाल, जाल, झाल, पाल, वाल' आदि। एक अमरीकी विद्वान् (वेकर) उर्दू-हिन्दी का एक ऐसा कोश बना चुके हैं और वह कदाचित छपने वाला है।

**शब्दकोश**—इसमें शब्दों के बारे में वर्तनी, उच्चारण, व्याकरणिक कोटि, व्युत्पत्ति और संरचना, अर्थ (व्याख्या या पर्याय रूप में प्रतिशब्द) एवं प्रयोग आदि की दृष्टि से सूचनाएं होती हैं। भाषा के मोटे ढंग से तीन स्तर होते हैं: ध्वनि, अर्थ, व्याकरण। शब्दकोश का सम्बन्ध तीनों से होता है। उच्चारण-संकेत ध्वनि से संबद्ध है, तो अर्थ-संकेत अर्थ से, तथा प्रयोग और संरचना-संकेत व्याकरण से। जहाँ तक व्याकरण का सम्बन्ध है, इसमें शब्द-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों आते हैं। कोश में शब्द की संरचना के संकेत प्रथम से सम्बद्ध हैं तो प्रयोग के संकेत वाक्य-रचना से। साथ ही शब्दकोश में जो मुहावरे या लोकोक्तियाँ आदि होती हैं, वे भी एक सीमा तक वाक्य से ही सम्बद्ध हैं, क्योंकि संरचना के स्तर पर वे वाक्यीय इकाई ही होते हैं।

यदि ध्वनि की बात छोड़ दें तो शब्द को अर्थविज्ञान और व्याकरण के बीच पुल का काम करने वाला माना जा सकता है। इस दृष्टि से शब्दकोश किसी भाषा की दो महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ 'अर्थ' तथा 'व्याकरण' को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण काम करता है, और इस प्रकार एक अच्छा और पूर्ण शब्दकोश भाषा का जितना सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत कर सकता है, उतना अन्यत्र सम्भव नहीं।

यों 'व्याकरण' की तुलना में 'शब्दकोश' का महत्त्व कुछ अधिक है। यही कारण है कि किसी भी व्यक्ति को अपनी मातृभाषा का व्याकरण का उपयोग करने की शायद नहीं के बराबर आवश्यकता पड़ती है, जबकि शब्दकोश का प्रयोग उसे प्रायः करना पड़ता है, यदि वह पढ़ता-लिखता हो। इसका कारण स्पष्ट है। व्याकरण के नियम सीमित (close-ended) होते हैं, और वे मातृभाषा-भाषी के मानस में अवस्थित होते हैं, जबकि किसी भाषा का शब्द-भंडार सीमित नहीं (open-ended) होता। कोई भी व्यक्ति यह तो कह सकता है, कि, सैद्धान्तिक स्तर पर भले न सही, प्रयोग के स्तर पर वह अपनी भाषा के सभी नियमों से

परिचित है, क्योंकि बिना किसी परेशानी के हर परिस्थिति में वह अपनी बात कह सकता है। इसके विपरीत कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि वह अपनी भाषा के सभी शब्दों से परिचित है। यही कारण है कि उसे शब्दकोश की सहायता अपेक्षित होती है, किन्तु व्याकरण की नहीं।

शब्दकोश एक ही साथ **संग्रहालय, दातालय तथा न्यायालय** है। वह शब्द आदि के बारे में और उनके माध्यम से किसी भाषा के बारे में सूचनाओं का संग्रह होता है; जिसे आवश्यकता हो, उसके लिए वह ये सारी सूचनाएँ व्यवस्थित रूप में देने वाला दातालय होता है, तथा कौन-सी वर्तनी ठीक है—कौन-सी गलत, कौन-सा उच्चारण ठीक है—कौन-सा गलत, कौन-सा शब्द मानक है—और कौन-सा अमानक, किसी शब्द का ठीक अर्थ क्या है और क्या नहीं आदि-इत्यादि, शुद्धि-अशुद्धि एवं मानकता-अमानकता विषयक विवादों का निर्णय करने के कारण वह न्यायालय भी होता है।

उच्चारण (स्वर-उच्चारण, व्यंजन-उच्चारण, अक्षरविभाजन, बलाघात तथा तान-प्रधान भाषाओं (Tone languages) में अनुतान) दिया जाता है, तो रूप-विज्ञान के आधार पर प्रविष्टियों का रूपीय विश्लेषण देते हैं, तथा उससे बनने वाले अन्य रूपों का यथास्थान उल्लेख करते हैं। ऐसे ही शब्दविज्ञान, समाज-विज्ञान तथा शैलीविज्ञान की सहायता से शब्द के प्रयोग (समाज के किस स्तर द्वारा या किस शैली में प्रयुक्त, पहले भी प्रयुक्त या अब भी प्रयुक्त) विषयक सूचनाएँ, वाक्यविज्ञान की सहायता से उसके सहप्रयोग तथा भाषिक सन्दर्भ-विषयक सूचनाएँ (उसके साथ किस शब्द का प्रयोग होता है, किसका नहीं, जैसे सुल्फ़ का प्रयोग केवल 'सौदा' के साथ (सौदा-सुल्फ़) या 'बक्काल' का प्रयोग (बनिया-बक्काल) केवल बनिया के साथ; या दिखाई या सुनाई केवल 'पड़' और 'दे' के साथ नामिक क्रिया में), अर्थविज्ञान की सहायता से उसके अर्थविषयक सूचनाएं, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से उसकी व्युत्पत्ति-विषयक सूचनाएँ, तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान से व्युत्पत्ति या अर्थ में अपेक्षित तुलनात्मक सूचनाएं दी जाती हैं। इस तरह कोश का चाहे सैद्धान्तिक स्तर हो चाहे प्रायोगिक, भाषा-विज्ञान उसकी बहुत अधिक सहायता करता है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बिना भाषाविज्ञान की सहायता के कोश बनाने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यों कोशविज्ञान और कोशकला ने भाषाविज्ञान का कोश, भाषाविज्ञान का परि-भाषाकोश, भाषाविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली आदि बनाकर यथासाध्य उस ऋण को उतारने का भी यत्न किया है।

(2) **व्याकरण**—भाषाविज्ञान और व्याकरण का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, और बहुत-सी बातें तो ऐसी हैं जिनको दोनों ही अपने क्षेत्र में समाहित कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, 'व्याकरणिक कोटियाँ'। इसीलिए जब कोशविज्ञान का भाषाविज्ञान से सम्बन्ध है तो व्याकरण से भी सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। इन सम्बन्धों की दृष्टि से निम्नांकित बातें उल्लेख्य हैं: (क) पीछे हम कह चुके हैं कि कोश संग्रहालय भी है, शुद्ध-अशुद्ध का न्यायालय भी। उसके संग्रहालय वाले अंश में भाषाविज्ञान और व्याकरण दोनों ही उसकी सहायता करते हैं, किन्तु उसके न्यायालय वाले कर्तव्य में मात्र व्याकरण ही कोशविज्ञान की सहायता करता है। वही मानक-अमानक, शुद्ध-अशुद्ध का निर्णय करता है (साधुत्वज्ञान-विषया सैषा व्याकरण स्मृतिः—वाक्यपदीय), जिसे कोश ज्यों-का-त्यों उससे ले लेता है। (ख) इसके अतिरिक्त कोश में प्रविष्टि के बाद व्याकरणिक संकेत, तो पूर्णतः व्याकरण के आधार पर ही दिए जाते हैं। (ग) आजकल के कुछ अच्छे कोश किसी शब्द से बनने वाले अनियमित रूप (कृदंत: कर—किया; अकर्मक: कर—हो; प्रेरणार्थक: जा—भेज; आज्ञा: दे– दो, दीजिए; लिंग: कवि—कवयित्री आदि) अवश्य देते हैं, इसमें भी व्याकरण, कोश की सहायता करता है। (घ) जहाँ तक अर्थ का सम्बन्ध है, पहले कोश केवल व्यावहारिक अर्थ देते थे, अब व्याकरणिक अर्थ (जैसे जा—कर्मवाच्यता तथा भाववाच्यता; रह—मुख्य अर्थ 'रहना' के अतिरिक्त रंजकता तथा सातत्यता) भी देते हैं, और यह अर्थ तो पूरी तरह व्याकरण पर ही आधारित होता है। (ङ) पहले कोशों में केवल सामान्य शब्द देते थे, अब

उपसर्ग, आदिप्रत्यय, मध्यप्रत्यय, अन्त्यप्रत्यय भी देने लगे हैं। इसमें भी व्याकरण कोश की सहायता करता है। दूसरी तरफ़, व्याकरण का कोश बनाने में कोशविज्ञान व्याकरण की भी सहायता करता है।

(3) **साहित्य**—साहित्य से कोश को अनेक प्रकार से सहायता लेनी पड़ती है। (क) यदि आज प्राचीन काल का कोई कोश बनाना हो (संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, आदिकालीन हिन्दी, भक्तिकालीन हिन्दी, रीतिकालीन हिन्दी आदि का) तो कोशविज्ञान को प्रविष्टि, अर्थ, प्रयोग आदि विषयक पूरी-की-पूरी सामग्री साहित्य से ही लेनी पड़ेगी। (ख) वर्तमानकाल का कोश बनाने में भी बोलचाल से एक सीमा तक ही सामग्री मिल सकती है, ज्यादातर सामग्री आधुनिक प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्य से ही ली जाती है। (ग) ऐतिहासिक कोश के निर्माण में प्राचीन काल में शब्द-विशेष के क्या-क्या अर्थ थे, उनके विकास का कालक्रम क्या था, ये सब साहित्य के आधार पर ही निर्धारित होते हैं। (घ) वर्णनात्मक कोश के लिए अर्थों की आवृत्ति का अनुमान भी साहित्य के आधार पर ही लगाना पड़ता है, जिसके आधार पर उन्हें क्रम देते हैं। (ङ) व्युत्पत्ति के लिए पूर्ववर्ती शब्द (जैसे हिन्दी 'रहट' के लिए सं० 'अरघट्ट' या 'कसौटी' के लिए 'निकषपट्टिका') कोश को साहित्य से ही मिलते हैं। दूसरी तरफ़, साहित्य का कोश बनाकर, कोशविज्ञान साहित्य के अध्ययन-अध्यापन को सरल बना देता है। यदि कोश न हो तो प्राचीन साहित्य में गति कठिन ही नहीं, अनेक स्थलों पर असम्भव भी होगी।

**समाजशास्त्र**—भाषा का प्रयोग सामाजिक स्तरों से बहुत अधिक सम्बन्धित है। इसी आधार पर भाषा में सामाजिक अर्थ की कल्पना की गई है। (दे०—अर्थ का प्रकरण)। कोश सामाजिक अर्थ देने में समाजशास्त्र से पूरी सहायता लेता है। तू-तुम-आप के अर्थ सामाजिक ही हैं। कोश बहुत-से शब्दों के साथ सामाजिक संकेत (लौंडा—अशिष्ट; स्वर्गवासी—हिन्दू, मरहूम—मुसलमान) देने में भी समाजशास्त्र से ही सहायता लेता है। दूसरी ओर, कोशविज्ञान समाजशास्त्र का कोश बनाकर उसकी भी सहायता करता है।

**भूगोल**—भाषा में भौगोलिक स्तर पर अन्तर होता है, और कोश को इन अन्तरों को भी संकेतित करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, हरियाना में 'काळा' तो अन्यत्र 'काला,' कई स्थानों पर 'बाल सँवारना' तो हमीरपुर (उत्तरप्रदेश) में 'बाल खींचना,' पश्चिम में 'तोरी', इलाहाबाद के आस-पास 'तरोई' और 'नेनुवाँ,' गाज़ीपुर में 'नेनुवाँ' तो बलिया में 'नैनुवाँ' और घेंवड़ा। मानक हिन्दी में 'मकोड़ा' का प्रयोग कीड़ा-मकोड़ा में, पर हरियाना में 'मकोड़ा' =चींटा। इस प्रकार एक अर्थ के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग शब्द, तथा एक शब्द का अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग अर्थ है। कोशविज्ञान भूगोल की सहायता के बिना इन्हें नहीं दे सकता। दूसरी ओर, कोशविज्ञान भूगोल के भी तरह-तरह के कोश बनाकर उसकी सहायता करता है।

यहाँ कुछ विषयों को लेकर देखा गया। सच पूछा जाय तो कोश, अपने शब्द-कोश, पारिभाषिक कोश, विषयकोश तथा विश्वकोश आदि रूपों में विश्व के

सभी ज्ञानों, शास्त्रों, विद्याओं, विज्ञानों और विषयों से सम्बद्ध है। इसका कारण यह है कि कोश को सभी विषयों के शब्दादि लेने पड़ते हैं तथा उन विषयों की सहायता से ही कोश उन शब्दों को समझाता है। साथ ही, अलग-अलग विषयों का कोश (भौतिकी कोश, रसायनशास्त्र कोश, मनोविज्ञान कोश) बनाने में तो कोश को हर विषय को अलग-अलग लेना पड़ता है तथा गहराई से उसकी पूरी ज्ञान-राशि वर्णानुक्रम से देनी पड़ती है। यों वे सारे विषय भी कोश से इस रूप में लाभान्वित होते हैं कि उन विषयों के कोशों में ही, उन विषयों के विभिन्न अंगों-उपांगों के सम्बन्ध में अपेक्षित जानकारी सरलता से एक स्थान पर पायी जा सकती है।

## 3. कोश-निर्माण

जैसा कि पीछे हम देख चुके हैं, कोश-निर्माण की कला ही कोशकला है। यों यह कला, ललित कला न होकर उपयोगी कला है, और इसके आधार कोश-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त होते हैं।

### सामग्री-संकलन

कोश-निर्माण के लिए सबसे पहले सामग्री संकलित करनी पड़ती है। सामग्री दो प्रकार के स्रोतों से आ सकती है : लिखित भाषा से, बोलित भाषा से।

**लिखित भाषा से सामग्री-संकलन**—प्राचीन भाषा का या किसी भाषा के प्राचीन काल का कोश बनाना है तो हमें उसके प्राप्त साहित्य से कोश की सामग्री लेनी पड़ती है। किसी आधुनिक भाषा का कोश बनाने में भी, यदि लिखित साहित्य है तो उससे सामग्री एकत्र करनी पड़ती है।

**प्राचीन-साहित्य**—प्राचीन साहित्य से सामग्री-संकलन करने के पूर्व हमें सबसे पहले उसका सारा साहित्य एकत्र कर लेना चाहिए। साहित्य प्रकाशित भी हो सकता है, अप्रकाशित भी। प्रकाशित में यदि किसी पुस्तक के एकाधिक संस्करण हों तो जो सर्वोत्तम संस्करण हो, उसे काम में लाना चाहिए। यदि अच्छे संस्करण न हों तो उसके प्राप्त संस्करणों तथा पांडुलिपियों के आधार पर पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार उसका संपादन करा लेना चाहिए। जो पुस्तकें प्रकाशित न हों उनका भी विभिन्न पांडुलिपियों के आधार पर संपादन अपेक्षित होता है।

**आधुनिक साहित्य**—आधुनिक साहित्य को काम में लाना सरल होता है, क्योंकि उसका संपादन प्रायः अपेक्षित नहीं होता। हाँ, यदि प्रेस की ग़लतियों के कारण प्राप्त संस्करण अच्छा नहीं है, तो उसे सुधारना पड़ सकता है।

**शब्दानुक्रमणी**—इस प्रकार प्राचीन और आधुनिक साहित्य, या जो भी अपेक्षित हो, अधिक से अधिक मूल रूप में हमारे सामने आ गया। अब कोशकार को उसकी शब्दानुक्रमणी बनानी चाहिए। शब्दानुक्रमणी का अर्थ है किसी पुस्तक, कवि, साहित्यकार, काल, धारा या साहित्य में प्रयुक्त सारे शब्दों की वर्णानुक्रम के अनुसार सूची। यह सूची, संदर्भ (जैसे किस पुस्तक में, किस अध्याय में, किस छन्द में, आदि) के साथ होती है। ऊपर पाठ की दृष्टि से संशोधन की बात की गयी। शब्दानुक्रमणी के लिए पाठ में और भी अधिक सतर्कता अपेक्षित होती है। ऐसा प्रायः होता है कि मुद्रित पाठ में एकरूपता नहीं मिलती और अनुक्रमणी बनाने वाले ने यदि आँख मूँदकर मुद्रित पाठ के आधार पर अनुक्रमणी बना डाली
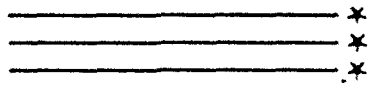
तो अनेकरूपता के कारण कई प्रकार की गड़बड़ियाँ रह जाती हैं। उदाहरण के लिए, मान लें कि कहीं तो 'करने वाला' छपा है और कहीं छपा है 'करनेवाला'। अब यदि एक स्थान पर 'करनेवाला' को एक शब्द मानकर रखा गया तथा दूसरे स्थान पर 'करने' को अलग और 'वाला' को अलग शब्द रखा गया तो अनुक्रमणी त्रुटिपूर्ण हो जायगी। 'वाला' जहाँ होगा, वहाँ 'करने वाला' के 'वाला' का संदर्भ तो मिल जायगा, किन्तु 'करनेवाला' के 'वाला' का संदर्भ नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि कहीं 'उसने' छपा है और कहीं 'उस ने', तो 'ने' के दोनों संदर्भों का पता नहीं चल सकता। विभिन्न भाषाओं में प्रेस-सम्बन्धी गड़बड़ियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जिनके कारण शब्दानुक्रमणी त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण हो सकती है। इस दृष्टि से, अनुक्रमणी बनाने के पूर्व, ग्रन्थ को आद्यंत पढ़कर उसमें आवश्यक संशोधन कर लेना अधिक अच्छा होता है। यह तो प्रेस की गड़बड़ी की बात थी। भाषा-विशेष की लेखन-पद्धति के कारण भी गड़बड़ी हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में सर्वनामों के साथ कारक चिह्न मिलाकर लिखते हैं—जैसे उसने, मैंने, तुमको, किन्तु संज्ञा के साथ अलग लिखते हैं, जैसे राम ने, मोहन ने, श्याम को। मान लें इनकी शब्दानुक्रमणी बनानी है और इसी प्रकार बना दी गयी तो परिणाम यह होगा कि अनुक्रमणी में 'ने' और 'को' केवल संज्ञा के साथ वाले ही आवेंगे, सर्वनाम के साथ के 'ने' और 'को' के संदर्भ उनके साथ नहीं मिलेंगे। इसके लिए अच्छा यह होता है जिनके साथ कारक चिह्न जोड़कर लिखे जाते हैं, उन्हें संयुक्त रूप में (जैसे उसने, उसको) अलग लिखा तो जाय, किन्तु साथ ही कारक-चिह्नों (जैसे यहाँ 'ने' या 'को') के संदर्भ अलग आने वाले कारक चिह्नों के साथ भी दे दिये जायें। दोनों में अन्तर के लिए दोनों को अलग-अलग भी रखा जा सकता है, जैसे ने—1. 2. 4 (अलग 'ने' के लिए); 1. 3. 2. (सम्बद्ध 'ने' के लिए)। दोनों को मिलाकर एक में भी रखा जा सकता है। इसके लिए 'ने' शीर्षक के अन्तर्गत ही संदर्भों के साथ कुछ संकेत दिये जा सकते हैं। जैसे, जहाँ 'ने' अलग है, उसका संदर्भ सामान्य रूप में दिया गया, किन्तु जहाँ संबद्ध है, उनके साथ कोष्ठक में 'सं' या कुछ और लिख दिया गया। जैसे ने—1. 4. 2, 2. 3. 4 ('सं') 3. 2. 6.। संधित या सामासिक पदों के सम्बन्ध में भी यही नीति बरतनी चाहिए। यदि इनमें दूसरा सदस्य भी स्वतन्त्रतः उस भाषा में प्रयुक्त होता हो तो उसे अलग भी देना चाहिए और उसके बँधे रूप का भी संकेत दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ, रामावतार, या यथाशक्ति आए हों तो रामावतार और यथाशक्ति को अलग-अलग तो देना ही चाहिए, साथ ही अवतार और शक्ति को भी अपने-अपने स्थान पर दिखाना चाहिए। और इनके साथ इनके समास या सन्धि में द्वितीय सदस्य होने का भी संकेत किया जाना चाहिए।

ये बातें हिन्दी की दृष्टि से कही गयी हैं। इस प्रकार के नियम सभी भाषाओं के लिए अलग-अलग बनाये जा सकते हैं। इसके सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त यह है कि जिस भाषा की पुस्तक या साहित्य की अनुक्रमणी बनानी हो, उसकी लघुतम इकाई (शब्द, रूप, उपसर्ग, प्रत्यय, आदि भी दिये जाएँ) दी जाय। सामान्य समासों को तोड़कर अलग-अलग शब्दों को अपने-अपने स्थान पर भी

दिया जा सकता है। जैसे यह बहुत आवश्यक नहीं है मुखचन्द्र को अलग दिया जाय। यथास्थान 'मुख' और 'चन्द्र' दे देना पर्याप्त है। किन्तु बहुव्रीहि समास के शब्दों (जैसे चक्रपाणि, दशानन आदि) को तो संयुक्त रूप में भी अवश्य ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि संयुक्त रूप में उनका अर्थ योगरूढ़ होने के कारण कुछ और हो जाता है। मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में दो बातें की जानी चाहिए। पहली तो यह कि इनमें आने वाले रूपों या शब्दों या उपसर्ग-प्रत्यय, कारक-चिह्नों आदि को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अलग-अलग देना चाहिए। दूसरे, पूरे मुहावरे या पूरी लोकोक्ति को भी अलग यथास्थान रखना चाहिए। इससे पूरे मुहावरे या लोकोक्ति के प्रति भी न्याय हो सकेगा, और उनमें प्रयुक्त शब्दों के प्रति भी। अनुक्रमणी के लिए काग़ज़ के कार्ड (3"×2" या कुछ और बड़े) काट लेने चाहिए तथा हर कार्ड पर ऊपर संकेतित दृष्टि से एक-एक शब्द, रूप, उपसर्ग, प्रत्यय, परसर्ग आदि लिखते जाना चाहिए। हर कार्ड पर लिखित सामग्री का संदर्भ भी देना चाहिए। जब पूरी सामग्री के कार्ड बन जाएँ तो उन्हें, वर्णानुक्रम से क्रमबद्ध कर लेना चाहिए। क्रमबद्ध करने से हर शब्द जितनी बार आया है, उसके उतने कार्ड एक स्थान पर एकत्र हो जाएँगे। अब एक-एक शब्दादि को उसके सारे संदर्भों के साथ अलग-अलग बड़े-बड़े काग़जों पर लिख लेना चाहिए। अब हमारी शब्दानुक्रमणी तैयार हो गयी। अब उसमें हर शब्दादि के साथ वे सारे संदर्भ हैं, जहाँ-जहाँ उसका साहित्य में प्रयोग हुआ है। उन सभी संदर्भों को देखकर उसके सभी अर्थ, उसी या दूसरे काग़ज पर लिख लेना चाहिए। ध्यान यह रखना चाहिए कि हर अर्थ के साथ वे संदर्भ भी लिख लिए जाएँ जहाँ उस अर्थ में वह भाषिक इकाई आयी है। इस तरह लिखित साहित्य की सारी कोशोपयोगी प्रविष्टियाँ, उनके सारे अर्थ तथा उन अर्थों के सारे संदर्भ हमारे पास आ गये। यदि हमें ऐतिहासिक कोश बनाना हो तो जिन पुस्तकों आदि से शब्दादि लिए गये हैं, उनके काल के आधार पर हम यह निर्णय आसानी से कर सकते हैं कि कौन-सा शब्द सबसे पहले किस सदी में प्रयुक्त हुआ तथा प्रारम्भ में उसका अर्थ क्या था, तथा बाद में कब-कब उसके अर्थ में परिवर्तन हुआ और क्या-क्या परिवर्तन हुआ। साथ ही परिवर्तन केवल अर्थ में हुआ या वर्तनी में भी? इस तरह हर शब्द के पूरे जीवन की कहानी अनुक्रमणी से निकाली जा सकती है। यदि वर्णनात्मक कोश बनाना हो तो संदर्भों के आधार पर यह देखा जा सकता है, कि उसका सर्वाधिक प्रयोग किस अर्थ में होता है, और उससे कम किस अर्थ में, उससे भी कम किस अर्थ में, और इसी प्रकार आगे भी। इस तरह प्रयोग आवृत्ति के आधार पर उसके अर्थों को बहुप्रयुक्तता और अल्पप्रयुक्तता के आधार पर क्रमित किया जा सकता है। इस प्रकार शब्दानुक्रमणी दोनों ही प्रकार के कोशों (वर्णनात्मक और ऐतिहासिक) के लिए बहुत उपयोगी होती है।

**बोलित भाषा से सामग्री-संकलन**—बोलित भाषा से सामग्री-संकलन के लिए पहले क्षेत्र निर्धारित करना पड़ता है। क्षेत्र निर्धारित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ-जहाँ भाषा में अन्तर हो (चाहे व्याकरण की दृष्टि से, या रूप-रचना की दृष्टि से, या शब्द-समूह की दृष्टि से) वहाँ-वहाँ से कम-से-कम

तीन-तीन सूचक (informant) लें—एक निम्न वर्ग का, एक मध्यम वर्ग का, एक उच्च वर्ग का। इसके साथ ही वहाँ की संस्कृति, सभ्यता, व्यवसाय, प्राकृतिक वातावरण आदि को दृष्टि में रखते हुए एक ऐसी प्रश्नावली बना लें, जिसके आधार पर सूचकों से प्रश्न पूछ-पूछ कर कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक सामग्री एकत्र की जा सके। यह सामग्री भी कार्डों पर ही लिखी जानी चाहिए तथा अन्त में इसकी भी शब्दानुक्रमणी (स्थान तथा व्यक्ति के नाम एवं अर्थ के साथ) बना लेनी चाहिए। इस अनुक्रमणी में पूछ-पूछकर 'क्षेत्रीय,' 'ग्राम्य,' 'अश्लील,' 'जाति विशेष का,' 'अवसर विशेष का,' 'व्यवसाय विशेष का,' 'वर्ग विशेष का' जैसे संकेत भी लिख लेना चाहिए। ऐसे संकेतों की भी कोश-रचना में आवश्यकता पड़ती है।

ऊपर सामग्री-संकलन की बात शब्दकोश की दृष्टि से की गयी। अन्य प्रकार के कोशों के लिए भी, इसी प्रकार, लिखित भाषा, बोलित भाषा, या किसी भाषा के बड़े कोशों से सामग्री एकत्र की जा सकती है। जैसे पर्याय-कोश के लिए समानार्थी शब्द, विलोम-कोश के लिए विपरीतार्थी शब्द, या पारिभाषिक कोश के लिए समानार्थी पारिभाषिक शब्द आदि। विषय-कोश अथवा विश्वकोश आदि के लिए विभिन्न विषयों या सभी विषयों की प्रामाणिक पुस्तकों से परिचयात्मक, विश्लेषणात्मक तथा विवेचनात्मक सामग्री एकत्र की जा सकती है।

## प्रविष्टि

'प्रविष्टि' का अर्थ है वह भाषिक इकाई (जैसे शब्द, मुहावरा आदि), जिसे कोश में प्रविष्ट करते हैं, या रखते हैं, तथा जिनके बारे में जानकारी के लिए कोश का उपयोग किया जाता है।

**प्रविष्टि के प्रकार**—सामान्यतः कोशों में पहले केवल मुक्त रूपिम (Free morpheme) तथा अन्य इकाइयाँ (जैसे शब्द, धातु, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि) दी जाती रही हैं। अब धीरे-धीरे बद्ध रूपिम (Bound morpheme) भी दिए जाने लगे हैं। सब मिलाकर मुख्यतः निम्नांकित प्रविष्टियाँ दी जानी चाहिए: (क) सामान्य शब्द: मूल, यौगिक; (ख) वे समस्त पद जिनके विशिष्ट अर्थ हों। जैसे नीलगाय, बाप-दादे, माई-बाप, दशानन, भाई-भतीजा, दिन-रात आदि। सामान्य अर्थ वाले समस्त पदों को देना अनावश्यक है, क्योंकि उनके अर्थ का पता उनके सदस्यों के अर्थों से चल जाता है, जैसे साहित्येतिहास, माता-पिता, भाई-बहिन आदि। ऐसे ही 'काली मिर्च' (जो जलकर काली हो गयी हो) नहीं लेंगे, पर 'कालीमिर्च' लेंगे, 'लाल-कपड़ा' नहीं लेंगे, पर 'लाल झंडा', 'लालमिर्च' लेंगे, 'बड़ा देवता' नहीं लेंगे, पर 'महादेव' लेंगे। 'पीतांबर' लेंगे, 'श्वेताम्बर' लेंगे, किन्तु 'रक्तांबर' नहीं; 'नीलकमल' लेंगे किन्तु 'रक्तकमल' नहीं। ऐसे ही शिव-रात्रि, राष्ट्रपति, राष्ट्रपिता भी लिए जाएँगे। (ग) कुछ पदबन्ध भी लिए जाते हैं, यदि उनका विशिष्ट अर्थ हो। उदाहरण के लिए 'राम व मोहन' कोश में नहीं लिए जाएँगे, किन्तु आबोहवा (आब व हवा) लेंगे, क्योंकि इसका विशेष अर्थ है (घ) कुछ भाषाओं में प्रतिध्वनि शब्दों के आधार पर सभी शब्दों की पुनरुक्ति या द्विरुक्ति (घोड़ा-वोड़ा, खाली-वाली) होती है, उन्हें कोश में देने की आवश्य-

कता नहीं, किन्तु 'आगे-आगे' 'पीछे-पीछे' जैसी द्विरुक्तियाँ, सुबह-सवेरे, लाज-शर्म, मार-पीट जैसी समानार्थी द्विरुक्तियाँ, ऊँच-नीच, कहना-सुनना, जैसी विरोधी द्विरुक्तियाँ, पच्चीस-पचास जैसी कम-अधिक वाली तथा सौ-पचास जैसी अधिक-कम वाली पुनरुक्तियाँ दी जानी चाहिए। (ङ) बनिया-बक्काल, सौदा-सुलुफ़, जैसे कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं, जिनके दूसरे सदस्य अलग से हिन्दी में नहीं आते। प्रश्न यह है कि क्या इनकी भी कोश में अलग प्रविष्टि हो। मेरे विचार में होनी चाहिए। इनको यथास्थान देकर इनका अर्थ दें तथा यह भी संकेत कर दें कि ये स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं होते, केवल इन-इन शब्दों में द्वितीय सदस्य के रूप में आते हैं। (च) कुछ शब्दों के भाषा में अनेक रूप मिलते हैं। जैसे काग़ज़-कागज-कागद-कागर। ये सभी शब्द यथास्थान दिए जाएँगे, किन्तु अर्थ एक स्थान पर दिया जायेगा, तथा अन्य स्थान पर उस शब्द का संकेत कर देंगे, जहाँ अर्थ दिया गया है। उपर्युक्त उदाहरणों में 'काग़ज़' में अर्थ दिया जाएगा, किन्तु प्रविष्टि सभी की होगी। ऐसे में कभी-कभी अर्थभेद भी होते हैं। ऐसे शब्दों के अलग अर्थ भी यथास्थान दिए जाएँगे। जैसे 'रिपोर्ट' और 'रपट'। इनमें 'रपट' का प्रयोग हिन्दी में मात्र 'पुलिस की रपट' तथा कभी-कभी 'साहित्यिक गोष्ठियों की रपट'—केवल दो ही सन्दर्भों में होता है, जबकि 'रिपोर्ट' के काफ़ी व्यापक प्रयोग और तदनुसार अर्थ हैं। (छ) कुछ शब्दों के कुछ प्रसंगों में विशिष्ट अर्थ हो जाते हैं। जैसे 'चलता' का 'चलता-पुरज़ा' या 'चलता आदमी' में एक अर्थ है, किन्तु 'चलती रकम', 'चलती चक्की' में उसका अर्थ थोड़ा भिन्न है। मेरे विचार में 'चलता' के अन्तर्गत 'चलती रक़म', 'चलती चक्की' जैसे विशिष्ट प्रयोग अर्थ के साथ दे दिए जाने चाहिए तथा 'रक़म' तथा 'चक्की' आदि की प्रविष्टि में भी दे० 'चलता' लिख देना चाहिए। (ज) कुछ भाषाओं में संयुक्त धातुओं का अर्थ विशेष होता है, अतः वे प्रयोग एवं अर्थ के स्तर पर अलग इकाई हैं। उदाहरण के लिए, 'आना'—'आ मरना', 'लिखना'—'लिख मारना'। मेरे विचार में हर धातु के साथ उसके संयुक्त धातु वाले रूप भी दिए जाने चाहिए। इसके दो कारण हैं। एक तो इससे कोश देखने वाले को यह पता चल जाएगा कि उक्त धातु का प्रयोग किन-किन रंजक धातुओं के साथ हो सकता है, दूसरे यह भी पता चल जाएगा कि उक्त धातु का विभिन्न रंजक क्रियाओं के साथ मिलने पर क्या अर्थ हो जाता है। उदाहरणार्थ, बोलना-बोल, उठना-बोल, पड़ना-बोल, जाना ; आ मरना-आ जाना-आ पड़ना-आ धमकना-आ टूटना; तोड़ना-तोड़ देना-तोड़ डालना, आदि। (झ) विशिष्ट रूप अर्थात् वे रूप जो नियम से अलग हों। उदाहरण के लिए, चला, पड़ा, लिखा आदि को देने की आवश्यकता नहीं, किन्तु किया (कर), गया (जा), कवयित्री, है, था, कीजिए ('करिए' नहीं), दो, लो, की, दी, ली आदि को देना चाहिए। (ञ) लोकोक्ति; (ट) मुहावरे, (ठ) आवृत्तिमूलक विशिष्ट प्रयोग : कर्ता-धर्ता, अता-पता, जोड़-तोड़, पान-पत्ता, पूछ-ताछ, चाय-पानी, सौदा-सुलुफ़, खर्चा-पानी। (ड) अनेक भाषाओं में सामान्य बोलचाल में कूट-मिश्रण (Code-mixing) का बहुत प्रचलन होता है। उदाहरण के लिए, भारत के प्रायः सभी भाषाओं के बोलने वाले सुशिक्षित लोग अनौपचारिक रूप

से बोलने में (न लिखने में, न औपचारिक रूप से बोलने में) बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते चलते हैं। ये शब्द भारतीय भाषाओं के शब्द-भण्डार के अंग नहीं हैं, किन्तु अनौपचारिक बोलचाल में बहुप्रयुक्त हैं : आज **ईवनिंग में डिनर** पर **मिलेंगे** ; मेरे एक **रिलेशन** आए हैं जो **आउट ऑफ़ जॉब** हैं; **फ़ादर हास्पिटल** में हैं और **मदर सर्विस** में...। क्या कोशकार इन शब्दों को कोश में लें ? इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि जो शब्द उस भाषा में गृहीत हैं, कोशकार केवल उन्हीं को ले। अर्थात् हिन्दी की बात लें तो कोट, पैंट, टाई, फ्रिज, रेडियो, टेलीविजन, सोफ़ा आदि तो लिए जाएँगे, किन्तु ऊपर के वाक्यों में काले टाइप में दिए गए शब्दों के वर्ग के शब्द नहीं। यह दूसरी बात है कि आज के कथा साहित्य, नाटक तथा एकांकी में इस वर्ग के शब्द भी खूब मिलते हैं। वस्तुतः कठिनाई यह है कि इनको कोशकार ले तो हर भारतीय भाषा के कोश में दस-बारह हज़ार अंग्रेज़ी के भी ऐसे शब्द लेने पड़ेंगे, जो न तो कभी हमारी भाषाओं के शब्द-भण्डार के अंग थे, न हैं, और न आगे होंगे। (ढ) भाषाओं में कुछ 'अर्थ' ऐसे भी मिलते हैं जिनके लिए अपने शब्द भी एक ही काल में चल रहे होते हैं, तथा गृहीत शब्द भी। जैसे भोज-डिनर, आंसुका-मीसा, निविदा-टेंडर, रोधाधिकार-वीटो, बैठक-मीटिंग, अध्यापक-टीचर आदि। वस्तुतः जो बात ऊपर कही गयी वही यहाँ भी लागू होती है। जो गृहीत है, उन्हें तो ले लें, किन्तु जो मात्र कूट-मिश्रण के परिणामस्वरूप आये हैं, उन्हें न लें। (ण) कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनके दो रूप भाषा में प्रयुक्त होते हैं। एक तो वह जो अपनी भाषा का मूलतः है (जैसे दीमक), और दूसरा वह जो अन्य भाषा से अनूदित होकर चल पड़ा है (जैसे white ant—सफ़ेद चींटी)। यदि दूसरा शब्द भी प्रचलन के आधार पर भाषा के शब्द-भण्डार का अंग बन गया है, तो उसे भी छोड़ा नहीं जा सकता। पहला तो कोश में लिए जाने का सर्वथा अधिकारी है ही। (त) उपसर्ग; (थ) प्रत्यय : आदिप्रत्यय, मध्यप्रत्यय, अंत्यप्रत्यय, (द) परसर्ग, (ध) निपात, (न) क, ख, ग, आदि अक्षर। इसके दो कारण हैं। एक तो कई भाषाओं में इनका भी अर्थ होता है। जैसे अंग्रेजी में ए (सबसे अच्छा), बी (उससे बुरा या नीचे), सी (उससे भी बुरा या नीचे), या संस्कृत में ख (आकाश : खग) आदि। (प) मुहावरे। कभी-कभी लोग एक ढाँचे के भ्रम में कोश में ऐसे वाक्यांश दे जाते हैं जो मुहावरे नहीं होते। उदाहरण के लिए, 'मुर्दा दफ़न करना' और 'राज दफ़न करना' की बात लें। पहले का अर्थ अभिधार्थ है, अतः वह कोश में अन्यत्र दिए गए 'मुर्दा', 'दफ़न', 'करना' शब्दों के अर्थ से अलग नहीं है, अतः उसके देने की कोश में आवश्यकता नहीं। इसके विपरीत 'राजा दफ़न करना' में लक्षणा है, यह मुहावरा है, क्योंकि 'राज' दफ़न करने की चीज नहीं, अतः इसकी प्रविष्टि कोश में होगी। निष्कर्षतः वाह्य संरचना में 'मुहावरे-जैसे वाक्यांश' तथा 'मुहावरा' में अन्तर करना चाहिए तथा 'मुहावरा' ही कोश में जाना चाहिए, वाह्य संरचना में मुहावरे-जैसे वाक्यांश नहीं। (फ) लोकोक्ति, कहावत, मसल —इनमें कुछ तो लोक-प्रयोग से विकसित होती हैं, तथा कुछ प्रसिद्ध कवियों के छन्दांश होते हैं। (ब) भाषा में बहुत-से शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि अश्लील होते हैं। उन्हें

कोश में दें या नहीं ? बड़े कोशों में अवश्य दें, छोटे कोशों में उन्हें छोड़ा जा सकता है, किन्तु यह इसलिए नहीं कि वे अश्लील हैं; बलिक, इसलिए कि उन्हीं कोशों में उन्हें देना अधिक आवश्यक है, जिन्हें देखने के लिए कोश प्रायः देखा जा सकता है। (भ) विशिष्ट प्रयोग (जैसे जो होगा देखा जाएगा, थोड़ा धक्का लग जाए तो काम चल पड़े आदि)।

### प्रविष्टि-चयन

अब हमारे पास लिखित और बोलित भाषा दोनों के शब्दों की सूची हो गई। कोश के लिए प्रविष्टि चुनने में दो बातों का ध्यान रखना चाहिए—(क) यदि केवल लिखित साहित्य (जैसे प्राचीन साहित्य, प्राचीन काल, प्राचीन धारा, पुस्तक, किसी की पूरी ग्रन्थावली आदि) का कोश बनाना हो तो केवल लिखित की शब्दानुक्रमणी से प्रविष्टियाँ ली जाएँगी। यदि केवल बोलित का बनाना हो तो बोलित की, किन्तु यदि दोनों का सम्मिलित रूप से बनाना हो तो दोनों को मिलाकर। (ख) इस प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि कितनी और कौन-कौन-सी प्रविष्टियाँ ली जाएँ ? यह निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि कोश का सम्भावित प्रयोक्ता कौन है ? दसवीं तक का विद्यार्थी, बी० ए० तक का विद्यार्थी, मातृभाषी या द्वितीय भाषा के रूप में उस भाषा को सीखने वाला या उसे विदेशी भाषा के रूप में सीखने वाला, सामान्य जनता, अनुवादक या विद्वान् भी। इस तरह कोश के सम्भावित प्रयोक्ता के लिए उपयोगी प्रविष्टियाँ चुन ली जानी चाहिए।

### प्रविष्टि-वर्गीकरण

कोश के लिए प्रविष्टियाँ चुन ली गईं, किन्तु सारी-की-सारी मुख्य प्रविष्टि के रूप में नहीं जा सकतीं। उदाहरण के लिए मान लें, चुनी हुई प्रविष्टियों में 'तिल,' 'तिलकुट,' 'तिलचट्टा,' 'तिल का ताड़ करना,' 'तिल भर का अन्तर,' तथा 'तिलों में तेल न होना' ये छः भी हैं, तो क्या इनको अलग-अलग मुख्य प्रविष्टि के रूप में रखा जाएगा ? इस सम्बन्ध में ये बातें ध्यान देने की हैं : (1) लोकोक्तियाँ, मुहावरे तथा विशिष्ट प्रयोग, मुख्य प्रविष्टि के रूप में, प्रायः नहीं रखे जाते। वे प्रायः पहले शब्द की मुख्य प्रविष्टि के पेटे में रखे जाते हैं। अर्थात् अन्तिम तीन को 'तिल' के साथ पेटे में रखना होगा। (2) जहाँ तक शब्दों का सम्बन्ध है, मुख्यतः तीन प्रकार की परंपराएँ हैं : (अ) कुछ लोग सभी शब्दों को अलग-अलग मुख्य प्रविष्टि मानकर रखते हैं। उस दृष्टि से शेष तीनों अलग-अलग रखे जाएँगे। (आ) कुछ लोग एक ध्वन्यात्मक शब्द (यहाँ 'तिल') से बनने वाले सभी शब्दों को, उस एक शब्द (यहाँ 'तिल') को मुख्य प्रविष्टि मानकर, उसी के पेटे में रखते हैं। उस दृष्टि से 'तिलकुट' तथा 'तिलचट्टा,' 'तिल' के ही अन्तर्गत रखे जाएँगे। इसी प्रकार 'आकाशकुसुम', 'आकाशगंगा,' 'आकाशदीप,' 'आकाशभाषित,' 'आकाशमंडल' आदि 'आकाश' को मुख्य प्रविष्टि मानकर उसके पेटे में रखे जाएँगे। (इ) एक तीसरी पद्धति यह भी है कि केवल ध्वन्यात्मक

समानता के आधार पर मुख्य और गौण का वर्गीकरण नहीं करना चाहिए, अपितु अर्थ के आधार पर। अर्थात् 'तिल' के पेटे में 'तिलकुट' तो रखा जाएगा, किन्तु 'तिलचट्टा' नहीं, क्योंकि इसका 'तिल' तिल न होकर 'तेल' (तेल+चाट+आ = तिलचट्टा = तेल चाटने वाला) है।

अनेकार्थ शब्द (Polysemy)—ऊपर प्रविष्टियों को एक में (मुख्य और गौण प्रविष्टि के रूप में) रखने या न रखने के सम्बन्ध में अर्थ की चर्चा की गयी। इस प्रसंग में 'अनेकार्थ शब्द' की चर्चा भी आवश्यक है। 'अनेकार्थ' शब्द का अर्थ है वह शब्द जिसके कई अर्थ हों। 'पानी' (जल, कांति, इज्जत), 'दाई' (बच्चा पैदा कराने वाली, धाय, नौकरानी), 'तिलक' (माथे का टीका, विवाह के पूर्व की एक रस्म जिसमें तिलक लगाते हैं), 'घोड़ी' (अश्वा, चार पैर की सीढ़ी, बड़ा और ऊँचा स्टूल) आदि शब्द ऐसे ही हैं। सामान्यतः (क) अनेकार्थ शब्द के सभी अर्थ आपस में सम्बद्ध होते हैं, (ख) उनमें कोई एक अर्थ केन्द्रीय अर्थ होता है (उपर्युक्त उदाहरणों में सभी का पहला अर्थ केन्द्रीय है), तथा (ग) सभी अर्थों में उस शब्द की एक ही व्युत्पत्ति होती है। यदि किसी शब्द के अर्थों तथा उसकी व्युत्पत्ति पर ये तीन बातें लागू हों, तो, उसे अनेकार्थ शब्द माना जाना चाहिए। इस प्रकार के अनेकार्थ शब्द की कोश में एक ही प्रविष्टि होती है।

समरूप शब्द (Homonymy)—कोश में प्रविष्टि के सन्दर्भ में समरूप शब्द पर भी विचार आवश्यक है। समरूप शब्द उसे कहते हैं, जो वस्तुतः एक शब्द न हो। मूलतः और तत्त्वतः एकाधिक अलग-अलग शब्द जब उच्चारण और वर्तनी में एक होते हैं, अर्थात् वे एक रूप धारण कर लेते हैं, तो उनकी संज्ञा 'समरूप शब्द' हो जाती है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में एक 'आम' शब्द संज्ञा है और इसका अर्थ 'आम का पेड़' या 'फल' होता है, दूसरा 'आम' शब्द विशेषण है जिसका अर्थ 'सामान्य' या 'साधारण' होता है। स्पष्ट ही ये दोनों दो शब्द हैं, एक नहीं, किन्तु चूँकि इनका 'रूप' (उच्चारण, वर्तनी) एक है, अतः ये समरूप शब्द हैं। समरूप शब्द की पहचान है: (क) इनके उच्चारण एक होते हैं; (ख) इनकी वर्तनी एक होती है; (ग) इनके अर्थों में सम्बन्ध नहीं होता (घ) इनमें किसी भी एक का अर्थ केन्द्रीय और दूसरे का परिधीय नहीं होता; (ङ) इनकी व्युत्पत्तियाँ अलग होती हैं (संज्ञा 'आम' सं० 'आम्र' से निकला है, तो विशेषण आम अरबी 'आम' से); (च) वाग्भाग (Parts of speech) की दृष्टि से भी अन्तर हो सकता है (जैसे आम संज्ञा है, तो आम विशेषण), किन्तु यह आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए, 'दाम' दो समरूप शब्द हैं, किन्तु दोनों संज्ञा हैं: दाम[1] (ग्रीक द्राख्मे, सं० द्रम्य, प्रा० दम्म, हिन्दी दाम)—मूल्य, क़ीमत, पैसा, दाम; दाम[2] (सं०)—रस्सी। ऐसे ही दाग[1] (सं० दग्ध)—दाह-संस्कार, दाग[2] (फ़ा० दाग़)—निशान, धब्बा, कलंक। इस प्रकार समरूप शब्दों को एक अनेकार्थी शब्द मानकर कोश में उसकी एक प्रविष्टि नहीं होनी चाहिए। उपर्युक्त उदाहरणों में आम, दाम, दाग इन तीनों की दो-दो अलग-अलग प्रविष्टियाँ होनी चाहिए। ऐसी समरूप प्रविष्टियों को कोश में चार प्रकार से दिया जाता है: (क) अलग-अलग मुख्य प्रविष्टि के रूप में सबको देते हैं तथा ऊपर एक (दाम[1]), दो (दाम[2]) या

अधिक शब्द हों तो तीन, चार, पाँच आदि लिख देते हैं; (ख) कभी-कभी बिना अंक दिए भी अलग-अलग प्रविष्टियों के रूप में लिखते हैं; (ग) कुछ कोशों में प्रविष्टि तो एक ही होती है, किन्तु अलग-अलग पंक्ति में अलग-अलग व्युत्पत्ति व्याकरण तथा अर्थ आदि देते हैं। (घ) कुछ कोशकार लगातार, बिना यह संकेत किए कि यह अलग शब्द हैं, सभी अर्थ दे देते हैं, और ऐसा लगता है कि वे किसी अनेकार्थ शब्द के अर्थ दे रहे हैं। सच पूछा जाए तो वे अनेकार्थता तथा समरूपता में अन्तर ही नहीं करते जो अवैज्ञानिक है। यों सबसे अच्छी पद्धति पहली है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी शब्द समरूप हैं, साथ ही यह भी पता चल जाता है कि उस समरूपता के सदस्य कितने शब्द हैं।

निष्कर्षत: कोशकार को इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना चाहिए कि समरूप शब्द को वह अनेकार्थ शब्द मानकर एक प्रविष्टि न कर दे, या अनेकार्थ शब्द को कई समरूप शब्द मानकर उनकी अलग-अलग प्रविष्टि न कर दे। अभ्यास के लिए दाना, तिलक, पतंग, माता, ढला, चिक, चलन, कुंजर, बेगम, लाल तथा लाट आदि शब्दों को लेकर निर्णय किया जा सकता है कि इनमें किसे अनेकार्थ शब्द मानें और किसे समरूप शब्द।

## पुनश्च

इस प्रसंग में यह भी संकेत है कि लेखन, उच्चारण, स्वनिम, रूप-रचना, अर्थ तथा व्युत्पत्ति के स्तर पर 'शब्द' सर्वदा एक से नहीं होते। उदाहरण के लिए, 'नाना' लेखन में एक शब्द है (नाना), उच्चारण में एक है (नाँनाँ), स्वनिमिक दृष्टि से एक है (नाना), रूप की दृष्टि से एक है (नाना), किन्तु अर्थ और व्युत्पत्ति की दृष्टि से दो हैं। 'दायी' और 'दाई' लेखन, स्वनिम, रूप, अर्थ तथा व्युत्पत्ति के स्तर पर दो शब्द हैं, किन्तु उच्चारण के स्तर पर एक। आज की हिन्दी में 'कोप' तथा 'कोश' लेखन तथा अर्थ के स्तर पर दो शब्द हैं, किन्तु उच्चारण, स्वनिम एवं रूप के स्तर पर एक। 'महादेव,' 'आबहवा,' 'जलवायु' रूप-रचना के स्तर पर दो-दो शब्द हैं, किन्तु अर्थ के स्तर पर एक-एक। 'आम' लेखन, उच्चारण, स्वनिम, रूप-रचना में एक शब्द है, किन्तु अर्थ और व्युत्पत्ति की दृष्टि से दो हैं।

भारतीय परंपरा में सामान्य धारणा रही है 'अर्थभेदे शब्दभेदः' अर्थात् अर्थ-भेद से शब्द-भेद होता है। 'अर्थभेद' का अर्थ सामान्य अर्थभेद नहीं है। ऐसा अर्थभेद जिसके आपस में सम्बद्ध होने की सम्भावना न हो। एक उदाहरण लें। सं० में 'मद' का अर्थ 'गर्व' या 'घमंड' भी है तथा 'हाथी की कनपटी से बहने वाला गन्धयुक्त द्रव' भी। प्रश्न यह उठता है कि यह अर्थभेद है या नहीं? वस्तुत: यह अर्थभेद नहीं है। मूलत: इसका अर्थ 'मस्ती' है और मस्त हाथी के ही मद बहता है, तथा घमंड भी एक प्रकार की अपने-आप में मस्ती है। इस तरह यह अर्थभेद वैसा नहीं है जिसके आधार पर 'मद' को दो शब्द माना जा सके। अर्थात् 'अर्थ-भेद है या नहीं'—इसके लिए यह देखना चाहिए कि अर्थ-संकोच, अर्थ-विस्तार, अर्थादेश तथा लक्षणा और व्यंजना आदि के आधार पर उन अर्थों

को जोड़ा जा सकता है या नहीं। यदि जोड़ा जा सकता है तो अर्थ-भेद नहीं है, और नहीं तो है।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि संस्कृत-परंपरा की व्युत्पत्ति शब्द-भेद का बहुत प्रौढ़ आधार नहीं है, क्योंकि 'अनेकार्थाहि धातवः' (अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं) के आधार पर बहुत-से अलग-अलग अर्थवाले शब्दों को भी एक धातु से व्युत्पन्न मान लिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का एक शब्द 'धावक' लें। इसके दो अर्थ हैं 'धोबी' तथा 'दौड़नेवाला'। स्पष्ट ही ये दोनों अर्थ असम्बद्ध हैं, अतः 'धावक' को दो समध्वनीय शब्द मानना चाहिए, किन्तु कई धातु पाठों में 'धा' धातु के ही आधार पर इन दोनों अर्थों में 'धावक' की व्युत्पत्ति दी गयी है और 'धो' का अर्थ 'गति' तथा 'शुद्धि' दोनों (धावु गति शुद्धयोः) मान लिया गया है। इसका अर्थ है कि इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'धावक' को दो शब्द नहीं माना जा सकता, हालाँकि दो आपस में असम्बद्ध अर्थों के आधार पर दो शब्द होने में कोई सन्देह नहीं है।

हाँ, आधुनिक परंपरा की व्युत्पत्ति इसका आधार अवश्य है, क्योंकि असम्बद्ध अर्थवाले शब्दों की वास्तविक व्युत्पत्ति भी निश्चित रूप से अलग होगी। उदाहरणार्थ :

**दाम**—(ग्रीक द्राख्मे) रुपया, पैसा, मूल्य; (सं०) रस्सी

**दम**—(फ़ा०) साँस; (सं०) इंद्रियों को वश में रखना,

**मद**—(सं०) हाथी की कनपटी का गन्धयुक्त स्राव, घमंड; (अरबी) खाता।

**दाना**—(फ़ा० दानः) अनाज; (फ़ा०) बुद्धिमान।

ये सभी दो-दो शब्द हैं। इसके विपरीत—

**घड़ी**—(सं० घटिका) समय की एक नाप; समय बताने वाला यंत्र।

**बासी**—(सं० वास) जो ताज़ा न हो; जिसमें दाना-पानी न गया हो (जैसे बासी मुंह)

आदि एक शब्द हैं। कभी-कभी तो समध्वनीय शब्द तत्वतः चार-चार पाँच-पाँच होते हैं। उदाहरणार्थ :

**कल**—(सं०) मधुर (कल-कल स्वर); (सं० कल्य) आने वाला या बीता हुआ दिन; (सं०) चैन, सुख; (सं० कला) मशीन; (काला का समास में प्रयुक्त रूप कलमुहाँ) काला

निष्कर्षतः अलग-अलग शब्दों का आधार अलग-अलग असम्बद्ध अर्थ हैं, जिनके अलगाव को व्युत्पत्ति से भी समर्थित किया जा सकता है। यों यदि अर्थ, व्युत्पत्ति तथा व्याकरण तीनों का अन्तर हो तब तो अलग-अलग शब्द होना और भी सुनिश्चित हो जाता है।

इस प्रकार इन सारी बातों का विचार किया जाना चाहिए, जिनमें अधिक महत्वपूर्ण व्युत्पत्ति तथा अर्थ-सम्बद्धता है।

## वर्तनी

कोश में प्रविष्टि के लिए जो इकाइयाँ छाँटी गईं, उनके दो वर्ग बन सकते

हैं : (क) एक वर्तनीवाली, (ख) एकाधिक वर्तनीवाली। जो इकाइयाँ एक वर्तनीवाली हैं, उनके बारे में कोई भी समस्या नहीं है। वे उसी रूप में कोश में रखी जाएँगी। किन्तु जिनकी एकाधिक वर्तनियाँ हैं, उनके लिए क्या करें, यह समस्या है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में मोटे रूप से दस-बारह वर्तनी-भेद वाले शब्द मिलते हैं—

1. कर्ता-कर्त्ता, वर्तमान-वर्त्तमान, वासिष्ठ-वशिष्ठ
2. कौग्रा-कौवा, दुग्रा-दुवा, बुग्रा-बुवा, पुग्रा-पुवा, सुग्रा-सुवा
3. हौवा-हव्वा, फ़ौवारा-फ़व्वारा
4. नैया-नय्या, शैया-शय्या, ऐयाश-ग्रय्याश, ऐयारी-ग्रय्यारी
5. एकेडमी-ग्रकादमी, ट्रेजेडी-त्रासदी, कमेडी-कामदी, रेस्तोरेंट-रेस्ट्राँ-रेस्त्राँ
6. प्लेटो-ग्रफ़लातून, पैंट-पतलून
7. वह-वो, यह-ये
8. इक्कीस-इक्किस-एकइस, उनतीस-उनतिस, तिरपन-तिरेपन, छियासठ-छाछठ, पचहत्तर-पिचहत्तर-पिछत्तर, पचासी-पिचासी-पिच्चासी, पच्चानवे-पिच्चानवे-पंचानवे
9. खींचना-खेंचना-खंचना, भूंकना-भोंकना-भौंकना, परेशानी-परीशानी, यूं-यों, मोलवी-मौलवी, रोशनी-रौशनी, एकतारा-इकतारा, ईमान-इमान, ईमानदारी-इमानदारी, ढंकना-ढकना, पलंग-पलँग, सर-सिर, वहिन-वहन, दुकान-दूकान, जूठा-झूठा, पैजामा-पायजामा, गधा-गदहा
10. उलटा-उल्टा, बालटी-बाल्टी, तरबूज-तर्बूज, ग्रंगरेज-ग्रंग्रेज, ग्रंगरेजी-ग्रंग्रेजी
11. बारहसिहा-बारहसिंगा, स्थाई-स्थायी, उज्वल-उज्ज्वल, सन्यासी-संन्यासी।
12. सन्त-संत, पम्प-पंप, खण्ड-खंड।

इनमें '1' में वे शब्द हैं जिनके बारे में संस्कृत में भी विकल्प है। हिन्दी का कोश बनाने में यदि इस प्रकार के सभी विकल्प काफ़ी हों तो सभी को देना चाहिए। किन्तु यदि किसी का प्रयोग 90-95 प्रतिशत हो तथा दूसरे का 10-5 प्रतिशत तो उसे छोड़ा जा सकता है। यों ग्रर्थ उसी के साथ दें जिसका प्रयोग ग्रधिक हो तथा दूसरे के साथ केवल वहुप्रयुक्त रूप को देखने का संकेत दे दें। '2' में क्षेत्रीय ग्रन्तर वाले शब्द हैं। 'व' के बिना पश्चिम में लिखते हैं तो 'व' से युक्त पूरब में। इनमें दोनों को ले सकते हैं। ग्रर्थ 'व'-विहीन के साथ देना चाहिए, क्योंकि मानक वे ही हैं। '3' तथा '4' में 'व्व' तथा 'य्य' वाले छोड़े जा सकते हैं। इनका प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर होता है। '5' तथा '6' दोनों लिए जाने चाहिए। यदि ग्रर्थ बिलकुल एक हों तो वहुप्रयुक्त के साथ ग्रर्थ दें, तथा दूसरे में पहले को देखने का संकेत कर दें। यों 'ग्रफ़लातून' तथा 'प्लेटो' के ग्रर्थ ग्रौर प्रयोग में भी ग्रन्तर है, ग्रतः दोनों स्थानों पर ग्रर्थ देना होगा। '7' में प्रायः पहले वाले रूप लेखन में हैं तथा दूसरे उच्चारण में। यों 'यह' का 'ये' वहुवचन भी है। इनमें सभी दे दें। 'ये' के दो ग्रर्थ हैं 'यह' तथा 'यह' का बहु०। '8' तथा '9'

क्षेत्रीय भेद के हैं। इनमें प्रायः सभी को लेना पड़ेगा तथा वहुप्रयुक्त के साथ अर्थ देना होगा। अर्थ के साथ-साथ इनके क्षेत्र का भी उल्लेख उपयोगी रहेगा। '10' की समस्या मध्य अ-लोप का परिणाम है, और इस प्रकार के शब्द हिन्दी में वहुत हैं। इनके भी दोनों रूप देने होंगे, क्योंकि एक का अभ्यस्त उसे कोश में न पाकर यह निष्कर्ष निकाल सकता है, कि शब्दकोश में नहीं है। '11' में ग़लत वर्तनी वाले शब्द आते हैं। इनमें व-व (विद्यार्थी-विद्यार्थी), य-ज (यदि-जदि), क्ष-छ (क्षात्र-छात्र), श-स, तथा क़-क, ख़-ख, ग़-ग, ज़-ज, फ़-फ की अशुद्धि वाले और भी अनेक प्रकार के शब्द भी आ सकते हैं। इनके शुद्ध रूप ही देने चाहिए। '12' में हिन्दी में विकल्प है। यों कोशों में अनुस्वार वाले रूप ही देने चाहिए क्योंकि कोशों में ये ही स्वीकृत हैं।

यों जिन दो या तीन में कोई एक ही मानक हो, उसके साथ यह उल्लेख होना चाहिए, ताकि कोश का प्रयोक्ता मानकता-अमानकता की पहचान कर सके।

एक दूसरे स्तर पर भी वर्तनी की वात की जा सकती है। कोश में प्रविष्टि में तो उपर्युक्त रूप में वर्तनी का ध्यान रखा जाना चाहिए ही, साथ ही अर्थ, व्याख्या, उद्धरण आदि, जो कोशकार अपनी ओर से देता है, उसमें भी मानक वर्तनी का प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि क्षेत्र-विशेष का कोशकार वहाँ की प्रचलित वर्तनी का प्रयोग कर देता है, किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। कोशकार क्षेत्र-विशेष का नहीं होता, वह क्षेत्र से ऊपर होता है।

## क्रम

प्रविष्टियों की वर्तनी पर विचार कर लेने के वाद उनके क्रम की समस्या आती है। प्रविष्टियों को किस क्रम में रखें। पहले मुख्य प्रविष्टियों की वात लें। वस्तुतः, पहले तो कोशों में क्रम, जैसा कि अन्यत्र भी संकेत किया जा चुका है, अक्षर-संख्या तथा अंत्य व्यंजन के आधार पर भी होता था, किन्तु अव प्रायः आदि ध्वनि के क्रम के अनुसार ही होता है। इस क्रम का सम्वन्ध लिपि-क्रम से है। रोमन या उस वर्ग की लिपियों में सीधे ए से ज़ेड तक क्रम रखते हैं, जैसे abstract तो back वाद में तथा cat उसके भी वाद में। प्रथम ध्वनि के वाद भी इसी क्रम से शब्दों को क्रमित करते हैं। उदाहरण के लिए act, abstract तथा add हों तो b पहले (abstract) c उसके वाद (act) तथा d (add) उसके भी वाद। अरवी, फ़ारसी, उर्दू आदि में भी यही पद्धति चलती है। देवनागरी या उससे सम्वद्ध लिपियों में स्थिति थोड़ी भिन्न है। इनमें (क) वर्णमाला में स्वर पहले हैं, तथा व्यंजन वाद में, अतः क्रम भी इसी के अनुरूप होता है। (ख) स्वरों में अनुस्वारयुक्त स्वर पहले। अर्थात् 'अं' तव 'अ', 'आं' पहले तव 'आ'। चन्द्रविन्दु को अनुस्वार के साथ ही उसके वाद रखते हैं। उदाहरण के लिए, अं के वाद अँ या आं के वाद आँ। (ग) व्यंजन अपने क्रम से आते हैं : क ख ग घ आदि। (घ) व्यंजन के साथ मिले स्वर भी इसी क्रम से आते हैं : हंसी-हँसी-हसी। (ङ) संयुक्त व्यंजन अपने सदस्यों के आधार पर क्रमित होते हैं। अर्थात् 'क्ष' 'क्+ष' रूप में 'क' के अन्तर्गत, 'त्र' 'त्+र' रूप में 'त' के अन्तर्गत, तथा 'ज्ञ' 'ज+ञ'

रूप में 'ज' के अन्तर्गत । 'ज्ञ' का उच्चारण आज ग्यँ या 'ग्य' है, किन्तु उसे 'ग' के अन्तर्गत नहीं रखते, क्योंकि संस्कृत वाले 'ज्यँ' उच्चारण करते हैं, तथा मराठी वाले 'द्नँ' और नागरी का प्रयोग सभी करते हैं, अतः संस्कृत मूल (ज+ञ) का अनुसरण सभी के लिए उपयुक्त है। (च) कोशों में 'ङ' क ख ग घ के पूर्व अनुस्वार लिखा जाता है : शंका, पंखा, गंगा, आदि । इसी प्रकार च छ ज झ के पूर्व ञ (चंचल) ; ट ठ ड ढ के पूर्व ण (पंडित) ; त थ द ध के पूर्व न (संत) तथा प फ ब भ म के पूर्व (पंप) भी अनुस्वार लिखा जाता है। (छ) ऑ, क़ ख़ ग़ ज़ फ़ अलग-अलग न रखे जाकर आ, क, ख, ग, ज, फ के साथ मिलाकर ही रखे जाते हैं। किसी भी अच्छे कोश (जैसे हिन्दी शब्द सागर) में शब्दों को देखकर उपर्युक्त क्रम-सिद्धान्त को विस्तार से समझा जा सकता है ।

जैसे ऊपर 'ज्ञ' को 'ग' में रखने का प्रश्न उठाया गया था, उसी प्रकार 'ऋ' का उच्चारण 'रि' होने से उसे भी 'र' में शामिल करने की बात उठाई जा सकती है, किन्तु इसका भी उत्तर वही है। 'ऋ' को मराठी वाले 'रु' बोलते हैं, अतः एक-रूपता के लिए हिन्दी या मराठी उच्चारण का अनुसरण न कर, परंपरागत वर्ण-माला के अनुसार उसे स्वर 'मानना' तथा उसकी मात्रा को अन्य स्वरों की मात्राओं की तरह मानना ही उपयुक्त है।

क्रम के प्रसंग में यह तो मुख्य प्रविष्टि की बात की । गौण प्रविष्टि अर्थात् जो पेटे में दी जाती हैं, उनमें भी मुख्य जैसा ही क्रम रखा जाता है। हाँ, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के विषय में थोड़ी अव्यवस्था है । उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी के कोश मुख्य शब्द के आधार पर इन्हें देते हैं। जैसे, to bell the cat, to rain cats and dogs तथा to turn cat in the pan इन तीनों में, cat को मुख्य शब्द मानकर cat शब्द के भीतर ही इन्हें प्रायः दिया है । प्रश्न यह है कि bell क्यों मुख्य नहीं है, और cat है, या dog नहीं है cat है, या pan नहीं है cat है—इसका निर्णय कैसे हो ? और यह निर्णय इतना व्यक्तिपरक होगा कि आवश्यक नहीं कि कोश का प्रयोक्ता भी उसे वहीं देखे । इसीलिए अंग्रेज़ी कोशों में लोकोक्तियों और मुहावरों को खोजने में मुझे काफ़ी कठिनाई होती रही है । कई बार तो ऐसा ही हुआ, कि कई स्थानों पर देखने से ही तो अपेक्षित प्रविष्टि मिल पाई। मेरे विचार में मुहावरों और लोकोक्तियों के पहले शब्द के अन्तर्गत ही उन्हें देना चाहिए। अंग्रेज़ी में मुहावरों में to लगाते हैं, अतः to के बाद जो शब्द हो उसी के अन्तर्गत उसे आना चाहिए। इसके आधार पर कोई भी व्यक्ति सरलता से अपेक्षित प्रविष्टि खोज लेगा ।

## उच्चारण

उच्चारण भी कोश का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, मुख्यतः द्विभाषिक कोशों में, या फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं के एकभाषिक कोशों में, जिनमें वर्तनी और उच्चारण में काफ़ी अन्तर होता है। उच्चारण में कहाँ उच्चारण वर्तनी से अलग है, बलाघात तथा अक्षर-विभाजन दिया जाता है। अंग्रेज़ी-जैसी भाषाओं में बलाघात बहुत आवश्यक है, जहाँ संज्ञा तथा क्रिया में बलाघात के आधार पर
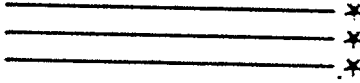
अन्तर होता है (present-present)। हिन्दी के कुछ शब्दों के उच्चारण भी यहाँ उदाहरण के लिए देखे जा सकते हैं : नाँ-नाँ (नाना), अद्-ध्या-पक् (अध्यापक), अग्-ग्यान् (अज्ञान), अब्-भ्यास् (अभ्यास), आ-मद्-नीं (आमदनी)। यदि कोई कोश केवल उच्चारण का हो तो उसमें हर शब्द के एकाधिक उच्चारण भी, यदि प्रचलित हों, दिए जा सकते हैं, किन्तु यह संकेत होना चाहिए कि उनमें कौन-सा अधिक प्रचलित या मानक है। सामान्य कोशों में केवल एक प्रचलित उच्चारण देना ही पर्याप्त है। उच्चारण देने में जिन विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग हो, उन्हें कोश के प्रारम्भ में दे देना चाहिए। कुछ कोश तो मुख्य चिह्नों को सोदाहरण हर पृष्ठ पर नीचे दे देते हैं, ताकि प्रयोक्ता को बार-बार प्रारम्भ में उच्चारण-सूची न देखनी पड़े।

सामान्यतः उच्चारण में अक्षर-विभाजन योजकचिह्न से तथा बलाघात अक्षर के पूर्व खड़ी या थोड़ी तिरछी रेखा से दिखाते हैं। वैदिक शब्दों में स्वर दिखाने की परंपरा भिन्न है जिसे किसी भी संहिता के विभिन्न संस्करणों से देखा जा सकता है। यहाँ ऊपर के उदाहरण में बलाघातित अक्षर काले टाइप में दिखाए गए हैं। वस्तुतः छापे में खड़ी रेखा के टूट जाने का खतरा रहता है, अतः मैं अपनी पुस्तकों में प्रायः इसी का प्रयोग करता हूँ। हाँ, यदि प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक बलाघात संकेतित करने हों तो यह पद्धति काम नहीं दे सकती।

### व्याकरण

'प्रविष्टि' व्याकरण की दृष्टि से क्या है, यह भी कोश में देते हैं। कुछ कोशों में मुख्य प्रविष्टि के साथ ही इसे देते हैं, किन्तु कुछ में, सभी प्रविष्टियों के साथ। वस्तुतः अधिक से अधिक प्रविष्टियों के साथ व्याकरण के संकेत देने चाहिए। व्याकरण के संकेत संक्षेप में देते हैं, अतः पहले से इसकी संकेत-सूची बना लेते हैं। जैसे सं० = संज्ञा, सर्व० = सर्वनाम, क्रि० = क्रिया, वि० = विशेषण, क्रिया-वि० = क्रिया विशेषण आदि। लिंग का संकेत स्त्री०, पु० रूप में देते हैं। अकर्मक-सकर्मक को अक० सक० रूप में। कोश में स्थान बचाने का बहुत महत्त्व होता है, अतः संक्षेप में संकेत देना अच्छा होता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी-कोशों में प्रायः सं० के साथ स्त्री० पु० देते हैं। संज्ञा के साथ ही स्त्री० पु० लिखते हैं, अतः स्त्री० पु० देना पर्याप्त होना चाहिए। इनके साथ सं० देना अनावश्यक है। ऐसे ही क्रि० अक०, क्रि० सक० भी अनावश्यक है। क्रिया ही अक० सक० होती है, अतः अक० सक० लिखना पर्याप्त है। क्रि० लिखने की आवश्यकता नहीं। व्याकरण के साथ कुछ और चीजें भी दी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, राजा, पिता, लाला, चाचा आदि के कारकीय रूप सामान्य आकारान्त पुल्लिंग शब्दों की भाँति नहीं होते। ऐसी स्थिति में इन अपवादों के साथ अप० या इसी प्रकार का कोई संकेत दे सकते हैं तथा संक्षेप-सूची में उसे समझाया जा सकता है। ऐसे ही उमदा, जिंदा, ताजा आदि बहुत-से विशेषण सामान्य आकारान्त की तरह (अच्छा-अच्छी-अच्छे) परिवर्तित नहीं होते, इनके साथ भी अप० जैसे कुछ संकेत दिए जा सकते हैं। ऐसे ही 'सुनहरी' का 'सुनहरा'

नहीं बनता, अतः मूल शब्द 'सुनहरी' देना चाहिए, 'सुनहरा' नहीं, तथा इसके साथ अप० लिख देना चाहिए, जिसका अर्थ यह होगा कि 'सुनहरी' परिवर्तनीय विशेषण नहीं है। कहना न होगा कि बड़ी, अच्छी आदि से यह भिन्न है। विशेषण के साथ वह 'विशेष्य विशेषण' है या 'विधेय विशेषण' या 'दोनों,' इसका संकेत भी उपयोगी होगा। 'दर्शन' या 'प्राण' का प्रयोग हिन्दी में बहुवचन में होता है। ऐसी संज्ञाओं के साथ बहु० लिख देना उपयोगी होगा। कुछ संज्ञाओं के लिंग के बारे में मतभेद होता है। इनके साथ दोनों लिंग दे देना उचित होगा। उदाहरण के लिए, 'दही' कोशों-व्याकरणों में पु० है, किन्तु हिन्दी के काफ़ी लोग इसे स्त्रीलिंग बोलते हैं। हिन्दी की अधिकांश बोलियों में भी यह स्त्रीलिंग ही है। पु० शब्दों के साथ उसका स्त्री रूप भी जैसे 'कवि' (स्त्री० कवयित्री) दिया जा सकता है। ऐसा करने में वर्णानुक्रम की दृष्टि से कवयित्री को अपने स्थान पर लिखकर दे० 'कवि' लिखना पर्याप्त होगा। ऐसे ही शेर में 'शेरनी', घोड़ा में 'घोड़ी,' सुत में 'सुता' या हिरन में 'हिरनी' दे सकते हैं। इसी प्रकार लघुअर्थक रूप (लोटा-लुटिया, चोटी-चुटिया, खाट-खटिया) भी दिए जा सकते हैं। कहीं-कहीं स्त्री० में पुल्लिंग भी देना पड़ सकता है। जैसे भेड़ में 'भेड़ा' या भैंस में 'भैंसा' आदि। ऐसे ही अकर्मक के साथ सकर्मक (जैसे चल में 'चला'), सकर्मक के साथ अकर्मक (जैसे 'देख' में 'दिख' या 'कर' में 'हो'), प्रथम प्रेरणार्थक ('पढ़' में 'पढ़ा') और द्वितीय प्रेरणार्थक ('पढ़' में पढ़वा') भी दिए जा सकते हैं। इन सबके दे देने से प्रयोक्ता के लिए बहुत सारी व्याकरणिक सूचनाएं एक स्थान पर मिल जाती हैं। संज्ञा के साथ गणनीय-अगणनीय की सूचना भी उपयोगी होती है, जिसका संकेत यह है कि किसके बहुवचन बन सकते हैं तथा किसके नहीं। यही नहीं, धातुओं में अलग-अलग व्याकरणिक संकेत के साथ अलग-अलग अर्थ देना भी उपयोगी होगा। जैसे रह-(अक०) कहीं बसना या स्थित होना; (पक्षचिह्नक) सातत्यद्योतक : वह खा रहा है; (रंजक)-अतिशयताद्योतक : कहीं स्याही गिर रही है तो कहीं रंग। विभिन्न भाषाओं में प्रयोग के आधार पर इसका निर्णय किया जा सकता है। एकभाषिक कोशों की तुलना में द्विभाषिक कोशों में ये सूचनाएँ और भी अधिक उपयोगी होती हैं। डा० बुल्के ने अपने 'अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश' में हर हिन्दी शब्द के साथ उसके लिंग का संकेत किया है जो विदेशियों के लिए बहुत उपयोगी है। कहना न होगा कि हिन्दी वाक्य-रचना में, अंग्रेज़ी आदि अनेक अन्य भाषाओं की तुलना में, लिंग का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है।

### व्युत्पत्ति

हिन्दी में 'व्युत्पत्ति' को 'निरुक्त' तथा 'निर्वचन' भी कहते हैं। संस्कृत के वैयाकरण 'वि + उत् + पद् + क्तिन्' रूप में व्युत्पत्ति की व्युत्पत्ति करते हैं। इनमें प्रथम दो उपसर्ग हैं, 'पद' धातु है (= गति करना) तथा 'क्तिन्' भाववाचक का प्रत्यय है। 'व्युत्पत्ति' का इस प्रसंग में अर्थ है 'धातु को विश्लेषित करके धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का निर्देश करना।' निरुक्त 'निस् + वच् + क्त' है तथा इसका अर्थ है 'अलग-अलग करके कहना' या 'अलग-अलग करके कहा हुआ।'

निर्वचन (निस्+वच्+ल्युट्) भी 'अलग-अलग करके कहना' ही है। इस तरह 'व्युत्पत्ति' हो, 'निर्वचन' हो, या 'निरुक्त' हो, उद्देश्य रहा है 'विश्लेषण करके अर्थ का स्पष्टीकरण।' अंग्रेज़ी 'डेरिवेशन' का अर्थ है 'शब्द कैसे निकला या बना है।' 'एटिमालजी' में दो शब्द हैं: ग्रीक 'एतिमॉस' (सच्चा, यथार्थ, ठीक) + लॉगॉस (लेखा-जोखा)। इस प्रकार यह भी किसी शब्द के यथार्थ रूप का लेखा-जोखा है।

## उद्देश्य

वस्तुतः समवेत रूप से व्युत्पत्ति के ये उद्देश्य रहे हैं: (क) किसी शब्द के मूलभूत घटकों की जानकारी। जैसे, 'व्युत्पत्ति'=वि+उत्+पद्+क्तिन्' या हिन्दी 'पारिभाषिकता'—परि+भाषा (भाष्+अङ्+टाप)+इक=पारिभाषिक+ता। संस्कृत में व्युत्पत्ति का प्रायः यही उद्देश्य रहा है। (ख) घटकों की जानकारी देने के साथ उनके रूप में यदि ध्वन्यात्मक विकास है तो उसका संकेत भी एक उद्देश्य रहा है। जैसे हिन्दी गधा: गर्द् (आवाज़ करना) +अभच् =गर्दभ+क=गर्दभक>गदहा>गधा। आधुनिक काल में भारत में जहाँ तद्भव शब्द की परंपरागत व्युत्पत्ति के साथ ध्वनि की दृष्टि से विकासात्मक संकेत भी अपेक्षित रहा है, यह भी किया जाता रहा है। (ग) पश्चिम में 'घटक' तथा 'ध्वन्यात्मक' विकास के साथ-साथ जिन-जिन भाषाओं से होते शब्द आया है, उसका भी संकेत देते रहे हैं। स्पष्ट ही यहाँ उद्देश्य हुआ शब्द की यात्रा की भी जानकारी देना। जैसे अंग्रेज़ी शुगर: सं० शर्करा, प्रा० सक्कर, अर० सुक्कर, प्रा० फ्रां० sucre, अं० sugar। (घ) इन सब बातों के साथ यूरोपीय कोशों में संक्षेप में अर्थ-विकास भी देने का प्रयास होता रहा है: जैसे हिन्दी रिक्शा: <अंग्रेज़ी ricksha(w) <जापानी जिन-रिकिशा: जिन-आदमी, रिकि-शक्ति, शा-गाड़ी; -अथवा अंग्रेज़ी कैरेट: ग्रीक keration (तौलने में प्रयुक्त एक बीज) >अर० क़िरत>फ्रे० karat>अं०carat। संस्कृत में व्युत्पत्ति में धातु-संकेत (हर धातु का अर्थ होता है) भी अर्थ का सूक्ष्म-संकेतक था (ङ) आधुनिक काल के कुछ कोश यह जानकारी देने के लिए वही शब्द, अन्य भाषाओं में किस रूप में है, तुलनात्मक सामग्री भी देते रहे हैं। टर्नर की 'नेपाली डिक्शनरी' इस दृष्टि से उल्लेख्य है, जिसमें नेपाली शब्दों के साथ तुलनात्मक रूप में हिन्दी, बँगला आदि कई भाषाओं के शब्द दिए गए हैं। इस रूप में इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी दो पुस्तकों (शब्दों का जीवन, शब्दों का अध्ययन) में कई शब्दों की व्युत्पत्ति दी है। जैसे हिन्दी खाँड: सं० खंड, पालि खंडो, प्रा० खंडा, बँग० खाँड़, सिंधी खंडु, मरा० खांड, फ़ा० क़ंद, अं० candy। इस तरह समवेत रूप से व्युत्पत्ति का उद्देश्य हुआ किसी शब्द की रूप-रचना, अर्थ तथा यात्रा की दृष्टि से पिछली पूरी कहानी संक्षेप में रख देना। यों सभी कोशों के लिए इतना करना संभव नहीं, अतः कोशों में व्युत्पत्ति यथासुविधा देते हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी कोशों में व्युत्पत्ति देने का इतिहास देखें तो पहला प्रयास जान शेक्सपीयर ने अपने हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश (1817) में हर शब्द के पहले हाशिये में

A(अरवी), P(फ़ारसी)आदि लिखकर किया। उसके वाद लगभग 60-70 वर्षों तक इस दिशा में कोई विकास नहीं हुआ। 1884 में प्लैट्स ने यूरोपीय परंपरा का पूरा उपयोग करते हुए अपने उर्दू-क्लासिकल हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश में हिन्दी-शब्दों की व्युत्पत्ति संक्षेप में, किन्तु वहुत ही व्यवस्थित रूप में दी। सच पूछा जाय तो व्युत्पत्ति की दृष्टि से आज तक कोई भी हिन्दी कोश उसके समकक्ष खड़ा नहीं हो सका। प्लैट्स ने शेक्सपियर की तरह हाशिये में A(अरवी), S(संस्कृत), P (फ़ारसी), H (हिन्दी) तो लिखा ही है, साथ ही प्रविष्टि के सामने जहाँ अपेक्षित है व्युत्पत्ति भी दी है। उदाहरण के लिए, यदि शब्द संस्कृत तत्सम है तो मात्र वग़ल में S दे दिया है तथा प्रविष्टि अपने आपमें (जैसे आकाश) इस वात का संकेत है कि संस्कृत में शब्द क्या है, यदि शब्द तद्भव है तो हाशिये पर H लिखा है तथा कोष्ठक में और वातें। जैसे 'उकटना' के आगे कोष्ठक में 'सं० उद्+कर्तन, कृत् धातु'। विद्वान् कोशकार ने संस्कृत से सीधे हिन्दी पर छलांग नहीं लगाई है तथा जहाँ मिले हैं, संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत के रूप भी दिए हैं। जैसे 'दलिया' की व्युत्पत्ति है 'प्रा० दलिअअ, सं० दलित+क:' या 'वाग' (घोड़े की) की 'प्रा० वग्गा, सं० वल्गा'। साथ ही धातु का भी संकेत है: वाक, 'प्रा० वक्क, सं० वाक्य, धातु वच्'। प्लैट्स प्रविष्टि के एक-एक अवयव के प्रति सतर्क हैं तथा उसके लिए मूल खोजने का प्रयत्न करते हैं: भिखारी : सं० भिक्षा+हारी, तिराहा : सं० त्रि+रथ्या+क:। तुलनात्मक सामग्री तथा धातु का पता मिलने पर उन्हें भी देने से वे नहीं चूकते। जैसे 'दुम' प्रविष्टि के वग़ल में P लिखा है, जिसका अर्थ है कि यह फ़ारसी शब्द है तथा कोष्ठक में (पहलवी दुम्, ज़ेंद दुम्, धातु दु—संस्कृत धु) या 'जुदा' के साथ P के अतिरिक्त (पारसी जत, पहलवी ग्वित्, ज़ेंद वित्, धातु वि—संस्कृत वि)। अरवी शब्दों को 'A' कहने के अतिरिक्त वे प्राय: धातु तक ले जाते हैं। उदाहरणार्थ, हिसाव : 'ह-स-व' (=गिनना) धातु की 'क्रियार्थक संज्ञा,' इज़हार : 'ज़-ह-र' (=सामने आना, स्पष्ट होना) धातु की 'क्रियार्थक संज्ञा'। उसके वाद हिन्दी में कोश अच्छे तो तीन (हिन्दी शब्द सागर—नागरी प्रचारिणी सभा; प्रामाणिक हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा; मानक हिन्दी कोश—हिन्दी साहित्य सम्मेलन) आए, किन्तु व्युत्पत्ति देने में, विकास के स्थान पर ह्रास ही हुआ। यों मानक हिन्दी कोश में संस्कृत ढंग से व्युत्पत्ति (जैसे अपेक्षा : 'अप्+ईक्ष+टाप्') तो दी ही गई; कहीं-कहीं प्राकृत (ओढ़ना : सं० उपवेष्ठन, प्रा० ओवेड्ढन) के रूप भी हैं, तथा कहीं-कहीं तुलनात्मक शब्द (जैसे आँख—सं० अक्षिन्, प्रा० अक्खि, वँ० आँखि, पं० अक्ख, गुज० आँख आदि) भी, किन्तु सव मिलाकर यह कोश प्लैट्स से आगे नहीं वढ़ पाया। हाँ, कोशों से अलग वासुदेव शरण अग्रवाल (कई लेखों तथा पदमावत, हर्पचरित, कादंवरी पुस्तकों में), हेमचन्द्र जोशी (कुछ लेखों में), भोलानाथ तिवारी (कई लेखों तथा हिन्दी भाषा, शब्दों का जीवन, शब्दों का अध्ययन, भाषा-चिन्तन तथा ताजुब्वेकी आदि पुस्तकों में) तथा पूर्णसिंह डवास ('हिन्दी में देशज शब्द' पुस्तक तथा कुछ लेखों में) आदि कुछ लोगों ने हिन्दी में व्युत्पत्ति के कार्य को कुछ आगे वढ़ाया है, किन्तु अभी तक कोश-स्तर

पर वे कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं आ पाए हैं। इन पंक्तियों का लेखक इस दिशा में काम कर रहा है।

कोशों में व्युत्पत्ति देने में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं : (क) व्युत्पत्ति मूल भाषा से सीधे न दी जाए, बल्कि बीच की भाषाओं का भी उल्लेख किया जाए। उदाहरण के लिए, हिन्दी कोश में 'रिक्शा' को सीधे 'जापानी' कहना उचित नहीं, क्योंकि यह हिन्दी में अंग्रेज़ी के माध्यम से आया है, अतः जापानी 'जिन' हिन्दी (आदमी) + रिकि (शक्ति) + शा (गाड़ी) —जिनरिक्शा > अं० रिक्शा > रिक्शा। ऐसे ही अंग्रेज़ी sugar को सीधे सं० 'शर्करा' से जोड़ना उचित नहीं। अपितु सं० शर्करा > प्रा० सक्कर, अर० सुक्कर, प्रा० फ्रांसीसी sucre, अं० sugar। हिन्दी कोशों में प्रायः संस्कृत से सीधे व्युत्पत्ति दे देते हैं, जो उचित नहीं है। व्युत्पत्ति देने में छलांग न लगाकर सभी सीढ़ियाँ देनी चाहिए। जैसे 'सं० पाद, हिन्दी पाव' पर्याप्त नहीं है। देना चाहिए सं० पादः, प्रा० पाओ, अप० पाउ, हिं० पाव। ऐसे ही ग्रीक द्राख्मे—सं० द्रम्य—प्रा० दम्म—हिं० दाम। (ख) तद्भव और अर्धतत्सम शब्दों के व्युत्पत्ति-संकेत में भी अन्तर किया जाना चाहिए। जैसे 'कान्ह' और 'किशन' या 'काम' और 'करम' के लिए कोष्ठक में सं० कृष्ण और सं० कर्म लिख देना पर्याप्त नहीं है। 'कान्ह' सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, कन्ह, हिं० कान्ह है जबकि 'किशन' कृष्ण का सीधे अर्धतत्सम है। यही स्थिति 'काम' और 'करम' की भी है : कर्म-कम्म-काम; कर्म-करम। धर्म, धम्म, धाम; धर्म, धरम; कार्य, कज्ज, काज; कार्य, कारज में ही यही बात है। हिन्दी कोशों में इस दृष्टि से ध्यान नहीं रखा गया है। (ग) संस्कृत पद्धति की व्युत्पत्ति वास्तविक रूप में बहुत सार्थक नहीं है। वह तो पाणिनीय व्याकरण के आधार पर संरचना की दर्शिका है तथा अनेक स्थलों पर कल्पित अतः अशुद्ध है। उदाहरण के लिए, घोट (घोटक) को संस्कृत के विद्वान् मूलतः संस्कृत शब्द मानकर उसकी व्युत्पत्ति 'घुट् (विरोध या मुकाबिला करना, प्रहार करना) + अच्, ण्वुल् वा' देते हैं, जबकि मूलतः यह शब्द अपने परिवार का न होकर द्रविड़ घुत्र—प्रा० घुट्ट-घोट (+क)—घोटक है। अपना पुराना शब्द अश्व है। घोट, घोटक तो दूसरी सदी ई० पू० के पहले संस्कृत साहित्य में है ही नहीं। ऐसे ही 'गो' मूलतः सुमेरियन 'गु' है तथा बहुत पहले यह भारोपीय परिवार में आ गया था, क्योंकि अं० cow, फ़ा० गाव आदि भी मिलते हैं, किन्तु संस्कृत वाले इसे शुद्ध संस्कृत शब्द मानकर गम् (चलना) धातु से (गम्+डो) जोड़ते हैं। ऐसी स्थिति में इस श्रेणी की व्युत्पत्ति आज के वैज्ञानिक व्युत्पत्तिविज्ञान के विकास के बाद बहुत सार्थक नहीं रह गई है। अधिक-से-अधिक संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शब्द की रचना समझाने के लिए ही वह दी जा सकती है। ऐसा भी हुआ है कि भ्रामक व्युत्पत्ति के आधार पर शब्द कुछ-का-कुछ मान लिया गया (अर० अफ़यून—सं० अहिफेन) और उसके आधार पर उसकी व्युत्पत्ति दे दी गई। (घ) यदि शब्द में अर्थ-विकास हुआ हो तो उसका सभी संकेत, विकास की हर सीढ़ी के शब्द के साथ, कोष्ठक में अर्थ देकर किया जा सकता है जैसे हिं० गायकवाड़—मराठी गायकवाड (गायों का स्वामी, मूलतः 'गायों का वाड़ा') अथवा पतलून < अं० pantaloon < फ्रांसीसी panta-

lon (ढीला पायजामा) <इतालवी pantalone (इतालवी कामदी का विदूषक जो ऐसा ही पायजामा पहनता था), अथवा कर्नल (अं० colonel <फ्रें० colonel <मध्य० इता० collonello (सैनिक पंक्ति का प्रधान) <प्रा० इतालवी collonna (सैनिक पंक्ति) < लैटिन column (खंभा)। ग्रीक thesauros (समूह) >लैटिन thesaurus>प्रा० फ्रांसीसी tresor (धन-भंडार) >अं० ट्रेज़री (खजाना) >हिं० तिजोरी (रुपये-पैसे आदि के लिए मजबूत सन्दूक)। सं० वज्रटुक (पूरा ब्रह्मचारी) >हिं० बजरबट्टू। सं० दुर्लभ (जिसे पाना कठिन हो) + क>दुलहा>दूल्हा>(स्त्री) दूल्हन। ऐसे ही उदाहरण के लिए हिन्दी का 'जीजा' शब्द लें। यह मूलतः संस्कृत 'तात' से संबद्ध है, किन्तु इसकी ठीक और पूरी व्युत्पत्ति यों दी जानी चाहिए: सं० तात>दादा (बड़ा भाई) >स्त्री० दीदी (बड़ी बहन) >जीजी>पु० जीजा। स्पष्ट ही यहां त>द>ज रूप में ध्वनि-विकास के साथ-साथ अर्थ-विकास भी अजीब ढंग का हुआ है। (ङ) तुलनात्मक शब्द यदि मूलतः एक हैं तो अर्थान्तर के बावजूद देने चाहिए जैसे हिं० हो, सं० भू, अं० be; सं० पशु, अं० फ़ी; फ़ा० पेशाव, सं० प्रस्राव; फ़ा० बदन (शरीर), सं० वदन (मुख); सं० मृग, फ़ा० मुर्ग़ आदि। (च) शब्द कभी-कभी सीधे किसी शब्द से विकसित नहीं होता, अपितु किसी अन्य शब्द के प्रभाव से विशिष्ट रूप में विकसित होता है। ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति में उस प्रभाव का संकेत भी आवश्यक है, नहीं तो उसका रूप-विकास या उसकी ध्वनि-संरचना स्पष्ट नहीं हो सकेगी। उदाहरण के लिए, कबीर में शब्द आए हैं: 'इंगला', और 'सरगुन'। 'इंगला' मूलतः सं० 'इडा' है किन्तु इतना कह देना पर्याप्त नहीं है। सं० इडा> (सं० पिंगला के प्रभाव से) 'इंगला'। ऐसे ही सं० सगुण>(सं० निर्गुण के तद्भव निरगुन के प्रभाव से) सरगुन। (छ) कभी-कभी शब्द सरलीकृत रूप में गृहीत होते हैं: अनुतान (Intonation), अकादमी (Academy), त्रासदी (Tragedy), कामदी (Comedy), इम (स्वनिम, रूपिम आदि का)-अं० ईम Phoneme, morpheme)। अर्थात् ये सहज विकास नहीं हैं। इसका भी संकेत होना चाहिए। ऐसे ही संस्कृत में अनेक विदेशी शब्दों को संस्कृत का जामा पहना दिया गया। उदाहरण के लिए, सं० का 'अहिफेन' (सांप का फेन, अफ़ीम के लिए संस्कृत में प्रयुक्त) शब्द लें। ग्रीक ओपिअन, अरबी में 'अफ़्यून' बना और संस्कृत में 'अहिफेन' बना लिया गया। 'सांप का फेन' जहर होता है, और एक सीमा तक 'अफ़ीम' भी जहर ही है, अतः ध्वनि और अर्थ के आधार पर बन गया 'अहिफ़ेन'। (ज) हिन्दी की कई पुस्तकों में 'भिज्ञ' का प्रयोग 'जानकार' के लिए मिलता है। वस्तुतः 'अभिज्ञ' (अभि+ज्ञ) का अर्थ 'जानकार' है। 'अ' को निषेध का बोधक मानकर लोगों ने इसे 'अनभिज्ञ' का समानार्थी समझ लिया और 'अभिज्ञ' में 'अ' निकालकर 'भिज्ञ' बना लिया। सं० में 'सुर' भी मूलतः कोई शब्द नहीं है। 'असुर' (अवेस्ता अहुर) के 'अ' को ग़लती से निषेधबोधक मान लेने से देवतावाची 'सुर' बन गया। मूलतः असुर ही देवतावाची था। इस प्रकार के बने शब्दों का भी संकेत होना चाहिए। (झ) व्युत्पत्ति देने में शब्द न मिलने पर तुलना के आधार पर कभी-कभी मूल शब्द, या कभी-कभी बीच की कड़ी का निर्माण भी करना पड़ता

है। ऐसा किया जा सकता है किन्तु सावधानी के साथ। टर्नर ने अपने आधुनिक भारतीय भाषाओं के व्युत्पत्तिमूलक कोश में ऐसा प्राय: किया है। उदाहरण के लिए, संस्कृत 'विंशति' लें। संस्कृत में 'विंशति' रूप मूलत: नहीं हो सकता। अंग्रेज़ी के twenty आदि भी ऐसा ही संकेत करते हैं। अत: कल्पित रूप द्विशति>प्राप्त रूप विंशति>पा० वीसति>प्रा० वीसइ>अप० वीस>हिन्दी वीस। यह तो मूल रूप की वात थी। बीच में भी कल्पना करनी पड़ सकती है: सं० सप्तत्रिंशत् >पा० सत्ततिंसति>प्रा० सत्ततीस>अप० कल्पित रूप सयँतीस>हिन्दी सैंतीस; सं० सट्त्रिंशत्>पा० छत्तिंसति>प्रा० छत्तीस>अप० कल्पित रूप छत्तीस(प्राप्त रूप छत्रिस)>हिं० छत्तीस। (ञ) यदि अनुकरणात्मक शब्द हो (जैसे खटखटाना, भड़भड़ाना आदि) तो उसका भी संकेत करना चाहिए, किन्तु यदि वह किसी अन्य भाषा से लिया गया हो तो उसका भी। उदाहरण के लिए, मानक हिन्दी कोश में 'खलवली' को अनुकरणात्मक कहा गया है, जबकि यह प्राकृत में 'खलभलिय' रूप में हैं। ऐसे ही 'गड़वड़' को भी अनुकरणमूलक कहा गया है, जबकि यह प्राकृत में 'गडवड' रूप में है। संभव है, प्राकृत में अनुकरणात्मक हो किन्तु हिन्दी में वह प्राकृत से आया है, अत: वही दिया जाना चाहिए। (ट) किसी शब्द के साथ देशज लिखना उचित नहीं। वस्तुत: जिन्हें देशज कहने की परंपरा चल पड़ी है, वे अज्ञातव्युत्पत्ति वाले हैं, अत: उनके सामने कोष्ठक में प्रश्नवाचक चिह्न लगा सकते हैं, या उन्हें अज्ञातव्युत्पत्तिक कह सकते हैं (विस्तार के लिए देखिए, मेरे 'भाषा-विज्ञान' का 'शब्दविज्ञान' शीर्षक अध्याय में 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' शीर्षक।

## अर्थ

**अर्थ क्या है**—किसी भाषिक इकाई को सुन या पढ़कर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है। सच पूछा जाय तो भाषा की आत्मा अर्थ ही है, बिना अर्थ के वाक्य, उपवाक्य, पदबन्ध, पद, शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय आदि भाषिक इकाइयों की सत्ता ही संभव नहीं। पतंजलि महाभाष्य में 'अर्थनिमित्तक एवं शब्द:' (अर्थ के निमित्त ही शब्द है) में यही वात कहते हैं।

भाषा की आत्मा इस अर्थ का बोध कराना ही कोश (शब्दकोश) का प्रमुख कार्य है। कोश की रचना इसीलिए की जाती है। सच पूछा जाय तो अर्थ-ग्रहण की कठिनाई को दूर करने के लिए ही विश्व में कोशों के निर्माण की परंपरा चली।

## अर्थ के प्रकार

अर्थ का वर्गीकरण तरह-तरह से किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इन्दौर वाले भाषण में अर्थ चार प्रकार के माने हैं: प्रत्यक्ष, अनुमित, आप्तोपलब्ध, कल्पित। इनमें पहला तो प्रत्यक्ष होता है, दूसरा वह जिसका अनुमान लगा लेते हैं, तीसरा वह जो आप्तवचन से जाना जाता है, और चौथा कल्पना पर आधारित होता है। पहले का क्षेत्र कोश, दूसरे का दर्शन, तीसरे का इतिहास तथा चौथे का काव्य कहा गया है।

एक दृष्टि से अर्थ तीन प्रकार के होते हैं : मूलार्थ (जलज—जल से जनमा हुआ, आकाशवाणी—आकाश से आने वाली वाणी, द्विरेफ—जिसके नाम में दो 'र' हों, द्विरद—दो दाँत वाला); प्रचलितार्थ (जलज—कमल, आकाशवाणी—रेडियो, द्विरद—हाथी), लक्ष्यार्थ (गदहा—मूर्ख, शेर—बहादुर)। कोश में अर्थ के प्रसंग में मैं अर्थ के निम्नांकित भेद करना चाहूँगा :

(1) संरचनार्थ—शब्द दो प्रकार के होते हैं : मूल, यौगिक। यौगिक शब्दों का मूल अर्थ संरचनार्थ या रचनार्थ होता है। संरचनार्थ प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए, 'जल+ज' (कमल), 'नीर+ज' (कमल), 'पंक+ज' (कमल), 'हाथ+ई' (हाथी), 'जल+वायु,' 'आब+हवा,' 'नि+घर+घाट' (निघरघाट), 'ऊँट+पर+टाँग' (ऊटपटाँग), 'अति+आचार,' 'नील+कंठ,' 'षट्+पद' (भ्रमर), 'द्वि+रेफ' (भ्रमर, जिसके नाम में दो 'र' हों), 'लम्ब+ग्रीव' (ऊँट), 'त्रि+लोचन' (महादेव), 'पीत+अंबर,' 'अ+स्व+भाव+इक+ता' आदि।

(2) मुख्यार्थ – हर शब्द का एक मुख्यार्थ होता है, जिसे मूलार्थ, अभिधार्थ या वाच्यार्थ भी कहते हैं। ऊपर हमने देखा कि 'हाथी' का संरचनार्थ है, 'हाथ वाला,' किन्तु इसका मुख्यार्थ 'जानवर विशेष' है। 'हाथ वाला' तो 'आदमी' भी है किन्तु 'हाथी' का अर्थ 'आदमी' नहीं होता। सभी भाषाओं की आर्थी संरचना का मूल आधार मुख्यार्थ, वाच्यार्थ अथवा अभिधार्थ होता है। सबसे अधिक शब्दों का यही अर्थ लिया जाता है तथा सबसे अधिक प्रयोग भी इसी अर्थ का होता है। मुख्यार्थ संज्ञा (पानी, गधा, गाय, हीरा), सर्वनाम (तू, मैं, मेरा, तेरा), विशेषण (कड़ुवा, टेढ़ा), क्रिया (खींचना, दबाना) तथा क्रिया-विशेषण (इधर, उधर, आज, कल) आदि सभी वाग्भागों का होता है। बिम्बात्मकता की दृष्टि से मुख्यार्थ स्थूल (गधा, गाय) तथा सूक्ष्म (दया, घृणा, क्रोध) दोनों ही प्रकार का हो सकता है।

(3) लक्ष्यार्थ—मुख्यार्थ से ही यह अर्थ विकसित होता है। इसके विकास के सादृश्य, आलंकारिक प्रयोग, विचलन आदि अनेक कारण होते हैं। ऊपर मुख्यार्थ के प्रसंग में लिए गए उदाहरणों की ही बात लें तो 'पानी' के 'चमक' और 'इज्जत'; 'गधा' का 'मूर्ख'; 'गाय' का 'सीधा'; 'हीरा' का 'बहुत अच्छा' (वह आदमी हीरा है); 'तू-मैं' का 'कहा-सुनी'; 'मेरे-तेरा' का 'अपना-अपना'; 'कड़ुवा' का 'सुनने में बुरी' (कड़ुवी बात); 'टेढ़ा' का 'स्वभाव का कुटिल' (टेढ़ा आदमी); 'खींचना' का 'किसी आदमी की खिंचाई करना,' 'दबाना' का 'पराभूत करना' (उसने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को दबा दिया); 'इधर-उधर' का 'गड़बड़' तथा 'आज-कल' का 'टाल-मटोल' आदि अर्थ लक्ष्यार्थ ही हैं। काफ़ी भाषाएँ लक्ष्यार्थ का काफ़ी प्रयोग करती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के शब्द दो प्रकार के हैं। एक तो वे हैं जिनका कभी मुख्यार्थ के लिए प्रयोग होता है तो कभी लक्ष्यार्थ के लिए : लकड़ी टेढ़ी है—यह औरत टेढ़ी है; गिलास में पानी नहीं है—उसके चेहरे पर पानी नहीं है; गाय चर रही है—वह आदमी तो गाय है; दवा कड़ुवी है—उसने बहुत कड़ुवी बात कह दी; उसने आँखें बन्द कर लीं (सचमुच बन्द

कर ली—मर गया), तुम तो सब कुछ हजम कर लेते हो (खाकर हजम करना—रुपये-पैसे हजम करना), तुम तो जब देखो घोड़े पर सवार रहते हो (सचमुच सवार—जल्दी में)। इस तरह हज़ारों प्रयोग हिन्दी में चल रहे हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं जिनका प्रयोग केवल लक्ष्यार्थ में ही होता है। हिन्दी मुहावरों में हवा से बातें करना, छठी का दूध याद आना, सूरज पर थूकना, धूल की रस्सी बनाना, हवा से लड़ना आदि कई हज़ार ऐसे ही हैं।

(4) **व्यंजनार्थ**—भारतीय काव्यशास्त्र की समृद्ध परंपरा ने भारतीय भाषाओं की आर्थी संरचना को लक्ष्यार्थ से अलग व्यंजनार्थ[1] से भी युक्त कर दिया है। यह अर्थ अपेक्षाकृत कम शब्दों का होता है। व्यंजनार्थ का सम्बन्ध संस्कृति, परंपरा और सन्दर्भ आदि से होता है। 'गंगाजल' और 'तुलसी' ('मैं तुलसी तेरे आँगन की'—एक हिन्दी फ़िल्म का नाम) से व्यंजित 'पवित्रता,' 'काँटा' से व्यंजित 'क्रूरता' या 'अड़चन' तथा 'कली' से व्यंजित 'निरीहता' व्यंजनार्थ ही है। लक्ष्यार्थ अभिधा का विस्तारित (extended) अर्थ होता है, तथा व्यंजनार्थ उसका भी विस्तारित अर्थ। ऐसे अर्थों के प्रयोगों से हिन्दी का मध्यकालीन तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य भरा पड़ा है। निराला जी की 'विधवा' कविता की प्रसिद्ध पंक्ति है 'तुम इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी' अर्थात् कवि विधवा को 'इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी' कह रहा है। व्यंजनार्थ है 'तुम अत्यन्त पवित्र हो'। ऐसे ही 'विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है। अरी हृदय को थाम महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है।' इसमें 'महल' का वाच्यार्थ है 'भवन,' लक्ष्यार्थ है 'महल के निवासी,' किन्तु यहाँ उसका व्यंजनार्थ है 'अतिशय विलासिता में डूबे लोग'। गुप्त जी की प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध, और आँखों में पानी'। यहाँ 'आँचल' का वाच्यार्थ 'साड़ी का अंचल,' लक्ष्यार्थ 'पयोधर' तथा व्यंजनार्थ है 'अतिशय वात्सल्य'।

(5) **सामाजिक अर्थ**—भाषा का प्रयोग समाज में होता है, अतः भाषिक अभिव्यक्तियों के सामाजिक अर्थ भी होते हैं। जिस समाज की संरचना जितनी जटिल होती है, उसकी भाषा में सामाजिक अर्थ का विकास भी उतना ही ज़्यादा होता है। अंग्रेज़ी में आज्ञा का रूप एक ही है you go अर्थात् you शब्द में या you go वाक्य में मात्र सामान्य अर्थ है, सामाजिक अर्थ नहीं है, किन्तु हिन्दी 'तू जा,' 'तुम जाओ,' 'आप जाइए' में आज्ञा का सामान्य अर्थ तो है ही, सामाजिक अर्थ भी है। 'तू' 'तुम,' 'आप,' या 'जा,' 'जाओ,' 'जाइए' अथवा 'तू जा,' 'तुम जाओ,' 'आप जाइए' का प्रयोग सामाजिक स्तर पर निर्भर करता है। you go से वक्ता-श्रोता के सामाजिक स्तर तथा सम्बन्ध का पता नहीं चल सकता किन्तु 'तू जा,' 'तुम जाओ,' 'आप जाइए' से खूब चलता है। इसी प्रकार चलना,

1. सामान्यतः इसके लिए 'व्यंग्यार्थ' का प्रयोग होता है। मैंने 'व्यंजनार्थ' और 'व्यंग्यार्थ' में अन्तर किया है। 'व्यंजनार्थ' तो परंपरागत 'व्यंग्यार्थ' है और 'व्यंग्यार्थ' है व्यंग्य से निकलने वाला अर्थ। जैसे तुम तो बड़े ईमानदार हो! =तुम बेईमान हो।

चलिएगा के भी सामाजिक अर्थ हैं। क्रिया में सामाजिक अर्थ का एक दूसरे प्रकार का उदाहरण लें। 'स्वर्गवासी होना,' 'अल्लाह को प्यारा होना,' 'दिवंगत होना,' 'ब्रह्मलीन होना,' तथा 'कुत्ते की मौत मरना' इन चारों का अर्थ 'मरना' है, किन्तु इनके सामाजिक अर्थ अलग-अलग हैं। 'स्वर्गवासी होना' का प्रयोग हिन्दू के लिए हो सकता है, किन्तु मुसलमान के लिए नहीं, क्योंकि मुसलमान मरने के बाद क़यामत तक वह क़ब्र में रहता माना जाता है, अतः धार्मिक दृष्टि से उसके लिए 'स्वर्गवासी होना' कहना अनुचित है। इसीलिए भारत के राष्ट्रपति फ़ख़रुद्दीन अली अहमद जब मरे थे तो हिन्दी समाचारों, समाचारपत्रों तथा वार्ताओं में उनके लिए 'स्वर्गवासी' का प्रयोग न कर 'मरहूम' का प्रयोग किया गया। 'अल्लाह को प्यारा होना' तथा 'दिवंगत होना' हिन्दू-मुसलमान सभी के लिए आ सकता है, 'ब्रह्मलीन होना' केवल हिन्दू साधु-सन्तों के लिए, तो 'कुत्ते की मौत मरना' केवल घृणित व्यक्तियों के लिए। हिन्दी कोश में इस प्रकार की सामाजिक सूचना के बिना अर्थ अधूरा रह जाएगा। वह-वे (एक०), इस-इन (एक०), उसका लड़का-उनके लड़के, बैठना-विराजना, नाम-शुभनाम, ग़रीबख़ाना-दौलतख़ाना, आना-पधारना, नमस्ते-नमस्कार-प्रणाम आदि इस प्रकार की हज़ारों भाषिक अभिव्यक्तियाँ हिन्दी में हैं जो सामाजिक अर्थ से युक्त हैं। न्यूनाधिक रूप से विश्व की सभी भाषाओं में शब्दों आदि के सामाजिक अर्थ मिलते हैं। कोशों में कुछ शब्दों या अभिव्यक्तियों के साथ 'अश्लील,' 'ग्राम्य,' 'मानक' जैसे संकेत भी सामाजिक अर्थ ही देते हैं।

(6) व्याकरणिक अर्थ—यह अर्थ सभी भाषाओं के प्रकार्यपरक शब्दों का होता है। उदाहरण के लिए, 'ने' का कोई सामान्य या व्यावहारिक अर्थ नहीं है, केवल व्याकरणिक अर्थ है जिसका पता प्रयोग से चलता है। पुरुषद्योतक प्रत्यय, तो, भी, ही, को आदि की भी यही स्थिति है।

(7) बलात्मक अर्थ—'ही' (राम जाएगा-राम ही जाएगा) जैसे शब्दों का बलात्मक अर्थ ही होता है।

(8) शैलीय अर्थ—कुछ शब्दों के वास्तविक अर्थ एक ही होते हैं, उनमें अन्तर केवल शैलीय अर्थ का होता है। उदाहरणार्थ : बाप-पिता-वालिद, माँ-माता-वालिदा, चिट्ठी-पत्र-ख़त, जगह-स्थान, दरवाज़ा-द्वार, सुन्दर-ख़ूबसूरत।

(9) क्षेत्रीयता—कुछ शब्दों में केवल क्षेत्रीयता का अन्तर होता है। वह भी एक प्रकार का अर्थ-संकेत है, क्योंकि उन्हें सुन या पढ़कर मूलार्थ के अतिरिक्त इस अर्थ की भी सूचना मिलती है कि उनका प्रयोक्ता कहाँ का है। आंचलिक साहित्य में आंचलिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ऐसा प्रायः किया जाता है। एक उदाहरण लें : तोरी (पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र)—तरोई (मध्य क्षेत्र)—नेनुवाँ (पूर्वी क्षेत्र)—वेंवड़ा (वलिया)।

## कोशों में अर्थ

कोशों में यथासाध्य और यथावश्यकता उपर्युक्त सभी अर्थ देने चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं : (क) भाषा में प्रयुक्त होने

पर भी, हर प्रकार के कोश में, उपर्युक्त सभी प्रकार के अर्थ नहीं दिए जा सकते। (ख) यदि द्विभाषिक कोश बनाया जा रहा है तो उसके हिसाब से अर्थों का चयन किया जाएगा और यदि एकभाषिक कोश दिया जा रहा है, तो उसके हिसाब से। (ग) द्विभाषिक अथवा एकभाषिक—इन दोनों में किसी भी प्रकार का कोश बनाना हो, इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कोश बड़ा बनाना है या छोटा, बालकोश बनाना है या दूसरे प्रकार का, उसका प्रयोक्ता सामान्य बोलचाल के शब्द तथा अर्थ के लिए उसका प्रयोग करेगा या दोनों प्रकार के लिए। इस तरह इन सभी दृष्टियों से उन अर्थों का चयन किया जाना चाहिए जो कोश के लिए अपेक्षित हैं। संक्षेप में, जिन-जिन आधारों पर किसी कोश के लिए शब्द आदि चुने जाते हैं, लगभग उन्हीं प्रकार के आधारों पर चयित शब्दों आदि के अर्थ भी चुने जाने चाहिए।

## कोश में अर्थों का क्रम

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, कोश दो प्रकार के होते हैं : वर्णनात्मक तथा ऐतिहासिक। वर्णनात्मक कोश में (क) जिस अर्थ में प्रविष्टि विशेष का प्रयोग सर्वाधिक होता है सबसे पहले उसे ही स्थान देते हैं, फिर उससे कम प्रयुक्त अर्थ को, और इसी क्रम में आगे भी। उदाहरणार्थ : पद—1. दर्जा, स्थान; 2. वह छंद जिसकी पहली पंक्ति छोटी होती है तथा बाद की बराबर होती है; 3. भजन; 4. पैर, पांव; 5. सम्बन्धतत्त्वयुक्त शब्द (जैसे राम ने, उसको आदि)। (ख) कभी-कभी ऐसा भी करते हैं कि मुख्यार्थ पहले देते हैं तथा गौणार्थ बाद में और गौणार्थ एकाधिक हो तो प्रयोगाधिक्य के आधार पर। जैसे : **पानी**—1. जल. 2. इज़्ज़त, 3. चमक, कान्ति। ऐतिहासिक (कालक्रमिक) कोशों में जिस अर्थ के लिए प्रविष्टि का प्रयोग उस भाषा में सबसे पहले हुआ हो, उसे पहले और कालक्रमानुसार बाद के अर्थों को बाद में देते हैं। यदि संभव हो तो हर अर्थ को प्रयोग-काल, सन्दर्भ तथा प्रयोग-वाक्य या प्रयोग-पंक्ति के साथ देना चाहिए। जैसे **आकाशवाणी**—1. देववाणी, 2. रेडियो (आल इंडिया रेडियो); **अनुवाद**—1. कही गई बात का फिर से कथन, अनुकथन; 2. कहना, कथन (जैसे गुणानुवाद), 3. तर्जुमा, उल्था, भाषान्तर।

## अर्थ की दृष्टि से कोशों के प्रकार

अर्थ की दृष्टि से मुख्यतः निम्नांकित प्रकार के कोश होते हैं :

(1) **बोधोन्मुख कोश**—इनका उद्देश्य भाषिक इकाइयों का बोध कराना होता है। पर्याय, व्याख्या तथा वर्णन आदि के द्वारा कोशकार, ऐसे कोशों में अर्थ-बोध कराने का यत्न करता है।

(2) **पारिभाषोन्मुख कोश**—इनका उद्देश्य प्रविष्टि की परिभाषा देना होता है। विभिन्न विषयों के परिभाषा कोश इसी श्रेणी के होते हैं। यों अन्य प्रकार के कोशों में भी इसकी *यथासुविधा सहायता* लेते हैं।

(3) **अनुवादोन्मुख कोश**—ऐसे कोशों का प्रयोग अनुवादक करते हैं।

(क) इनमें शब्द के लिए शब्द देना आवश्यक होता है, ताकि अनुवादक अनुवाद में सहायता ले सके। (ख) यदि एक शब्द कई विषयों में प्रयुक्त हो रहा हो तो उसके लिए ऐसे कोश में प्रतिशब्दों के साथ विषय का उल्लेख भी आवश्यक है, ताकि अनुवादक को भ्रम न हो। जैसे Root—जड़ (वनस्पति), धातु (व्याकरण) आदि।

(4) **प्रयोगोन्मुख कोश**—ऐसे कोशों में प्रविष्टियों के प्रयोग-विषयक पूरी सूचना दी जानी चाहिए, ताकि प्रयोक्ता को प्रयोग में सहूलियत हो। जो लोग किसी भाषा को लिखने तथा बोलने के लिए सीखना चाहते हैं, उनके लिए इस प्रकार के कोश काम के होते हैं। इनमें मानक, क्षेत्रीय, शैलीय, ग्राम्य, अश्लील, काव्य-प्रयुक्त, अल्पप्रयुक्त, अप्रयुक्त, प्राचीन जैसे संकेत भी आवश्यक होते हैं।

(5) **परिचयोन्मुख कोश**—भौगोलिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा साहित्य में प्रयुक्त नामों के साथ परिचय अपेक्षित होता है। कथाकोश, नामकोश, अंतर्कथा-कोश, आदिकोश इसी श्रेणी के होते हैं।

यों बड़े कोश ऐसे भी बनाए जा सकते हैं, जिनमें ये पाँचों बातें हों: व्याख्या, परिभाषा, प्रतिशब्द, प्रयोग-विषयक अन्य सूचनाएँ तथा परिचय।

वास्तविक अर्थों में, अर्थ के अन्तर्गत ये पाँचों ही बातें आती हैं। पारिभाषिक शब्दों के अर्थ में परिभाषा देते हैं, तथा प्रतिशब्द; अन्य प्रकार के सामान्य शब्द-कोशों में प्रायः व्याख्या, प्रतिशब्द, परिचय तथा प्रयोग-विषयक अन्य सूचनाएँ देकर अर्थ का पूरा बोध कराते हैं। यों, इनमें कहीं तो मात्र प्रतिशब्द से ही काम चल जाता है, किन्तु कहीं व्याख्या भी अपेक्षित होती है, और कहीं-कहीं प्रयोग-परिधि भी आवश्यक होती है, क्योंकि प्रतिशब्द तथा व्याख्या प्रयोग का पूरा बोध कराने में असमर्थ होते हैं। ऐसे ही नामों के साथ परिचय आवश्यक होता है।

## कोश में अर्थ देने की पद्धतियाँ (एक)

अर्थ तीन प्रकार से देते हैं: (क) **शब्द द्वारा** (जल—पानी, गृह—घर, श्वेत—सफ़ेद); (ख) **पदबंध द्वारा** (रामावतार—राम का अवतार, बहुमूल्य—अधिक मूल्य का, हाथी—एक सुपरिचित जानवर); (ग) **वाक्य द्वारा** (निर्विवाद—जिसके विषय में कोई विवाद न हो; लाइलाज—जिसकी कोई भी दवा न हो; कंगारू—आस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला एक जानवर, जिसके...)।

## कोश में अर्थ देने की पद्धतियाँ (दो)

एक अन्य दृष्टि से कोशों में अर्थ देने की निम्नांकित पद्धतियाँ हो सकती हैं:

**पर्याय**—एकभाषिक तथा द्विभाषिक, दोनों ही प्रकार के कोशों में समानार्थी अथवा पर्याय शब्द द्वारा अर्थ देने की परंपरा है। यद्यपि पूर्ण पर्याय बहुत कम मिलते हैं, किन्तु संक्षेप की दृष्टि से यह पद्धति आसान पड़ती है। उदाहरण के लिए, 'जल' का अर्थ 'पानी' या 'पत्र' का 'चिट्ठी' या 'शरीर' का 'बदन'। पर्याय

शब्द अनेक प्रकार के हो सकते हैं : **पूर्ण पर्याय** (जैसे गपोड़ी-गप्पी, जल-पानी, वस्त्र-कपड़ा, भोजन-खाना, पत्र-चिट्ठी आदि); **आंशिक पर्याय** (जैसे बेटी-लड़की, बेटा-लड़का, दौड़ना-भागना, अभिमान-घमंड आदि); **शैलीय पर्याय** (जैसे पत्र-खत, परीक्षा-इम्तहान, क्रोध-गुस्सा, पुस्तक-किताब, व्यवस्था-इन्तज़ाम, बहुमूल्य-बेशक़ीमत, प्रकाश-रोशनी आदि); **क्षेत्रीय पर्याय**—जो अलग-अलग क्षेत्रों में प्रचलित होते हैं, जैसे कट्टा-बोरी, घिया-लौकी, तोरी-नेनुवाँ-घेंवड़ा, पाड़ा-कटरा आदि। पर्याय देने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कठिन प्रविष्टि के लिए और भी कठिन पर्याय न आने पाए, क्योंकि पर्याय का प्रयोग अर्थ का बोध कराने के लिए होता है, मात्र पर्याय-प्रयोग के लिए नहीं। मसल मशहूर है 'मघवा मूल बिडौजा टीका' अर्थात् 'मघवा' को 'बिडौजा' पर्याय से नहीं समझाया जा सकता है। इन दोनों (मघवा, बिडौजा) शब्दों का अर्थ 'इन्द्र' है। जब कोई व्यक्ति कठिन शब्द का अर्थ समझाने के लिए और भी कठिन शब्द का प्रयोग करे, तो इस लोकोक्ति का प्रयोग करते हैं। शब्द या मुहावरे आदि को समझाने के बाद कोष्ठक में पर्याय दे देना भी अर्थ की ठीक प्रतीति के लिए अच्छा होता है (जैसे 'गीत' के साथ गाना, नग़मा, तराना)।

**व्याख्या**—यह शब्दों में न होकर 'पदबन्ध' या 'वाक्य' में होती है। जैसे हिन्दू, सनातन धर्म, ओडिसी (एक नृत्य), पूर्णिमा जैसे शब्दों को कोश में समझाया जाएगा, इनकी व्याख्या की जाएगी, पर्याय या तो मिलेंगे नहीं, या पर्यायों से काम नहीं चलेगा।

**वर्णन**—वनमानुस, गेंडा, पोंगल (एक पर्व), दीवाली, डोडो (एक विलुप्त पक्षी), ब्लिची (एक रूसी खाद्य पदार्थ) जैसे शब्दों का कोश में वर्णन होगा, व्याख्या या पर्याय नहीं।

**परिचय**—यह पौराणिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि नामों का होता है। जैसे राम, प्रताप, एशिया जैसे शब्दों का कोश में परिचय दिया जाएगा।

**परिभाषा**—कोश में किसी भी विज्ञान, शास्त्र आदि के पारिभाषिक शब्द की (जैसे संज्ञा, स्वनिम, तान आदि) परिभाषा दी जाएगी। परिभाषा-कोश, विषय-कोश तथा विश्व-कोश में प्रायः इसका प्रयोग होता है।

**विवेचन**—यदि कोश में किसी विषय आदि की प्रविष्टि हो तो उसका विवेचन करना पड़ेगा। मुख्यतः विषय-कोश (जैसे अर्थशास्त्र कोश, भाषाविज्ञान कोश) तथा विश्वकोश (जैसे समाजशास्त्रीय विश्वकोश, विश्वकोश) में तो प्रायः विवेचन ही करना पड़ता है।

व्याख्या, वर्णन, परिचय, परिभाषा तथा विवेचन में कभी-कभी एकाधिक का भी, एक साथ प्रयोग करना पड़ सकता है या कोश में कुछ अर्थ ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें इन पाँचों में से एक से अधिक के लक्षण हों।

कोशों में व्याख्या तथा वर्णन आदि के लिए प्रायः निम्नांकित की सहायता ली जाती है :

**विलोम**—बहुत से शब्दों को विलोम के परिप्रेक्ष्य में समझाना सरल होता है। उदाहरण के लिए, गोरा को साँवला, लंबा को नाटा, या ठिगना तथा बड़ा

को छोटा के सन्दर्भ में स्पष्ट करना अधिक सुविधाजनक है। ऐसे ही सुख-दुख, खुला-बन्द, सुन्दर-असुन्दर, स्वाभाविक-अस्वाभाविक, प्राकृतिक-कृत्रिम (जैसे कृत्रिम उसे कहते हैं जो प्राकृतिक न हो)। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा न हो कि 'कृत्रिम' प्रविष्टि में लिखा जाए कि 'कृत्रिम वह है जो प्राकृतिक न हो' तथा 'प्राकृतिक' प्रविष्टि में लिखा जाए कि 'प्राकृतिक वह है जो कृत्रिम न हो।' वस्तुतः 'विलोम' का प्रयोग अर्थ देने या समझाने के बाद यों भी कोष्ठक में देकर किया जा सकता है, उससे अर्थ में और स्पष्टता आ जाती है तथा प्रयोग-संकेत भी मिल जाता है। उदाहरणार्थ, 'गोरा (विशेषण)—वह मनुष्य जिसकी चमड़ी सफ़ेद हो' देने से पूरी बात नहीं कही जा सकती। इसके आगे कोष्ठक में (विलोम : साँवला, काला) लिख दें तो अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाएगा। विलोम सामान्य के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के भी होते हैं, जिनकी सहायता कोशकार को व्याख्या तथा वर्णन आदि में लेनी चाहिए। जैसे : **सम्बन्ध-आधारित विलोम** (बाप-बेटा, माँ-बेटी, पति-पत्नी), **क्रिया-विलोम** (बेचना-खरीदना, बैठना-उठना, देना-लेना, सोना-जागना आदि)।

**सम्बन्ध**—सम्बन्धों से भी व्याख्या और वर्णन में सहायता मिलती है। यह भी कई प्रकार का हो सकता है। जैसे : **अंगांगी सम्बन्ध** (हाथ-उँगली, शरीर-पीठ, चिड़िया-पंख, चिड़िया-चोंच, पेड़-जड़, हाथी-सूंड़, पैर-पिंडली, पशु (गाय, भैंस, बकरी आदि)-सींग, तना-डाली आदि)। कहना न होगा कि 'पंख' को चिड़िया, या सूंड़ को हाथी के प्रसंग में ही समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ : जड़ (पेड़-पौधों का वह भाग जो प्रायः ज़मीन के नीचे होता है; **जाति-सदस्य सम्बन्ध** (जानवर-हाथी, मछली-रोहू, चिड़िया-मोर, फूल-गेंदा, बकरी-बरबरी, भैंस-जमुनापारी आदि)। जैसे : गेंदा (एक प्रकार का फूल...बरबरी—एक प्रकार की बकरी जो ...); **रक्त-सम्बन्ध** (बूआ, पिता की बहिन; मौसी, भतीजा, चाचा, ताऊ आदि।); **अनुस्तरण सम्बन्ध** (सुन्दर-सुन्दरतर-सुन्दरतम, उच्च-उच्चतर-उच्चतम, तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम, निम्न-निम्नतर-निम्नतम। जैसे उच्चतर—किसी की तुलना में उच्च। उच्च और उच्चतम के बीच का स्तर) आदि। इनके अतिरिक्त **अंग-गणना** (दशशीश, दशमुख, चतुरानन, पंचानन, षडानन, षड्वदन, सहस्रफण; षड्भुज, पंचभुज, चतुर्भुज, त्रिभुज, बीसभुज; एकाक्ष, एकनयन; चतुष्पदी, छप्पय, चतुर्दश-पदी, षट्पद); **अंग-वर्णन** (मंदोदरी, तन्वंगी, लंबकर्ण=गधा, लंबग्रीव=ऊँट); **अवस्था-वर्णन** (कन्या, शिशु, वृद्ध, जवान, कलभ (30 वर्ष का हाथी), शतायु, शतंजीवी); **स्वभाव वर्णन** (चकोर=...जो चंद्रमा पर अनुरक्त होता है; पपीहा=...जो रात में पीउ-पीउ करता है, श्वेताभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, कंजूस, क्रोधी, आलसी, हठी, दयालु, संशयालु, श्रद्धालु, लालची आदि); **स्थान** (कंगारू—एक जानवर जो आस्ट्रेलिया में...। पेटी—जो कमर में बाँधी जाती है। ऐसे ही बिछिया, अँगूठी, दीवालघड़ी, हौदा, मोज़ा, दस्ताना आदि); **काल** (भैरवी (=एकराग जो प्रातः काल...) आदि राग-रागिनी, शाम, प्रातः अहराह्न, पूर्वाह्न, होली, दीवाली, दशहरा आदि); **गुण** (अच्छा, बड़ा, कुरूप, सुन्दर, भव्य आदि); **लिंग** (हथिनी-मादा हाथी, भेड़ा-नर भेड़, कवयित्री-कवि का स्त्री०); **अक्षर** (द्विरेफ-

जिसकी वर्तनी में दो 'र' (भ्रमर) हों, भौंरा) ; **सामग्री** (कढ़ी, खिचड़ी, तहरी, वर्फ़ी, रसगुल्ला आदि; जैसे चमचम—छैने से वनाई जाने वाली एक वंगाली मिठाई।) ; **वर्ण-वर्णन** (रक्तकमल, श्वेतकमल, नीलकमल, नीलकंठ (मोर, शिव), सितकंठ, वीरवहूटी (एक कीड़ा जो लाल रंग का...), वेला (एक पौधा जिसके फूल सफ़ेद होते हैं) आदि) ; **समानता** (मृगनयनी, पिकवैनी, कोकिलकंठी, रेशमी (रेशम जैसा कोमल, जैसे रेशमी वाल), वूंदी (वूंद जैसी मिठाई), खरगोश (गदहे जैसे कान वाला...), पुंडरीकाक्ष, पंकाक्ष आदि) ; **उद्गम** (कीचड़, वड़वानल, दावानल। जैसे मद—एक द्रव पदार्थ जो हाथी के गंडस्थल से...।) ; **प्रभाव या प्रतिक्रिया** (मधुर, मीठा, कड़वा, कोमल, तीता आदि) द्वारा भी प्रविष्टियों की व्याख्या की जाती है।

कोशों में कभी-कभी **प्रयोग** द्वारा भी स्पष्टीकरण करना पड़ता है। प्रयोग अनेक प्रकार के हो सकते हैं : उदाहरणार्थ : (1) जड़ी-वूटी के नामों की व्याख्या यह कहकर की जाती है कि एक जड़ी/वूटी/काष्ठ-औषधि जो दवा के काम आती है। (2) हौदा—जो हाथी पर कसा जाता है। ऐसे ही पेटी, टाई, मोज़ा, पैंजामा, टोपी, खूंटी आदि। (3) भाषा की वे इकाइयाँ जिनका स्पष्ट अर्थ नहीं है, उन्हें प्रयोग द्वारा या प्रयोग के उदाहरण द्वारा या प्रयोग-पद्धति द्वारा समझाया जाता है। जैसे श्री, जी, ने, तो आदि। (4) कुछ शब्दों के अर्थ ऐसे होते हैं कि उनका ठीक अर्थ मात्र पर्याय, व्याख्या या वर्णन आदि से नहीं स्पष्ट किया जा सकता। भाषिक परिवेश या भाषिक सन्दर्भ उनके अर्थ को वताने के लिए अनिवार्यतः आवश्यक होते हैं। जैसे गोरा (मानव), सांवला (मानव), चमड़ी (मानव), गंदला (पानी), वनैला (सूअर), उपजना (वनस्पति), व्याना (जानवर), ठिगना (मानव), नाटा (मानव), वौना (मानव) को कोष्ठित शब्दों के सन्दर्भ में ही समझाया जा सकता है। (5) ऐसे ही कलूटा (काला-), भालना (देखना-), सुलुफ़ (सौदा-), वक्काल (वनिया-) सर्वत्र नहीं प्रयुक्त होकर केवल संकेतित शब्दों के साथ (दूसरे सदस्य के रूप में) ही आते हैं। यह सहप्रयोगता भी उनके अर्थ का ही अंग है, क्योंकि इनका मुक्त प्रयोग सम्भव नहीं। (6) व्याकरणिक शब्दों के व्याकरणिक अर्थ भी प्रयोग-परिधि से ही स्पष्ट किए जाते हैं। जैसे ने, को, तो आदि के अर्थ। इन्हें प्रयोग द्वारा ही समझाया जा सकता है। जैसे ने—कर्ता कारक का चिह्न जिसका प्रयोग...होता है।

अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कभी-कभी प्रयोग वतलाना अन्य दृष्टियों से भी आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, पर्याय शब्दों में सूक्ष्म भेद समझाना हो तो व्याख्या और प्रयोग दोनों की ही सहायता लेनी पड़ेगी। डॉ० रस्तोगी की पुस्तक 'हिन्दी क्रियाओं का अर्थपरक अध्ययन,' डॉ० महेशचन्द्र शर्मा का शोध-प्रवन्ध 'हिन्दी की भाववाचक संज्ञाओं का अर्थपरक अध्ययन' तथा मेरी पुस्तक 'अच्छी हिन्दी' में इस प्रकार की सामग्री है। कोशों में इस दृष्टि से वेव्स्टर का अंग्रेज़ी पर्याय कोश वहुत अच्छा है। एक उदाहरण लें : 'न' का प्रयोग अपने से वड़ों को मना करने के लिए होता है (आप यहाँ न वैठें) तथा 'मत' का अपने वरावर या छोटों

के लिए (तुम यहाँ मत बैठो, तू यहाँ मत बैठ)। यहाँ व्याख्या के साथ उदाहरण या प्रयोग देने से 'न' और 'मत' की पूरी अर्थ-परिधि स्पष्ट हो गई। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर ने 'न' को 'निषेधवाचक शब्द, नहीं, मत' कहकर छुट्टी पा ली है। किन्तु कहना न होगा कि इतने से इसका ठीक और पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ। ऐसे ही 'न' का एक और अर्थ है जिसे संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर ने 'या नहीं' दिया है; किन्तु 'आओगे न' तथा 'आओगे या नहीं' में बहुत अन्तर है। 'न' में प्रश्न के साथ-साथ 'आग्रह' भी है, किन्तु 'या नहीं' में मात्र प्रश्न है। 'न' का यह दूसरा अर्थ 'आग्रहपूर्ण प्रश्न-चिह्नक' (वह चिह्नक जिससे प्रश्न के साथ-साथ आग्रह का भी बोध हो) कहने के साथ-साथ उदाहरण से ही स्पष्ट किया जा सकता है।

कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों का अर्थ तो प्रायः दिया ही नहीं जा सकता, केवल प्रयोग लेकर ही कुछ बातें कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी 'तो' की बात लें। यह एक बलार्थक निपात है, किन्तु मात्र बलार्थक निपात कहने से बात नहीं बनती। इसके कुछ प्रयोग हैं : (क) बाल-बच्चे अच्छे तो हैं; वही तो मैं भी कह रहा था। यहाँ 'तो' बलार्थक है। (ख) आया तो, रुका नहीं। यहाँ 'तो' बलार्थक के साथ थोड़ा-सा 'किन्तु' के भाव से भी युक्त है। इसके स्थान पर 'आया तो किन्तु रुका नहीं' भी कह सकते हैं। (ग) तो मैं चलूं। इस वाक्य में 'तो' बलार्थक बिल्कुल नहीं है। वाक्य के आरंभ में आने पर 'तो' पूर्ववर्ती सन्दर्भ से वाक्य को जोड़ने का काम करता है। इसी अर्थ में कुछ लोग कविता सुनाते समय हर छन्द के प्रारंभ में 'तो' कहते हैं, मुख्यतः जब कविता वर्णनात्मक हो। श्री श्यामनारायण पांडेय 'हल्दीघाटी' से कोई अंश सुनाते समय प्रायः 'तो' का इस प्रकार का प्रयोग करते रहे हैं। ऐसे ही 'को' के पूरे अर्थ को भी प्रयोग के आधार पर ही समझाया जा सकता है।

सहप्रयोग क्रियाओं के प्रसंग में होता है। सभी संज्ञाओं या क्रियाओं के साथ सभी क्रियाएँ नहीं आतीं : खाना खाना—भोजन करना, आदाब बजाना—प्रणाम करना, बलि चढ़ाना—बलिदान करना, थप्पड़ रसीद करना—धक्का देना, आ मरना—लिख मारना, गोल कर जाना, आ बनना, बन पड़ना, चलता बनना, चल बसना आदि। विशेषणों के साथ भी यही स्थिति है : वह ग़रीब तो बहुत ईमानदार निकला, तुम तो बहुत तेज़ निकले।

पर्याय के साथ भी कभी-कभी प्रयोग देना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए, व्यवस्था और इंतज़ाम की बात लें। 'उनकी व्यवस्था अच्छी थी' 'उनका इन्तज़ाम अच्छा था' में व्यवस्था और इन्तज़ाम पर्याय हैं, किन्तु 'इस क़ानून में दंड की भी व्यवस्था है,' कहना ठीक है, परन्तु 'इस क़ानून में दंड का भी इन्तज़ाम है' कहना ठीक नहीं है। ऐसे ही 'यह बाँस बड़ा/लंबा है' में 'बड़ा' और 'लंबा' पर्याय हैं, किन्तु 'उनके बड़े बेटे ने सारी सम्पत्ति हथिया ली' का एक अर्थ है तो 'उनके लंबे बेटे ने' का दूसरा अर्थ है।

द्विभाषी कोश में सहप्रयोग की आवश्यकता और भी अधिक होती है, अन्यथा कोश के आधार पर गोरी बकरी, गेहुआँ कपड़ा, गंदली सड़क जैसे प्रयोग कोई

कर सकता है। ऐसे सहप्रयोग होंगे: जूठा (खाना, पानी, बर्तन, मुँह, हाथ); चुपड़ी (रोटी); चिकनी-चुपड़ी (बात); धारा-प्रवाह (भाषण, बोलना); गंदला (पानी); गेहुआँ (मानव); बासी (खाना, पानी, सब्जी, फल, मुँह, खबर) आदि।

हर भाषिक इकाई के अथवा उसके अर्थ के प्रयोग की सीमा प्रयोग-सीमा होती है, इसीलिए कोश में इसका संकेत आवश्यक है। जैसे बाज़ारू, क्षेत्रीय, बोल-चाल का, साहित्यिक, काव्यगत, प्राचीन, मध्यकालीन, अल्पप्रयुक्त (क्वचित प्रयुक्त), विलुप्त (गतप्रयोग) आदि।

### अत्यन्त प्रचलित शब्द का अर्थ

अल्पप्रचलित और अप्रचलित शब्दों के अर्थ देने में कोशकार को उतनी परेशानी नहीं होती, जितनी अत्यन्त प्रचलित शब्द के अर्थ देने में। उदाहरण के लिए, 'अंबु,' 'सलिल,' 'नीर' का अर्थ 'पानी' दिया जा सकता है, किन्तु 'पानी' का अर्थ क्या दें? यह बहुत बड़ी विडंबना है, कि कोश में कठिन शब्दों का अर्थ देना सरल होता है और सरल शब्दों का अर्थ देना कठिन। सामान्यत: जो शब्द जितना कठिन होगा, उसका अर्थ देना उतना ही सरल होगा तथा जो शब्द जितना सरल होगा, उसका अर्थ देना उतना ही कठिन होगा। बेचारा कोशकार अँधेरी या अप्रकाशित कोठरी सरलता से प्रकाशित कर देता है, उसकी प्रशंसा होती है, किन्तु प्रकाशित को प्रकाशित करने में उसके छक्के छूट जाते हैं, और उसके श्रम का किसी को एहसास तक नहीं होता, किन्तु वह प्रकाशित को प्रकाशित करने के निरर्थक कार्य के लिए अभिशप्त है—उसे तो यह करना ही पड़ेगा। कोई उसके श्रम को माने-न माने, पहचाने-न पहचाने। सच पूछा जाए तो सरल शब्दों के अर्थ देने में कोशकार को अपेक्षाकृत अधिक सतर्क रहना चाहिए, अन्यथा उसका प्रयास हास्यास्पद हो जाता है, और वह हो जाता है, हँसी का पात्र।

### व्यर्थ के अर्थ

हिन्दी के कई बड़े कोशों (हिन्दी शब्द सागर, मानक हिन्दी कोश, बृहद् हिन्दी कोश) में ऐसे अर्थों की भरमार है, जो हिन्दी में कभी भी प्रयुक्त नहीं हुए, तथा आगे भी जिनके प्रयुक्त होने की कोई भी संभावना नहीं है। उदाहरणार्थ, बड़े कोशों की तो बात छोड़ दीजिए संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में 'हरि' के अर्थों में चन्द्रमा, अग्नि, वायु, मोर तथा पृथ्वी के एक भाग का नाम; 'अ' के संज्ञा रूप में सारे-के-सारे सरस्वती, अमृत, कीर्ति, ललाट, कुबेर, विश्व ब्रह्मा, इन्द्र, आदि 11-12 अर्थ; या 'क' के संज्ञा रूप में 20-22 अर्थ लगभग इसी कोटि के हैं। वस्तुत: कोशकार को ऐसे अर्थों से बचना चाहिए।

### उद्धरण

कोशों में उद्धरण या प्रयोग देने की परंपरा भारत में काफ़ी पुरानी है।

8वीं सदी पूर्व के लगभग बने निरुक्त में वेदों से उद्धरण दिए गए हैं। अमरकोश की कई टीकाओं में भी यत्र-तत्र ग्रंथों के उद्धरण हैं। यूरोप में 17वीं सदी में इतालवी तथा फ्रांसीसी आदमियों ने जो वृहत् कोश बनाए उनमें ही सबसे पहले उद्धरण दिए गए, किन्तु निश्चित व्यवस्था और दृष्टिकोण के साथ यूरोप में उद्धरण देने की परंपरा चलाने का श्रेय डॉ० जान्सन को है। कुछ लोगों का तो यह विचार है कि उनके कोश के उद्धरण वाले अंश ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। आगे कोशों में उद्धरण देने की समस्या पर और भी गहराई से चिन्तन हुआ और अब तो सभी यूरोपीय भाषाओं (मुख्यतः रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा जर्मन) में इस सम्बन्ध में बहुत ही सुचिन्तित और व्यवस्थित परंपरा चल पड़ी है। एशियाई कोशों में इस दृष्टि से केवल जापान में बने कोशों में ही व्यवस्था दिखाई पड़ती है।

सबसे पहले यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि उद्धरण के चयन के आधार क्या-क्या हो सकते हैं? मुख्यतः निम्नांकित आधारों पर विश्व के विभिन्न कोशों में उद्धरण चुने गए हैं या चुने जा सकते हैं: (1) **अर्थ :** (क) किसी शब्द के भाषा-विशेष में प्रथम प्रयोग का उद्धरण; (ख) किसी शब्द के हर अर्थ के प्रथम प्रयोग का उद्धरण; (ग) किसी शब्द के किसी अर्थ विशिष्ट की विशिष्ट छाया (अर्थच्छाया) को उदाहृत करने का उद्धरण। (2) **व्याख्या :** (क) किसी प्रविष्टि की किसी उद्धरणीय व्याख्या रूप में दिया गया उद्धरण; (ख) किसी प्रविष्टि की अलग-अलग व्याख्याओं को उदाहृत करने के लिए दिए गए उद्धरण। (3) **परिभाषा :** (क) किसी पारिभाषिक शब्द की कोई सुप्रसिद्ध परिभाषा के रूप में दिया गया उद्धरण; (ख) किसी पारिभाषिक शब्द की अलग-अलग परिभाषाओं के रूप में दिए गए उद्धरण। (4) **प्रमाण :** किसी पौराणिक और ऐतिहासिक घटना, पात्र, स्थान आदि के लिए शब्द-प्रमाण-रूप में प्रस्तुत उद्धरण। ऐसे ही कोई रचना किसी विशिष्ट व्यक्ति की है या नहीं, कोई अंश किसी रचना का भाग है या नहीं या किसी साहित्यकार की कुल कितनी रचनाएँ हैं, आदि के प्रमाणस्वरूप भी सम्बन्वित कोशों में उद्धरण दिए जाते हैं। (5) **वर्गीकरण :** किसी विषय के वर्गीकरण के रूप में उद्धृत एक या एकाधिक उद्धरण। (6) बहुत-से शब्द, भाषा में, किसी खास समय पर आकर अप्रयुक्त हो जाते हैं। कोश में ऐसे शब्दों का अन्तिम प्रयोग-युक्त उद्धरण देना अच्छा होता है। (7) सभी सामान्य मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोगों के उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं, किन्तु यदि असामान्य के सटीक प्रयोग मिलें और कोश की सीमा के लिए असंभव या कष्ट-संभव न हो तो ऐसे उद्धरण दिए जाने चाहिए। (8) उद्धरण छोटा दें या बड़ा, एक वाक्य का दें या वाक्यांश का, यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः इन प्रश्नों का उत्तर मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है: (क) कोश छोटा है या बड़ा या मध्यम आकार का; (ख) जिस उद्देश्य से उद्धरण दिया जा रहा है, उस दृष्टि से उद्धरण का कितना अंश आवश्यक है। हाँ, दोहा, सोरठा, चौपाई, कुंडलिया आदि छंद, आंशिक रूप में न देकर पूर दिए जा सकें तो अधिक अच्छा हो। (9) एक ही शब्द के प्रयोग के उद्धरण एक ही काल में एकाधिक

प्रकार के ग्रंथों में मिल सकते हैं। यथासाध्य सामान्य अर्थ हो तो सामान्य साहित्य से तथा पारिभाषिक अर्थ हो तो तदनुरूप साहित्य से उद्धरण लेना चाहिए। ऐसे ही ऐतिहासिक शब्द के लिए ऐतिहासिक ग्रंथ से उद्धरण अधिक उपयुक्त होगा। (10) उद्धरण यथासाध्य प्रामाणिक लेखकों/पुस्तकों/पाठों से दिए जाने चाहिए। यदि ऐसे उद्धरण न उपलब्ध हों तथा अप्रामाणिक पाठ या प्रति या संदिग्ध लेखक या कृति का उद्धरण हो तो उसका संकेत यथासाध्य संकेत रूप में कर देना चाहिए। (11) उद्धरणकोश या सूक्तिकोश जैसे कोशों में अधिक से अधिक उद्धरणीय उद्धरण दिए जा सकते हैं। इनके क्रम में दो बातें ध्यान में रखने की हैं। एक तो यह कि सामान्यतः उद्धरण कालक्रमानुसार दिए जा सकते हैं। दूसरे यह कि यदि किसी एक शीर्षक या विषय के उद्धरण (कथ्य, प्रशंसा-निन्दा या उस विषय के प्रति कहने वाले के दृष्टिकोण आदि के आधार पर) वर्गीकरण करने योग्य हैं, तो उन्हें वर्गीकृत करके दिया जा सकता है। हाँ, वैसी स्थिति में भी हर उपवर्ग में उद्धरण कालक्रमानुसार दिए जाएँ तो अच्छा रहता है, क्योंकि उससे उसके प्रति विकासात्मक दृष्टि भी सामने आ जाती है।

## समय

कोशों में कहीं-कहीं समय या सन्-संवत आदि का उल्लेख भी करना पड़ता है। जैसे—(क) ऐतिहासिक व्यक्तियों या घटनाओं के साथ; (ख) किसी शब्द के किसी भाषा में प्रथम प्रयोग के साथ; (ग) किसी शब्द के अलग-अलग अर्थों के प्राप्त प्रथम प्रयोगों के साथ; (घ) किसी अप्रयुक्त शब्द के अन्तिम प्रयोग के साथ। इन सभी के देने में काफ़ी सावधानी बरतनी चाहिए, तथा यदि कोई काल, समय या सन्-संवत संदिग्ध हो तो उसका संकेत भूमिका आदि में या अन्यत्र कर देना चाहिए या सन्-संवत् के साथ कोष्ठक में प्रश्नवाचक चिह्न लगा देना चाहिए। साथ ही यदि उस सम्बन्ध में अलग-अलग मत हों तो उनका भी उल्लेख कर देना चाहिए।

उद्धरण या अर्थ आदि के साथ जितने भी ग्रंथों का उल्लेख हो, संक्षेप-सूची में नाम देते समय सभी के समय का उल्लेख कर देना उपयुक्त होता है, क्योंकि कोश का हर प्रयोक्ता आवश्यक नहीं कि कोश में संकेतित हर पुस्तक के काल से परिचित हो। समय का ठीक ज्ञान हो जाने से कोश के प्रयोक्ता के मन में शब्द के प्रयोग या अर्थ-विकास के प्रति विकासात्मक दृष्टि स्पष्ट हो जाती है।

## चित्र तथा आरेख

कोशों में चित्रों तथा आरेखों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए, 'डोडो' पक्षी अब विश्व में कहीं नहीं मिलता। विलुप्त हो चुका है। बहुत पहले मारिशस में पाया जाता था। अंग्रेज़ी में मुहावरा है to be dead like a dodo=बिल्कुल मर जाना। अब, किसी भी भाषा के कोश में 'डोडो' के मात्र इस अर्थ से—'एक विलुप्त पक्षी' अर्थ से उसके बारे में विशेष जानकारी नहीं मिल सकती, जब तक कि साथ में उसका चित्र न हो। जिन दिनों मैं ताशकंद

(सोवियत संघ) विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा और साहित्य का विज़िटिंग प्रोफ़ेसर था, प्रेमचंद की एक कहानी पढ़ाते समय 'भैंस' शब्द आया। भैंसें वहाँ बिल्कुल नहीं होतीं, अतः विद्यार्थी अपरिचित थे। हिन्दी कोशों में इसका अर्थ तो था, किन्तु चित्र न होने के कारण भैंस के स्वरूप बताने की दृष्टि से अर्थ की कोई सार्थकता न थी। अन्त में, मैं विद्यार्थियों को चिड़ियाघर ले गया, किन्तु वहाँ भी जो भैंसें थीं, हमारी भैंसों से भिन्न थीं, लंबे-लंबे बाल, अजीब-सी शक्ल। उस दिन मुझे इस बात का वास्तविक अनुभव हुआ कि कोशों में चित्र का कितना महत्त्व है। इस दृष्टि से दो बातें ध्यान रखने की हैं: (क) एक-भाषिक कोश में उस क्षेत्र के लोगों के लिए अपरिचित पशु-पक्षियों, वस्तुओं आदि के चित्र दिए जाने चाहिए, चाहे वह अपरिचय विलुप्तता या किसी भी कारण से क्यों न हो? (ख) द्विभाषी कोशों में स्रोत भाषा के ऐसे शब्दों से संकेतित वस्तुओं, जीवों आदि का चित्र देना चाहिए, जिनसे लक्ष्य भाषा-भाषी परिचित न हों। जैसे हिन्दी-जर्मन कोश में खड़ाऊ, जनेऊ, रोटी आदि के चित्र उपयोगी रहेंगे। (ग) विषय के कोशों/विश्वकोशों में किसी यंत्र के काम करने का परिचय आरेख के बिना देना कठिन ही नहीं, असंभव-सा है। उदाहरण के लिए, भाषा प्रयोगशाला में कायमोग्राम या आसिलोग्राम की कार्य-पद्धति विश्वकोश में समझाने के लिए चित्र/आरेख अनिवार्यतः आवश्यक होगा। (घ) हाँ, अनावश्यक चित्रादि देने से बचना चाहिए। उदाहरण के लिए, जिस, देश में ईख की पैदावार ही प्रमुख हो, वहाँ के कोश में ईख का चित्र देने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार आवश्यक आरेख और/या चित्र शाब्दिक वर्णन के पूरक होते हैं।

## संक्षेप

कोशों में कम-से-कम स्थान में एक अथवा अनेक विषयों का अधिक-से-अधिक ज्ञान समाहित करना पड़ता है, अतः कोश-निर्माण के लिए 'संक्षेप' बहुत महत्त्वपूर्ण है।

(1) जहाँ तक संभव हो **वाक्यात्मक अभिव्यक्तियों** के स्थान पर **एक-शब्दीय अभिव्यक्ति** (जैसे पर्याय, विलोम आदि) का प्रयोग करना चाहिए, ताकि कम स्थान घिरे, और थोड़े में अधिक बात कही जा सके। उदाहरण के लिए, 'बहुमूल्य' का अर्थ 'वह जिसका मूल्य बहुत हो' की तुलना में 'बेशक़ीमत' कोश के लिए अधिक उपयुक्त होगा। ऐसे ही 'इमानदार' को वाक्यात्मक ढंग से समझाएँ तो काफ़ी स्थान देना पड़ेगा। इसकी तुलना में 'जो बेइमान न हो' कहना पर्याप्त होगा। किन्तु इस प्रसंग में तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है: (क) संक्षेप की वेदी पर जो कहा जाना है, उसकी हत्या नहीं होनी चाहिए; (ख) संक्षेप के चक्कर में ग़लत शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए; (ग) संक्षेप के कारण अभिव्यक्ति में अस्पष्टता नहीं आनी चाहिए।

(2) **वाक्यात्मक अभिव्यक्ति** भी दो प्रकार की होती है: **पदबंधीय**,

वाक्यीय। उदाहरण के लिए, 'रेशमी' का अर्थ दो प्रकार से दिया जा सकता है : (क) रेशम से बना; (ख) जो रेशम से बना हो। कहना न होगा कि पहली अभिव्यक्ति पदबंधीय है। 'रेशम से बना' विशेषण पदबंध है। दूसरी अभिव्यक्ति वाक्यीय है। 'जो रेशम से बना हो' विशेषण उपवाक्य है (रेशमी कपड़ा उसे कहते हैं जो रेशम से बना हो)। कोश में पहले पदबंधीय अभिव्यक्ति से अर्थ देने का यत्न करना चाहिए। हाँ, यदि इससे काम न चले तो वाक्यीय अभिव्यक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ उन तीनों ही बातों (कथ्य की हत्या, अशुद्धि, अस्पष्टता) का ध्यान रखना चाहिए जो ऊपर (नं० 1 में) कही जा चुकी हैं।

इस तरह यथासाध्य सूत्रात्मक अभिव्यक्ति का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक कोशोचित होता है।

(3) व्याकरण-संकेतों (सं०, विशे०, क्रि०, स्त्री० आदि), विषय-संकेतों (प्राणि०, इंजि०, भौति०, भूगर्भ० आदि), प्रयोग-संकेतों (अप्र०, अल्प०, ग्राम्य० आदि) आदि के लिए संक्षेप बनाकर कोश के प्रारंभ में दे देना चाहिए। ऐसे संक्षेपों को बनाने में तीन बातों का ध्यान रखें : (क) संक्षेप ऐसा हो जिसके पूरे रूप का सरलता से पता चल जाए। बार-बार संक्षेप-सूची न देखनी पड़े; (ख) एक संक्षेप का प्रयोग एकाधिक के लिए न हो। जैसे भू०=भूगोल, भूगर्भ; अ०=अव्यय, अश्लील। (ग) ऐसा संक्षेप न बनाएँ जिसके पूरे रूप में भी उतनी ही जगह घिरे जितनी संक्षेप में। जैसे, ब्रज-ब्र०, प्राची०-प्राचीन।

इस प्रकार के सभी संक्षेपों की वर्णानुक्रमिक सूची कोश के प्रारंभ में दे देनी चाहिए।

(4) बहुत-से कोशों में पुस्तकों के नामों के संकेत देने पड़ते हैं, किन्तु पुस्तकों के पूरे नाम देना अनावश्यक होता है। उनके संक्षेप बना लेने चाहिए, उन्हीं संक्षेपों का प्रयोग कोश में जहाँ आवश्यक हो करना चाहिए तथा कोश के आरंभ में उन संक्षेपों की भी पूरे नाम के साथ सूची दे देनी चाहिए, ताकि संक्षेपों के पूरे रूप को जाना जा सके।

### अन्योन्य सन्दर्भ (Cross-reference)

कोश में पिष्टपिपण बचाने के लिए तथा संक्षेप के लिए अन्योन्य सन्दर्भ (प्रतिनिर्देश) का उपयोग किया जाता है। मान लीजिए, हिन्दी के एकभाषिक कोश में 'टेलीफ़ोन' शब्द की प्रविष्टि में उसे समझा दिया गया है, तो 'दूरभाष' की प्रविष्टि में पुनः उसे समझाने की आवश्यकता नहीं। 'दूरभाष' की प्रविष्टि के सामने इतना लिख देना पर्याप्त होगा कि दे० 'टेलीफ़ोन'। इसी को अन्योन्य सन्दर्भ, प्रतिनिर्देश या अन्योन्य सन्दर्भण (Cross-referencing) कहते हैं। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं : (1) दोनों या अधिक, जितनी भी प्रविष्टियाँ अन्योन्य सन्दर्भ की हों सभी के साथ व्युत्पत्ति तथा उच्चारण आदि दे देना चाहिए। (2) यदि अन्योन्य सन्दर्भ की दोनों या सभी प्रविष्टियाँ व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से समान हों, तब तो एक में अर्थ देकर दूसरे में

पहले का सन्दर्भ-संकेत दे देना पर्याप्त होता है, किन्तु यदि किसी एक प्रविष्टि में व्याकरण, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्ति, संयुक्त शब्द, शब्द-बंध, विशिष्ट प्रयोग आदि की दृष्टि से कुछ अन्य बातें या प्रविष्टियां और हों तो उन्हें भी दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, 'पानी' के साथ 'पानी' का अर्थ तथा पानी से बनने वाले मुहावरे आदि (पानी-पानी होना, पानी पीकर जाति पूछना, पानी फेरना) दिए जाएंगे, किन्तु जल के साथ अर्थ के लिए 'पानी' का सन्दर्भ-संकेत पर्याप्त होगा। यह ध्यान देने की बात है कि 'पानी' से मुहावरे बनते हैं किन्तु जल से नहीं, दूसरी ओर 'जल' से समस्त शब्द (जलपान, जलसमाधि, जलप्रपात आदि) बनते हैं, किन्तु पानी से नहीं। अतः जो अतिरिक्त चीज़ें जिनमें हैं, उनके साथ दी जाएँगी।

## अवश्य दें, हो तो दें, आवश्यक हो तो दें

समवेततः शब्दकोश में प्रविष्टि, उच्चारण, व्याकरण, व्युत्पत्ति और अर्थ आदि तो अवश्य देना चाहिए; किन्तु मुहावरा, लोकोक्ति, शब्दबंध, विशेष प्रयोग वहां देना चाहिए जहां हों; तथा उद्धरण, प्रयोग, विशेष अर्थ में प्रयुक्त का काल, चित्र तथा आरेख केवल वहां दें जहां वे आवश्यक हों। अन्य प्रकार के कोशों के सम्बन्ध में भी इन्हीं के अनुरूप बातें ध्यान में रखने की होती हैं।

इस प्रकार कोशकार के लिए तीन निर्देशक हैं: 'किन्हें अवश्य दें,' 'किन्हें हो तो दें,' और 'किन्हें तब दें जब वे आवश्यक हों'।

## 4. एकभाषिक कोश

जैसा कि नाम से स्पष्ट है तथा पीछे भी वतलाया जा चुका है, एकभापिक कोश से आशय उस कोश से है जिसमें स्रोत भापा, लक्ष्य-भापा एक हो; अर्थात् जिस कोश में जिस भापा में प्रविष्टि हो, उसी भापा में उसका अर्थ आदि भी हो। जैसे हिन्दी-हिन्दी, अंग्रेजी-अंग्रेजी, रूसी-रूसी आदि।

एकभापिक कोश के शब्दकोश, मुहावरा-कोश, लोकोक्ति-कोश, धातु-कोश, उपसर्ग-कोश, प्रत्यय-कोश, विपय-कोश (जैसे साहित्य-कोश, मनोविज्ञान-कोश आदि सामान्य-कोश अथवा परिभाषा-कोश जिसमें अलग-अलग विपयों के पारिभापिक शब्दों की परिभापाएँ होती हैं), पर्याय-कोश, विलोम-कोश, अन्तर्कथा-कोश, कथा-कोश, नाम-कोश आदि अनेक भेद हो सकते हैं। सच पूछा जाय तो सवसे अधिक प्रकार के कोश एकभापिक ही होते हैं।

प्रविष्टियों की दृष्टि से एकभापिक कोश की कुछ विशेपताएँ द्विभापिक कोशों से अलग होती हैं। इस सम्वन्ध में सवसे वड़ी वात तो यह है कि द्विभापिक कोशों में वे सभी प्रविष्टियाँ कभी नहीं ली जा सकतीं, जिनकी आवश्यकता एकभाषिक कोश में पड़ती है। इसका कारण यह है कि एकभापिक कोश को तो पूरी भापा का प्रतिनिधित्व करना पड़ता है, किन्तु द्विभापिक कोश में केवल उन्हीं शब्दों को लेना पर्याप्त होता है, जिनकी कोश के लक्ष्य-भापा (अर्थात् जिसमें अर्थ दिए गए हों) के भापी को सीखने में या अनुवाद करने आदि में आवश्यकता पड़ती है। एक खास स्तर का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर तो वह व्यक्ति भी प्राय: एकभापिक कोश का ही प्रयोग करने लगता है। एक उदाहरण लें। अंग्रेज़ी का 10वीं-12वीं कक्षा तक का ज्ञान प्राप्त करने के लिए या अनुवाद के लिए दो-तीन स्तर के छोटे-वड़े अंग्रेज़ी-हिन्दी कोशों की आवश्यकता पड़ सकती है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति प्राचीन या मध्यकालीन अंग्रेज़ी पढ़ने-समझने योग्य हो जाए और उसे पढ़ना या समझना चाहे तो उसे अंग्रेज़ी के उस या उन कालों की अंग्रेज़ी-अंग्रेज़ी कोशों की ज़रूरत होगी, न कि अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश की। ऐसे ही ऐतिहासिक दृष्टि से अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग या उनका अर्थ-विकास जानने के इच्छार्थी के लिए वृहद् आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी या इस प्रकार का कोई कोश पर्याप्त होगा, उसे इन जानकारियों के लिए किसी अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश की आवश्यकता न होगी। यहाँ कुछ वातें प्रविष्टि और उसी के माध्यम से अर्थ के सम्वन्ध में की गई। निष्कर्पत: (क) द्विभापिक कोश सामान्यत: वर्णनात्मक (एककालिक) होता है, किन्तु एकभापिक कोश वर्णनात्मक तथा ऐतिहासिक दोनों प्रकार का होता है।

(ख) बड़े-से-बड़े द्विभाषिक कोश में प्रविष्टियों की अपनी सीमाएँ होती हैं, जबकि एकभाषिक कोश में इसकी कोई भी सीमा नहीं होती। हाँ, मृत भाषाओं के द्विभाषिक कोश अपवाद हैं। इस प्रकार के ग्रीक-अंग्रेजी, ग्रीक-रूसी कोश निकल चुके हैं जो अपने गुणों तथा विस्तार में एकभाषिक कोश-जैसे हैं। पूना से प्रकाशित हो रहा संस्कृत-अंग्रेजी कोश भी इसी प्रकार का होगा, जिसमें संस्कृत के सभी शब्द होंगे तथा उनके अर्थ भी ऐतिहासिक क्रम में होंगे। (ग) मुहावरे, लोकोक्तियाँ, शब्द-बंध आदि भी एकभाषिक कोश में आवश्यकतानुसार अधिकाधिक दिए जा सकते हैं, किन्तु द्विभाषिक कोश में उन्हें देने की एक सीमा होती है। उससे अधिक देना अनावश्यक होता है। (घ) द्विभाषिक कोश में प्रायः मुख्यार्थ (अभिधार्थ, वाच्यार्थ), लक्ष्यार्थ (extended meaning), व्याकरणार्थ, शैलीयार्थ तथा क्षेत्रीयार्थ ही दिए जाते हैं, व्यंजनार्थ (महल = ऐश्वर्य में रहने वाले लोग : महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है), व्यंग्यार्थ (बुद्धिमान = मूर्ख : तुम बड़े बुद्धिमान हो, बना-बनाया काम बिगाड़ आए), रचनार्थ, बलार्थ प्रायः नहीं के बराबर, किन्तु एक-भाषिक कोश इन सभी अर्थों को भी यथासाध्य समेटने का यत्न करता है। यही नहीं, सभी अर्थों को एकभाषिक कोश काफ़ी विस्तार में लेकर कभी-कभी संद-र्भार्थ भी देता है। संदर्भार्थ से मेरा आशय है : बड़ा = (1) लंबा (बड़ा बाँस); (2) लंबा-चौड़ा (बड़ा खेत); (3) लंबा-चौड़ा-ऊँचा (बड़ा मकान) आदि।

अप्रचलित तथा अत्यल्पप्रचलित शब्दों को द्विभाषिक कोशों में देने की आवश्यकता नहीं, किन्तु एकभाषिक कोश के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

हर शब्द के सभी क्षेत्रीय अर्थ एकभाषिक कोश देता है, किन्तु द्विभाषिक कोश प्रायः केवल मानक अर्थ।

जहाँ तक उच्चारण का प्रश्न है, एकभाषिक कोश में ऐसे शब्दों के उच्चारण देकर भी काम चलाया जा सकता है जिनका उच्चारण सामान्य से कुछ अलग विशेषता लिए हुए हो, किन्तु द्विभाषिक कोश में अधिकाधिक शब्दों का उच्चारण देना चाहिए (बलाघात और अक्षर-विभाजन तथा तान-प्रधान भाषाओं में तान आदि के साथ)। दूसरी ओर, द्विभाषिक कोश में मात्र मानक उच्चारण देना चाहिए किन्तु एकभाषिक कोश में क्षेत्रीय उच्चारण, क्षेत्रीय बलाघात तथा क्षेत्रीय अक्षर-विभाजन आदि भी। जैसे छिप-क-ली, छि-पक-ली, आम-द-नी, आ-मद-नी आदि।

जहाँ तक व्युत्पत्तियों का प्रश्न है यों तो अपवादतः कुछ द्विभाषिक कोशों में भी उन्हें देखा जा सकता है, किन्तु सामान्यतः व्युत्पत्ति एकभाषिक कोशों में ही दी जाती हैं, द्विभाषिक में नहीं।

जहाँ तक प्रयोगों का प्रश्न है एकभाषिक कोश में सामान्य प्रयोग देने की बहुत आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उस कोश का प्रयोक्ता सामान्य प्रयोगों से खूब परिचित होता है, किन्तु द्विभाषिक कोशों में ऐसे सभी प्रयोग अवश्य दिए जाने चाहिए, जिनकी किसी भी दृष्टि से कोश के प्रयोक्ता को आवश्यकता हो। कहना न होगा कि द्विभाषिक कोश के सामान्य प्रयोक्ता का स्रोत भाषा का ज्ञान, एकभाषिक कोश के सामान्य प्रयोक्ता के उस भाषा के ज्ञान की अपेक्षा बहुत कम होता है।

एकभाषिक कोशों में एक शब्द से बनने वाले शब्दों तथा रूपों को हमेशा देने की आवश्यकता नहीं, किन्तु द्विभाषिक कोशों में, अनियमित रूपों तथा शब्दों को दे देना अच्छा होता है।

आकार की दृष्टि से द्विभाषिक कोश तो प्रायः दो-तीन प्रकार के ही होते हैं, किन्तु एकभाषिक कोश अनेक प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी की 'आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी' के जेबी संस्करण तथा बहुखंडीय संस्करण के बीच कई आकार के संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

समवेततः द्विभाषिक कोश प्रविष्टि, अर्थ तथा उद्धरण आदि की दृष्टि से बड़ा से बड़ा बनाया जा सकता है, किन्तु द्विभाषिक कोश की इन सभी दृष्टियों से सीमाएँ होती हैं।

इस प्रकार ये थीं एकभाषिक कोश की कुछ मुख्य विशेषताएँ, जिन्हें प्रायः द्विभाषिक कोश की तुलना में देखने का यत्न किया गया।

एकभाषिक कोश के निर्माण के लिए सामग्री-संकलन, प्रविष्टि-चयन, प्रविष्टि का मुख्य और गौण आदि में विभाजन, वर्तनी का निर्धारण, व्याकरण, उच्चारण, अर्थ और उसका क्रमण, उद्धरण देना या न देना आदि बातों पर पीछे कोश-निर्माण के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है। सच पूछा जाय तो पिछले अध्याय में जो भी बातें कोश-निर्माण के विषय में दी गई हैं, वे, यदि अन्यथा संकेतित नहीं हैं, तो एकभाषिक (समभाषिक) कोश पर ही सर्वाधिक लागू होती हैं।

## पुनश्च

जिस भाषा का क्षेत्र जितना बड़ा हो, उसका एकभाषिक कोश बनाना उतना ही कठिन होता है। इसके कई कारण हैं : एक ही प्रविष्टि के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। जैसे कीरी (हरियाणा में 'चींटी,' अवधी-व्रज आदि में 'कीड़ी'); बाल खींचना (हमीरपुर में 'बाल सँवारना,' अन्यत्र सामान्य अर्थ); मौसा (अवधी-भोजपुरी आदि में माँ की बहिन का पति, किन्तु आगरा, मेरठ आदि में भाई का ससुर आदि भी); चलता-पुरजा (पूर्वी क्षेत्र में अच्छे अर्थ में, पश्चिमी क्षेत्र में कुछ बुरा अर्थ); छोह (भोजपुरी क्षेत्र में स्नेह, प्रेम; किन्तु हरियाणा में 'गुस्सा')। इसके लिए एकभाषिक कोशकार को हर क्षेत्र के एक-एक व्यक्ति की समिति बना लेनी चाहिए, अन्यथा अशुद्धि होने या कोई अर्थ छूट जाने की पूरी संभावना रहती है। साथ ही भाषा के मानक रूप में या किसी एक क्षेत्र में, विशिष्ट अर्थों में जो शब्द आदि प्रचलित होते हैं, आवश्यक नहीं कि सभी क्षेत्रों में वे ही हों। उदाहरण के लिए फट्टा (दिल्ली आदि में), बोरी (पूरब में), या 'बहुत होना' के लिए, बुंदेली में 'गठरियों होना' तो भोजपुरी में 'अलमगंज होना' आदि।

यह भी हो सकता है कि किसी एक क्षेत्र में एक अर्थ में कोई शब्द मिले, किन्तु दूसरे क्षेत्र में कोई एक शब्द हो ही नहीं। उदाहरण के लिए, भोजपुरी 'मकुनी' के लिए व्रज में कोई भी शब्द नहीं है तो व्रज 'भोर' के लिए भोजपुरी में शब्द नहीं है, और मानक हिन्दी में दोनों ही के लिए शब्द नहीं हैं।

# 5. द्विभाषिक कोश

जैसाकि नाम से स्पष्ट है, द्विभाषिक या द्विभाषी-कोश दो भाषाओं का होता है, जिसमें पहली भाषा, अर्थात् स्रोत भाषा की कोशीय इकाइयों की, दूसरी, अर्थात् लक्ष्य-भाषा में समानार्थी इकाइयाँ दी जाती हैं। दूसरे शब्दों में, इसमें प्रविष्टि स्रोत भाषा की होती है तथा उसकी समानार्थी इकाइयाँ लक्ष्य-भाषा की। जैसे हिन्दी-अंग्रेज़ी, अंग्रेज़ी-हिन्दी या हिन्दी-तमिल आदि।

## लिपि और प्रविष्टि-क्रम

द्विभाषिक कोशों में प्रविष्टियाँ स्रोत भाषा की होती हैं, अतः उनमें प्रायः स्रोत भाषा की लिपि का ही प्रयोग होता है। जैसे हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश में नागरी (हिन्दी) लिपि का, तो अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में रोमन (अंग्रेज़ी) लिपि का। इसीलिए प्रविष्टियों का क्रम भी स्रोत भाषा में प्रयुक्त वर्णमाला के अनुसार होता है। अर्थात् हिन्दी-अंग्रेज़ी में हिन्दी (नागरी) की वर्णमाला के अनुसार, तो अंग्रेज़ी-हिन्दी में अंग्रेज़ी (रोमन) वर्णमाला के अनुसार।

कभी-कभी लक्ष्य-भाषा की वर्णमाला का प्रयोग भी स्रोत भाषा की प्रविष्टियों के लिए किया जाता है। यह इस उद्देश्य से होता है कि हो सकता है कि लक्ष्य-भाषा-भाषी या लक्ष्य-भाषा में गति रखने वाले को स्रोत भाषा की लिपि में दी गई प्रविष्टियों को खोजने में परेशानी हो। कभी-कभी प्रेस की सुविधा के लिए ऐसा किया जाता है। हो सकता है कि लक्ष्य-भाषा के देश में या प्रेस में स्रोत भाषा में छपाई की अच्छी व्यवस्था न हो। इन्हीं कारणों से 19वीं सदी के कई हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी द्विभाषी कोशों में हिन्दुस्तानी (हिन्दी-उर्दू) की प्रविष्टियाँ अंग्रेज़ी (रोमन) लिपि में दी गई हैं, और इसीलिए ऐसे कोशों में इन प्रविष्टियों का क्रम भी अंग्रेज़ी (रोमन) का ही है।

सुविधानुसार कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन प्रविष्टियों के लेखन में स्रोत भाषा तथा लक्ष्य-भाषा इन दोनों की ही लिपियों का प्रयोग न करके किसी तीसरी भाषा की लिपि का प्रयोग किया जाता है। तब प्रायः उस तीसरी भाषा की लिपि का प्रयोग प्रविष्टि (स्रोत भाषा) और उसके समानार्थी (लक्ष्य-भाषा) दोनों ही के लिए किया जाता है, और तब जैसाकि स्वाभाविक है उसी भाषा की लिपि के अनुसार प्रविष्टि-क्रम भी होता है। मुख्यतः ऐसा तब किया जाता है जब स्रोत तथा लक्ष्य-भाषा की तुलना में उस तीसरी भाषा का अधिक प्रचार हो। उदाहरण के लिए, 19वीं सदी के एक हिन्दी-तमिल कोश में प्रविष्टि

और समानार्थी शब्द दोनों अंग्रेज़ी में हैं। ऐसे कोशों में प्राय: शब्द के लिए शब्द होते हैं, व्याख्या नहीं। द्विभाषिकप ारिभाषिक कोशों में यह पद्धति प्राय: प्रयुक्त होती है।

## कोशीय इकाई

पीछे कोशीय इकाई का प्रयोग बार-बार किया गया है। कोशीय इकाई में मुख्यत: शब्द तथा अक्षर (जिसे A, B या अ, आ, क, ख आदि) आते हैं, किन्तु साथ ही शब्द के साथ उससे संबद्ध शब्दबंध, समस्त शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा विशेष-प्रयोग भी आते हैं। कुछ कोशों में उपसर्ग, प्रत्यय, तथा मध्य प्रत्यय (infix) भी होते हैं, अत: ये भी कोशीय इकाई हैं। यहाँ तथा आगे कोशीय इकाई का प्रयोग इन सभी के लिए किया गया है।

## उच्चारण, व्याकरण तथा व्युत्पत्ति

द्विभाषिक कोश में प्राय: उच्चारण भी दिया जाता है। यह स्रोत भाषा की लिपि अथवा लक्ष्य भाषा की लिपि, किसी में दिया जा सकता है। यों लक्ष्य भाषा की लिपि में देना ही अधिक अच्छा होता है।

व्याकरण, वाग्भाग (parts of speech) आदि होते हैं। यों आधुनिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से कुछ और चीजें भी दी जा सकती हैं। जैसे, संज्ञा में गणनीय-अगणनीय आदि। पीछे कोश-निर्माण के अन्तर्गत इस पर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

व्युत्पत्ति देना द्विभाषिक कोश के लिए कोई आवश्यक नहीं है, किन्तु कुछ द्विभाषिक कोशों में व्युत्पत्ति भी दी गई है, जैसे सम्मेलन के अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में।

## प्रति-अभिव्यक्ति

स्रोत भाषा की भाषिक इकाइयों की लक्ष्य-भाषा में समानार्थक भाषिक अभिव्यक्ति के लिए यहाँ 'प्रति-अभिव्यक्ति' शब्द-बन्ध का प्रयोग किया जा रहा है। द्विभाषिक कोश की मुख्य समस्या प्रति-अभिव्यक्ति देना ही है।

स्रोत भाषा की काफ़ी भाषिक इकाइयों के लिए लक्ष्य-भाषा में प्रति-अभिव्यक्तियाँ मिल जाती हैं, किन्तु ऐसी भाषिक इकाइयाँ भी काफ़ी मिलती हैं, जिनकी प्रति-अभिव्यक्ति लक्ष्य भाषा में नहीं मिलती। ऐसा भाषिक इकाइयों में क्षेत्र-विशेष के जानवर या वनस्पतियों के नाम, सांस्कृतिक शब्द, व्याकरण के प्रकार्य शब्द, मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ आदि मुख्य रूप से आते हैं। कुछ गहराई से विचार करने में यहाँ मैं केवल शब्द तक अपने को सीमित रख रहा हूँ।

द्विभाषिक कोशों के निर्माण में सबसे बड़ी समस्या तभी आती है जब स्रोत भाषा के किसी शब्द के लिए लक्ष्य-भाषा में कोई शब्द न मिले। ऐसी स्थिति में प्राय: कोशकार निम्नांकित पग उठाते रहे हैं : (क) कुछ कोशकार उसकी

व्याख्या कर देते हैं। (ख) कुछ कोशकार व्याख्या के साथ-साथ मूल शब्द को ही लक्ष्य-भाषा की लिपि में दे देते हैं। (ग) कुछ कोशकार व्याख्या के साथ-साथ, लक्ष्य-भाषा में नया शब्द बनाकर देते हैं। (घ) कुछ कोशकार केवल मूल शब्द देते हैं। (ङ) कुछ अन्य कोशकार केवल स्वनिर्मित शब्द देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या किया जाय ?

(अ) इस प्रसंग में पहली बात तो यह है कि स्रोत भाषा के ऐसे शब्दों के लिए, जिनके ठीक पर्याय लक्ष्य-भाषा में न हों, व्याख्या अवश्य देनी चाहिए। कुछ लोगों का यह कहना है कि व्याख्या एकभाषिक कोश की चीज़ है, द्विभाषिक की नहीं। मैं इस बात से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। स्रोत भाषा का मूल शब्द या नवनिर्मित शब्द देने मात्र से कोशकार के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो सकती, क्योंकि मूल शब्द या नवनिर्मित शब्द से कोश का प्रयोक्ता उस शब्द के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सकता। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी का एक शब्द है 'कैमल' (camel)। ऊँट के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार के उपकरण के लिए भी होता है, जो उथले जल में जहाज़ आदि को उठाता है। अब मान लीजिए, किसी अंग्रेज़ी-हिन्दी कोशकार ने इस शब्द के लिए हिन्दी में मात्र 'कैमल' लिख दिया। कहना न होगा, कोश देखने वाला कुछ भी नहीं समझ पाएगा कि यह कैमल कोई रोग है या पौधा या उपकरण या कुछ और। अब्दुल हक़ ने अपने 'अंग्रेज़ी-उर्दू कोश' में इसके लिए 'शुतरा' शब्द बनाया है। स्पष्ट है जैसे केवल 'कैमल' देने से नहीं काम चलता, वैसे ही कोई अंग्रेज़ी-उर्दू कोशकार यदि केवल 'शुतरा' दे दे, तो भी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। मेरे विचार में ऐसी स्थिति में चार बातें की जानी चाहिए :

(i) व्याख्या तो अवश्य देनी चाहिए। यह व्याख्या प्रायः वैसी ही होगी, जैसी एकभाषिक कोश में होती है। अन्तर केवल यह होगा कि एकभाषिक कोश में प्रविष्टि और व्याख्या एक ही भाषा में होगी, किन्तु द्विभाषिक कोश में व्याख्या प्रविष्टि की भाषा से अलग लक्ष्य-भाषा में होगी।

(ii) किन्तु केवल व्याख्या पर्याप्त न होगी। अनुवादक अपने अनुवाद में व्याख्या का प्रयोग नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में यदि स्रोत भाषा के मूल शब्द के लक्ष्य-भाषा में चल जाने की थोड़ी भी संभावना हो तो उसे ही एक शब्द के रूप में ले लेना चाहिए। इस प्रसंग में दो बातें उल्लेख्य हैं : (1) यदि मूल शब्द अपने मूल रूप (ध्वनि की दृष्टि से) लक्ष्य-भाषा में चल सके तो उसे ज्यों-का-त्यों रख लेना चाहिए; (2) किन्तु, यदि वह शब्द लक्ष्य-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के बहुत अनुरूप न हो तो, लक्ष्य-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप उसका सरलीकरण किया जा सकता है। अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू के प्रसंग में बैंक, टैंक, निब, बस, कार, पेन आदि यदि पहले के उदाहरण हैं तो 'अकादमी' दूसरे का।

(iii) यदि स्रोत भाषा के शब्द के लक्ष्य-भाषा में चलने की बिल्कुल संभावना न हो तो नया शब्द बनाना अनिवार्यतः आवश्यक हो जाता है, क्योंकि मात्र व्याख्या से अनुवादक का काम नहीं चल सकता। कोशकार को सभी दृष्टियों

से सोच-विचार करके यह नव-निर्माण का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि ऐसे-वैसे शब्द बना लेना जितना आसान है, सभी दृष्टियों से उपयुक्त शब्द बनाना उतना ही कठिन है। नवनिर्मित शब्द में निम्नांकित पाँच गुण होने चाहिए : (1) शब्द अपेक्षाकृत छोटा हो। वह शब्द लगे। इतना बड़ा न हो कि शब्द न लगकर 'शब्दबंध' या 'व्याख्या' लगे। (2) उसका अर्थ स्रोत भाषा के शब्द के अर्थ के अधिकाधिक निकट हो। (3) लक्ष्य-भाषा में प्रयुक्त होने की उसमें पूरी क्षमता हो। (4) किसी अन्य मिलते-जुलते शब्द से उसमें भ्रम की गुंजाइश न हो। (5) शब्द ऐसा हो कि आवश्यकता पड़ने पर उससे नये शब्दों का निर्माण हो सके।

(iv) इस वर्ग का स्रोत शब्द यदि संकल्पनात्मक न होकर ऐसा हो जिसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सके तो उसका चित्र देना बहुत उपयोगी होता है। कहना न होगा कि व्याख्या चाहे कितनी भी अच्छी और विस्तृत की जाए वह चित्र का स्थान नहीं ले सकती। मान लीजिए, ऊपर के 'कैमल' शब्द की ही बात लें। उसका चित्र उसकी व्याख्या का बहुत अच्छा पूरक हो सकता है। ऐसे ही मान लें, किसी हिन्दी-रूसी कोश में 'खड़ाऊ' शब्द की प्रविष्टि है। उसकी व्याख्या इसका पूरा अर्थ पाठक तक नहीं पहुँचा सकती। ऐसी स्थिति में 'खड़ाऊ' का चित्र आवश्यक हो जाता है।

सामान्य दृष्टि से ऊपर कुछ मुख्य बातें कही गईं। अब कुछ विशेष बातें और समस्याएँ संक्षेप में अलग-अलग ली जा रही हैं।

## पर्याय की खोज

(क) सबसे पहले लक्ष्य-भाषा के मानक रूप में स्रोत भाषा के शब्द के पर्याय की खोज होनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि शब्द लक्ष्य-भाषा में होता है, किन्तु जल्दी में ध्यान न जाने के कारण कोशकार उसे नहीं दे पाता और नया शब्द गढ़ डालता है। ऐसा करने के पूर्व अच्छी तरह खोज होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए, 'कमरे के बीच में *partition*' जैसे प्रयोग में partition के लिए हिन्दी में कोई शब्द नहीं है। कनौजी में इसे 'बेड़ा' कहते हैं, अतः 'अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश' में partition के लिए 'बेड़ा' दिया जा सकता है।

(ख) स्रोत भाषा के अमानक रूप या उसकी बोलियों में भी शब्द की संभावना हो सकती है। उदाहरण के लिए, किसी अंग्रेज़ी शब्द का हिन्दी में समानार्थी न मिलने पर उसके क्षेत्रीय रूपों तथा उसकी ब्रज, अवधी, भोजपुरी, हरियानी आदि बीसियों बोलियों से खोज होनी चाहिए। बहुत संभव है कि शब्द उनमें मिल जाए। इसके लिए इन बोलियों के कोश उपयोगी हो सकते हैं।

(ग) भारत जैसे देश में जहाँ हिन्दी के ही भाषा-परिवार की पंजाबी, गुजराती, बँगला आदि कई भाषाएँ बोली जाती हैं, यह अच्छा ही होगा कि किसी अंग्रेज़ी शब्द के लिए यदि हिन्दी में शब्द न हो तो नया शब्द गढ़ने के पूर्व भारोपीय परिवार की वर्तमान भारतीय भाषाओं से शब्द खोजा जाए। इससे दो लाभ

होंगे : (1) एक तो यह कि ये शब्द सभी दृष्टियों से मूल अंग्रेजी शब्द की तुलना में हिन्दी के अनुकूल होंगे; (2) दूसरे यह कि ऐसे शब्दों को ग्रहण करने से हिन्दी भारत की अन्य वर्तमान भारोपीय भाषाओं के निकट हो सकती है। पारिभाषिक शब्दावली के रूप में कई शब्द अन्य भाषाओं से लिए भी गए हैं।

(घ) लक्ष्य-भाषा अपने प्राचीन साहित्य से भी शब्दों की खोज कर सकती है। जैसे, हिन्दी अपने आदिकालीन, भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन साहित्य से।

(ङ) उपर्युक्त स्रोतों से न मिलने पर लक्ष्य-भाषा अपनी स्रोत जननी-भाषा से भी शब्द खोज सकती है। जैसे यूरोपीय भाषाएँ ग्रीक-लैटिन से, अरब देशों की भाषाएँ प्राचीन अरबी से या हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ संस्कृत से। उर्दू ऐसी स्थिति में प्रायः अरबी-फ़ारसी से शब्द लेती है।

(च) भारत में भारोपीयेतर परिवार की तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। कोई भी भाषा अपने परिवार से इतर परिवार की (अपने देश की) भाषाओं से भी शब्द ले सकती है, यदि वह सभी दृष्टियों से उपयुक्त है। जैसे, हिन्दी भाषा तमिल या तेलुगु आदि से या तमिल भाषा हिन्दी या बँगला आदि से।

यदि इन छहों स्रोतों में से किसी में भी स्रोत भाषा के शब्द का प्रतिशब्द न मिले, तभी कोशकार स्रोत भाषा के मूल शब्द लेने या नया शब्द बनाने की सोच सकता है।

## स्रोत भाषा से शब्द-ग्रहण

इस दृष्टि से निम्नांकित बातें संकेत्य हैं :

(क) यदि वह शब्द लक्ष्य-भाषा में प्रचलित हो तो उसे बिना झिझक ले लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में कई हजार अंग्रेजी शब्द प्रचलित हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें लेने में हमें किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए। इस प्रसंग में मैं डॉ० रघुवीर से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ जो उन प्रचलित शब्दों का पूर्णतया बहिष्कार करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने फाउंटेनपेन के लिए 'मसीपथ' जैसे अनेकानेक शब्दों का निर्माण किया।

(ख) शब्द यदि बहुत प्रचलित न हो, तो, उसे अपने मूल रूप में (ध्वनि की दृष्टि से), केवल तभी लेना चाहिए, जब वह लक्ष्य-भाषा में विजातीय न लगे, प्रचलन के योग्य हो।

(ग) यदि विजातीय लगने की संभावना हो तो लक्ष्य-भाषा की ध्वनि-व्यवस्था की दृष्टि से उसका सरलीकरण किया जा सकता है। हिन्दी में 'अकादमी' आदि शब्द इसी प्रकार सरलीकृत करके लिए गए हैं। यदि सरलीकरण से वह शब्द लक्ष्य-भाषा में कुछ सार्थक हो सके तो और भी अच्छा हो। उदाहरण के लिए, हिन्दी में गृहीत 'कामदी' (comedy), 'अनुतान' (intonation) और 'त्रासदी' (tragedy) शब्द इसी प्रकार के हैं।

## कुछ अन्य समस्याएँ

(1) भाषाओं में कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनके न तो पूरे-के-पूरे समानार्थी शब्द दूसरी भाषा में मिलते हैं, न उन्हें ज्यों-के-त्यों ग्रहण किया जा सकता है, और न उनके लिए कोई शब्द बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अनेक भाषाओं में इस प्रकार के व्याकरणिक शब्द होते हैं। हिन्दी के 'ने' की ही बात लें। मान लें, कोई हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश बना रहा है। कोशकार 'ने' प्रविष्टि के लिए लक्ष्य-भाषा में अंग्रेज़ी में क्या लिखे। न तो अंग्रेज़ी में इसका समानार्थी है, न अंग्रेज़ी इसे ले सकती है, और न इसके लिए कोई नया शब्द बनाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में उदाहरणों द्वारा इसके प्रयोग को ही स्पष्ट किया जा सकता है। हाँ, उदाहरणों का अर्थ अवश्य लक्ष्य-भाषा में दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के शब्दों में कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जिनका एक अर्थ में तो समानार्थी मिलता है किन्तु दूसरे में नहीं। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी टू (to) लें। बुल्के ने अपने अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में इसके लिए हिन्दी में को, की ओर, की दिशा में, के पास, के लिए, के अनुसार, तक, आदि दिए हैं। अर्थात् 'टू' के बहुत-से प्रयोगों को इन शब्दों द्वारा हिन्दी में रूपान्तरित किया जा सकता है। किन्तु इसके अतिरिक्त 'टू' का एक ऐसा भी प्रयोग मिलता है जिसकी ओर बुल्के का ध्यान कदाचित् नहीं गया है—प्रयोग है—He wants to go., They want to come. बाहरी का ध्यान भी इस ओर नहीं गया है। इसे हिन्दी में -ना से व्यक्त करते हैं: To go=जाना, To come=आना। किन्तु 'ना' को उसका ठीक समानार्थी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि 'तुम कल मेरे घर आना' में 'ना' अंग्रेज़ी 'टू' के स्थान पर नहीं आया है। ऐसी स्थिति में उदाहरण देते हुए 'टू' को समझाया ही जा सकता है तथा 'ना' को सीमित प्रयोग में उसका समानार्थी कहा जा सकता है। ऐसे ही हिन्दी का 'तो' है। 'तो मैं चला' जैसे प्रयोग में उसका पर्याय अंग्रेज़ी आदि में पाना प्रायः असंभव-सा है। निष्कर्षतः इस प्रकार के शब्दों की मात्र सोदाहरण प्रयोग-व्याख्या, अथवा संभव हो तो प्रतिशब्द और प्रयोग-व्याख्या दी जानी चाहिए।

मान लें, कोई व्यक्ति किसी भाषाविषयक ग्रंथ का अनुवाद कर रहा है। उसमें इस शब्द को ज्यों-का-त्यों जैसे अंग्रेज़ी पुस्तक में ne या हिन्दी में 'टू' लिखना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कोई और चारा नहीं है।

(2) द्विभाषिक कोशों में लक्ष्य भाषा का कोई ऐसा शब्द नहीं देना चाहिए जिसके एकाधिक अर्थ हों। ऐसा शब्द देने पर भ्रम की संभावना रहती है। किसी छोटे अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में मुझे beat के लिए 'टिकटिक' शब्द मिला था। हिन्दी में 'टिकटिक' घोड़े को चलाने की आवाज को भी कहते हैं तथा घड़ी की आवाज को भी। कोशकार यदि 'टिकटिक' के साथ कोष्ठक में 'घड़ी की' दे देता तो इस भ्रम की गुंजाइश न होती। अंग्रेज़ी bear का अर्थ केवल 'धारण करना' पर्याप्त नहीं, इसे होना चाहिए 'धारण करना' (नाम, उपाधि आदि)। ऐसे ही किसी शब्द का प्रतिशब्द यदि 'आला' दिया जा रहा है तो कोष्ठक में (दीवाल का) लिख देना चाहिए, क्योंकि 'आला' 'उपकरण' को भी कहते हैं। यदि दो

शब्द अभिव्यक्तियाँ देनी हों और उनमें एक 'द्वि' अथवा 'वहु'-अर्थी हो तो पहले एकार्थी को देकर फिर दूसरे को दिया जा सकता है, और वैसी स्थिति में विना कोष्ठक के भी काम चल जाएगा, क्योंकि पहले शब्द से दूसरे के अर्थ का निश्चयन हो जाएगा। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी punish का अर्थ कोशकार 'खवर लेना' तथा 'दंड देना' देना चाहता है तो उसे क्रम वदलकर 'दंड देना', 'खवर लेना', देना चाहिए। ऐसे ही अंग्रेज़ी nich के लिए 'ताक़', 'आला' देना चाहिए, न कि 'आला,' 'ताक़'।

(3) लक्ष्य-भापा की प्रकृति का ध्यान रखते हुए समानार्थी अभिव्यक्ति देनी चाहिए। उदाहरण के लिए, जो भापाएँ संयोगात्मक हैं, उनमें केवल संयोगात्मक रूप ही दिए जाएँगे, किन्तु इसके विपरीत वियोगात्मक भापाएं वियोगात्मक रूपों का भी खूव प्रयोग करती हैं, अतः वे रूप भी द्विभापिक कोश में देने चाहिए। उदाहरण के लिए, हिन्दी-उर्दू वियोगात्मक भापाएँ हैं, अतः जहाँ ये लक्ष्य-भापा हों, वियोगात्मक रूप देने में हिचक नहीं होनी चाहिए। जैसे laugh के लिए 'हँसना' (संयोगात्मक रूप), किन्तु bet के लिए 'वाज़ी लगाना' (वियोगात्मक रूप)।

(4) शब्द के मूल को दृष्टि में रखने के कारण कभी-कभी कोशकार उसके ऐसे अर्थ भी दे जाता है जो वस्तुतः उसका होते नहीं। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी का शब्द beslaver लें। इसका अर्थ वुल्के ने 'लार टपकना' तथा वाहरी ने 'थूक या लार से आच्छादित करना' दिया है, किन्तु वास्तविक रूप में अंग्रेज़ी में इसका अर्थ मात्र 'खुशामद या चापलूसी करना' है। इस अर्थ-भ्रम का कारण है slaver का 'थूक' या 'लार' अर्थ।

(5) जो भापा भौगोलिक दृष्टि से जितने अधिक विस्तृत क्षेत्र में वोली जाती हो, उसमें एक ही शब्द के क्षेत्रीय अर्थभेद की संभावना वहुत अधिक होती है। द्विभापी कोशकार को इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। अंग्रेज़ी का एक शब्द है beseige। वाहरी तथा सम्मेलन ने इसके लिए एक शब्द 'छेकना' दिया है। भोजपुरी क्षेत्र का हिन्दी भापी इसका अर्थ 'सुरक्षित करना' (वर छेंकना), 'रोकना', 'मना करना' (मैं वह काम करने जा रहा था कि उन्होंने छेंक दिया। आदि लेगा, किन्तु आगरे के आस-पास का व्रजभापी इसका अर्थ 'वंचित रखना' लेगा। इस तरह के भ्रम से कोश के प्रयोक्ता को वचाने के लिए कोशकार को ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो ऐसे न हों।

(6) यदि लक्ष्य-भापा का शब्द वहुत सुपरिचित हो तव तो विना व्याख्या के भी काम चल सकता है, किन्तु यदि अल्पपरिचित या अपरिचित है तो व्याख्या अनिवार्यतः आवश्यक है। अंग्रेज़ी bed का एक अर्थ वाहरी तथा वुल्के ने 'पुआली' दिया है। प्रश्न यह है कि कोश का प्रयोक्ता इसका क्या अर्थ समझे? ऐसे ही हक़ ने तीन शब्द दिए हैं: विचाली, पुआली, निवारी। इसका वास्तविक अर्थ है 'पशुओं के सोने के लिए विछाया जाने वाला घास-फूस का विस्तर'। स्पष्ट ही विना इस ठीक व्याख्या के पुआली, विचाली, निवारी कोश के प्रयोक्ता को ठीक-ठीक कुछ वताने में असमर्थ हैं।

(7) 'स्पष्टता' किसी भी कोश की, मुख्यत: द्विभाषिक कोश की अनिवार्य आवश्यकता है। कोशकार का ध्यान इस बात पर हर वक़्त होना चाहिए कि कहीं वह कुछ ऐसी बात तो नहीं कह रहा है जो कोश-प्रयोक्ता के लिए स्पष्ट न हो। उदाहरण के लिए, संधि से बने बड़े शब्द भारतीय भाषाओं में खूब प्रयुक्त होते हैं, अतः नये शब्दों के निर्माण में संधियों की सहायता लेना कभी-कभी आवश्यक हो सकता है, किन्तु ऐसा करते समय यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि कहीं अस्पष्टता ता संदिग्धार्थता या द्वि-अर्थता तो नहीं आ रही है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी का एक शब्द है bedswerver जिसके लिए बाहरी ने हिन्दी शब्द 'शय्यासंयमी' दिया है। इसे क्या समझा जाय ? 'शय्या-असंयमी' अथवा 'शय्या-संयमी' ? कहना न होगा कि इसके ये दोनों विश्लेषण संभव हैं, किन्तु दोनों अर्थ, एक दूसरे के पूर्णत: विरोधी हैं। डॉ० बाहरी को 'शय्यासंयमी' न देकर 'शय्या-असंयमी देना चाहिए था, क्योंकि यहाँ यही अर्थ है, 'शय्या-संयमी' नहीं। इस प्रकार यह बात तो बहुत छोटी है, किन्तु कोशकार के चूकने की नहीं है। ग़नीमत है कि इसके बाद 'व्यभिचारी' शब्द दे देने से उपर्युक्त परेशानी का परिहार हो गया है, किन्तु यदि संधिज रूप देना ही था तो पहले 'व्यभिचारी' देकर फिर 'शय्यासंयमी' देना चाहिए था। तब ठीक अर्थ तक पहुंचने में कठिनाई न होती। कहीं-कहीं तो संधिज और संधि-रहित रूपों में अर्थ का अन्तर भी होता है। इसका ध्यान रखना चाहिए। जैसे सहानुभूति—सह-अनुभूति।

(8) स्रोत भाषा के किसी शब्द का सामान्य अर्थ देखकर लक्ष्य-भाषा में उसका प्रतिशब्द देकर हमें अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ लेनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी poor के लिए मात्र 'ग़रीब' या उसके समानार्थी शब्द पर्याप्त नहीं होंगे, क्योंकि जब हम उसके विभिन्न प्रयोगों की ओर ध्यान देते हैं तो 'बेचारा' अर्थ में (poor chap) भी उसका प्रयोग खूब मिलता है, अतः बिना 'बेचारा' दिए poor शब्द के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। ऐसे ही angle केवल 'कोण' नहीं है, वह 'दृष्टिकोण' तथा 'दृष्टि' भी है : Why dont you take it from this angle ? ऐसे ही psychology का अर्थ प्राय: लोगों ने केवल 'मनोविज्ञान' दे दिया है, किन्तु प्रयोग मिलते हैं : I can understand his psychology at this juncture. यहाँ psychology मनोविज्ञान' न होकर 'मन:स्थिति' है अथवा 'मानसिक स्थिति' है। ऐसे ही botany केवल 'वनस्पतिविज्ञान' नहीं है। वह 'वनस्पति-जीवन' भी है : I have not studied the botany of this area.

(9) कोशकार यदि पूरी सावधानी न बरते तो द्विभाषिक कोशों में तरह-तरह की अशुद्धियाँ घुस आती हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी का एक शब्द है bon mot। इसका अर्थ है 'अ विटी सेइंङ् 'या 'अ विटी रिमार्क'। किसी ने इसे 'हाज़िरजवाब' दिया है, किन्तु ध्यान देने की बात है, कि bon mot संज्ञा है और 'हाज़िरजवाब' विशेषण। यह 'हाज़िरजवाबी' भी नहीं है। यह 'सटीकोक्ति' है। बुल्के ने इसके लिए 'सुभाषित' भी दिया है, जो मेरे विचार में ठीक नहीं है। एक दूसरा शब्द bunt लें। बुल्के ने तथा सम्मेलन के मानक अंग्रेजी-हिन्दी

कोश में इसे 'गेरुई' कहा है। 'गेरुई' गेहूँ के रोग को कहते हैं, जिसमें प्रभावित भाग गेरू जैसा लाल हो जाता है। 'गेरू' लाल होता है, अतः उसे किसान 'गेरुई' कहते हैं। किन्तु 'बंट' यह नहीं है। उस रोग में पौधे पर 'काली फफूंदी' लग जाती है। इस तरह यह 'लाल रोग' न होकर 'काला रोग' है। बुल्के ने इसी कारण इसे 'कृष्णिका' भी कहा है, किन्तु यह नवनिर्मित शब्द दो दृष्टियों से अनुपयुक्त है। एक तो 'कृष्णिका' अर्थ की दृष्टि से पारदर्शी नहीं है, दूसरे bunt के लिए हमें ऐसा शब्द चाहिए जो किसानों की भाषा के अनुकूल हो। खेती के रोग का इतना तत्सम नाम बहुत अटपटा लगता है। इससे अच्छा तो 'कलमुँहा' के ढाँचे पर इस 'काले फफूंदी वाले रोग' को 'कलफफूंदी' कहा जा सकता है।

(10) द्विभाषिक कोश एकभाषिक कोश की तरह एक बार बनाकर छोड़ देने की चीज़ नहीं है। उसमें यथासमय परिवर्तन-परिवर्धन अपेक्षित है, क्योंकि न स्रोत भाषा अपरिवर्तित रह सकती है, और न लक्ष्य-भाषा। और इसीलिए स्रोत भाषा की प्रविष्टि और उसकी लक्ष्य-भाषा में प्रति-अभिव्यक्ति दोनों में निरन्तर परिवर्तन-परिवर्धन अपेक्षित होता है। हाँ, यदि इन दोनों में कोई भी भाषा दैनिक प्रयोग में नहीं है, जैसे संस्कृत, लैटिन या अवेस्ता तो और बात है।

पुनश्च

(क) वियोगात्मक भाषा से संयोगात्मक भाषा में कोश बन रहा हो तब तो कोई बात नहीं, किन्तु यदि संयोगात्मक या वियोगात्मक भाषा से वियोगात्मक भाषा का कोश बन रहा हो तो एक अजीब तरह की कठिनाई कभी-कभी आती है। इसका कारण यह है कि संयोगात्मक भाषा तो प्रायः एक-दो शब्दों के सहारे अपनी बात कह देती है, किन्तु वियोगात्मक भाषा बहुत-से शब्दों की सहायता लेती है, और अपनी बात को, यदि कोई मुहावरा न हो, तो प्रायः एकाधिक वाक्यों में कहती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी की एक अभिव्यक्ति लें : to take a chance या to take one's chance। अब्दुल हक़ ने इसके लिए 'क़िस्मत आज़माना' तथा डॉ० बाहरी ने 'भाग्य परखना' दिया है। मान लीजिए, मैंने किसी से कहा कि मुझे कल तुम्हारी तरफ़ आना है, तुम्हारे घर भी आऊँगा। उस व्यक्ति ने कहा कि 'भई मैं तो घर पर शायद ही रहूँ।' इस पर मैंने कहा—शायद का मतलब यह कि तुम रह भी सकते हो। I will take a chance या I will take my chance। स्पष्ट ही 'क़िस्मत आज़माना' अथवा 'भाग्य परखना' के आधार पर हिन्दी में इस बात को नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में या तो कहेंगे, 'आ जाऊँगा, होंगे तो ठीक, नहीं तो कोई बात नहीं।' या फिर 'उधर आ ही रहा हूँ तो देख लूँगा, हुए तो ठीक, नहीं तो कोई बात नहीं।' समस्या यह है कि द्विभाषिक कोश में इस प्रकार की अभिव्यक्ति को कैसे दें, क्योंकि विभिन्न सन्दर्भों में इसमें परिवर्तन आएगा—'चला जाऊँगा, मिल गए तो ठीक, नहीं तो न सही,' '(दवा) खा लूँगा, लाभ हो गया तो ठीक, नहीं तो कोई बात नहीं,' 'खरीद लूँगा, काम दे गई तो ठीक, नहीं तो कोई बात नहीं' या 'मिलकर समझाने की कोशिश करूँगा, मान गए तो ठीक, नहीं तो न

सही ।' कहना न होगा कि अनुवादक तो प्रायः इसी प्रकार की अभिव्यक्तियों का प्रयोग करेगा, किन्तु कोश में इन्हें दे पाना प्रायः असंभव-सा है। इसका आशय यह हुआ द्विभाषिक कोश इस प्रकार की स्थितियों में मुख्यतः जहाँ स्रोत भाषा का मुहावरा, लक्ष्य-भाषा में अलग-अलग सन्दर्भों में अनेकानेक अलग-अलग वियोगात्मक अभिव्यक्तियों द्वारा व्यक्त होता हो, लक्ष्य भाषा के साथ न्याय प्रायः कर ही नहीं सकता।

ऐसी स्थिति में उसे कितनी मानसिक पीड़ा होती है, इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी कोशकार ही लगा सकता है। बेचारा कोशकार बड़ी बेचारगी से देखता रह जाता है कि उसके सामने लक्ष्य-भाषा की बड़ी अच्छी अभिव्यक्ति है, किन्तु वह कोश में दे नहीं सकता। जैसे, प्यासे के सामने पानी है किन्तु वह कभी भी उसे पी नहीं सकता।

निष्कर्ष यह निकला कि ऐसी स्थितियों में न तो स्रोत भाषा के साथ न्याय संभव है न लक्ष्य-भाषा के साथ, किन्तु इसमें कोशकार का कोई दोष नहीं। भाषा या भाषाओं की प्रकृति या विरोधी-प्रकृति की यह विडंबना है और कोशकार जानते हुए तथा लाख प्रयत्न करने के बावजूद इस प्रकार की त्रुटि को बर्दाश्त करने के लिए अभिशप्त है।

(ख) यदि किसी शब्द का अर्थ अच्छा-बुरा न होकर तटस्थ हो तो दूसरी भाषा से भी तटस्थ शब्द देना चाहिए, किन्तु यदि शब्द न मिले, और स्रोत शब्द का प्रयोग बुरे और अच्छे दोनों अर्थों में आ सकता हो, तो लक्ष्य-भाषा से अच्छे तथा बुरे अर्थ वाले सभी शब्दों को देना चाहिए ताकि अनुवादक अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्द का चयन कर सके। उदाहरण के लिए, अं० bunch का हिन्दी पर्याय गुट, गिरोह, मंडल, समूह दें या न दें, 'मंडली' अवश्य दें, क्योंकि यह चोरों की भी हो सकती है, और विद्वानों की भी।

(ग) यदि एक शब्द के एकाधिक अर्थ हों तथा लक्ष्य-भाषा में कोई एक शब्द न हो जो सभी अर्थों को समेटे, तो अलग-अलग अर्थों के कई शब्द देना चाहिए, एक नहीं। अंग्रेज़ी canteen के लिए हक़, बाहरी आदि ने तामलोट दिया है, किन्तु वह 'कठलोट' भी है, अतः तामलोट, कठलोट दोनों ही देना उपयुक्त होगा।

(घ) द्विभाषिक कोश में ठीक पर्याय खोजना कठिन होता है। मुख्यतः सांस्कृतिक शब्दों का और भी कठिन। पर कभी-कभी भाषा-विशेष की संस्कृति के समीप होने पर भी शब्द नहीं मिलते। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी का शब्द blase लें। अर्थ है 'भोगतृप्ति से अघाकर जो वीतराग हो गया हो' (dulled to pleasure), अघाकर भोग के प्रति जिसकी रुचि dull हो गई हो, अर्थात् उसके प्रति कोई आकर्षण न हो। स्पष्ट ही भारतीय संस्कृति के बहुत निकट का यह शब्द है, किन्तु आश्चर्य है कि इस अर्थ में हिन्दी-संस्कृत आदि में कोई भी शब्द नहीं है। बुल्के ने 'अतितृप्त' दिया है, किन्तु इसमें अतितृप्ति का भाव नहीं है, अपितु अतितृप्तिजनित वीतरागता या वितृष्णा है। इसे 'भोगवितृष्ण' कहा जा सकता है जो काफ़ी निकट—या कम-से-कम अतितृप्त की तुलना में निकट है।

# 6. कुछ अन्य कोश

## विषयकोश

जैसाकि पीछे कहा जा चुका है, विषयकोश से अर्थ है विभिन्न विषयों के कोश, जैसे भाषाविज्ञान-कोश, अर्थशास्त्रकोश, संगीतकोश आदि। ऐसे कोश दो प्रकार के होते हैं : सामान्य और विश्वकोश। सामान्य विषयकोश में उस विषय से सम्बन्धित मुख्य प्रविष्टियाँ ली जाती हैं, और उनका परिचय अथवा/तथा विवेचन दिया जाता है। उदाहरण के लिए, भोलानाथ तिवारी का 'भाषाविज्ञान कोश'। इसके विपरीत विषय-विशेष के विश्वकोश में उस विषय से संबद्ध सभी संभव प्रविष्टियाँ ली जाती हैं तथा यथावश्यकता उनका विवेचन, विश्लेषण, परिचय आदि देते हैं। उदाहरण के लिए, 'समाजविज्ञान का विश्वकोश' अंग्रेजी में इस प्रकार का सर्वोत्तम सन्दर्भ-ग्रन्थ है। विश्वकोश में हर प्रविष्टि के साथ उससे संबद्ध आधार-सामग्री भी देनी चाहिए, जिससे लेखन में सहायता ली गई हो या विषय की और जानकारी के लिए कोश का प्रयोक्ता जिसका उपयोग कर सकता हो। चित्र, आरेख, अन्योन्य सन्दर्भ, उद्धरण आदि का भी यथास्थान इन कोशों में उपयोग किया जाता है। इन कोशों में व्याकरण तथा उच्चारण आदि वे चीजें प्रायः नहीं दी जाती हैं जो सामान्यतया शब्दकोशों में दी जाती हैं।

## विश्वकोश

विश्वकोश उस सन्दर्भ-ग्रन्थ को कहते हैं जिसमें विश्व के सभी विषयों की सभी प्रविष्टियों को समाहित करते हैं और यथावश्यकता व्याख्या, परिचय, अर्थ, विश्लेषण आदि देते हैं। यों तो बड़े एकभाषिक कोश, या द्विभाषिक कोश बनाना भी एक व्यक्ति का काम नहीं है (वेब्स्टर कोश का जो रूप उपलब्ध है, बहुत बड़े कोशकार-दल का काम है, आक्सफ़ोर्ड कोश की भी यही स्थिति है), किन्तु विश्वकोश तो निश्चित रूप से एक दलीय काम है। विश्वकोश में व्यापकता, सटीकता, यथातथता तथा शुद्धता तभी आ सकती है, जब हर विषय की प्रविष्टियों पर काम, उस विषय के न केवल प्रसिद्ध विद्वान् की देख-रेख में हुआ हो, अपितु उस विषय का पूरा काम विषय से संबद्ध लोगों द्वारा ही किया और कराया गया हो। विश्वकोश में हर प्रविष्टि के साथ उस प्रविष्टि से सम्बन्ध आगे पढ़ने की सामग्री का संक्षिप्त संकेत आवश्यक है ताकि उस विषय की और जानकारी प्राप्त करने वाले के लिए वह कोश प्रदर्शक का काम कर सके।

## परिभापा-कोश
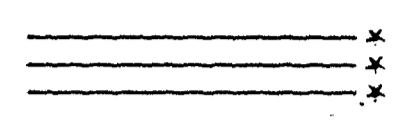
इसमें विभिन्न विपयों के पारिभापिक शव्दों का अर्थ, परिचय तथा उनकी व्याख्या आदि दी जाती हैं। हर विपय का परिभापा-कोश प्रायः अलग-अलग होता है। हिन्दी में मनोविज्ञान, राजनीति आदि के परिभापा-कोश प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें केवल शव्द, शव्दवन्ध तथा पदवन्ध होते हैं, और होती हैं उनकी समानार्थी अभिव्यक्तियाँ। व्याकरण, व्युत्पत्ति, उच्चारण, चित्र, अर्थ, व्याख्या, प्रयोग, उद्धरण आदि प्रायः नहीं होते।

## पारिभापिक कोश

पारिभापिक कोश हमेशा एक से अधिक भापाओं का होता है। इसमें किसी एक भापा (प्रायः वहुप्रचलित और जानी-मानी भापा) को स्रोत भापा मानकर, अन्य भापाओं में प्रयुक्त समानार्थी पारिभापिक शव्द देते हैं। ऐसे कोश दो (जैसे अंग्रेज़ी-हिन्दी), तीन (जैसे अंग्रेज़ी-वँगला-हिन्दी), चार (जैसे अंग्रेज़ी-जर्मन-रूसी-फ्रांसीसी), पाँच (जैसे रूसी-अंग्रेज़ी-जर्मन-स्पैनिश-फ्रांसीसी), छः (जैसे रूसी-अंग्रेज़ी-फ्रांसीसी-स्पैनिश-जर्मन-जापानी), सात तथा आठ आदि भापाओं के प्रकाशित हो चुके हैं।

पारिभापिक कोश दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें संग्रह का काम होता है। पारिभापिक शव्दों की दृष्टि से समुन्नत भापाओं के तुलनात्मक पारिभापिक शव्दकोश वनाने में वस्तुतः संग्रह का काम (मुख्य रूप से) ही करना पड़ता है। यूरोपीय भापाओं के तुलनात्मक पारिभापिक कोश प्रायः इसी प्रकार के हैं। दूसरे प्रकार के कोश वे होते हैं, जिनमें कोई एक या अधिक भापाएँ पारिभापिक शव्दों की दृष्टि से असम्पन्न होती हैं, अतः उस (न) के लिए नये पारिभापिक शव्द वनाने पड़ते हैं। अरवी, हिन्दी, चीनी, वँगला, मराठी आदि भापाएँ इसी श्रेणी की हैं। हर भापा में नये पारिभापिक शव्दों के निर्माण के एकाधिक संप्रदाय हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी में चार संप्रदाय हैं (पुनरुद्धारवादी, आदानवादी, प्रयोगवादी तथा समन्वयवादी), जिनमें सर्वोत्तम समन्वयवादी है (विस्तार के लिए देखिए, प्रस्तुत लेखक की पुस्तक पारिभापिक शव्दावली : कुछ समस्याएँ)। नये पारिभापिक शव्दों के निर्माण संप्रदाय आदि का ध्यान रखना चाहिए।

पारिभापिक शव्दों का कोश वनाने में एक समस्या और भी आती है। कभी-कभी एक ही अर्थ में एकाधिक पारिभापिक शव्द एक भापा में प्रयुक्त होते मिलते हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी में भापाविज्ञान में रूपग्राम-रूपिम, उपस्वन-संस्वन-संध्वनि, या निपेधवोधक-निपेधवाचक आदि। ऐसे में सभी शव्दों को यथास्थान दे देना चाहिए, साथ ही अन्योन्य सन्दर्भ भी।

एक वात और। मान लें, कोई व्यक्ति अंग्रेज़ी-हिन्दी पारिभापिक कोश वना रहा है। उसने किसी अंग्रेज़ी शव्द के लिए हिन्दी का एक पारिभापिक शव्द वनाया। मान लें, sememe के लिए 'अर्थिम'। मान लें, किसी पाठक को भापाविज्ञान की किसी हिन्दी पुस्तक में कहीं 'अर्थिम' शव्द मिलता है। पाठक

कैसे जाने कि वह किसी ग्रंग्रेज़ी शब्द का समानार्थी है। इसीलिए बहुप्रचलित ग्रौर प्रतिष्ठित भाषा से ऐसी भाषा में पारिभाषिक शब्द के कोश बनाने में, जिसमें स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों का ग्रभाव है, ग्राधे कोश में स्रोत भाषा-लक्ष्य भाषा (जैसे ग्रंग्रेज़ी-हिन्दी) तथा ग्राधे कोश में इसके उलटे (जैसे हिन्दी-ग्रंग्रेज़ी) कोश देना चाहिए। इसके ग्राधार पर किसी भी ग्रंग्रेज़ी शब्द के लिए हिन्दी शब्द तथा किसी भी हिन्दी शब्द के लिए ग्रंग्रेज़ी शब्द खोजा जा सकता है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भाषाविज्ञान का पारिभाषिक-कोश इसी प्रकार का है।

# 7. इतिहास

## (अ) प्राचीन भारतीय कोश-परंपरा

### (क) संस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश

(i) **निघंटु तथा निरुक्त**—इस बात का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कोश संकलित करने का विचार प्राचीन काल में सबसे पहले तब आया होगा, जब पहले के रचित साहित्य के कुछ शब्दों को समझने में कठिनाई हुई होगी। भारत की ही बात लें। जब वैदिक संहिताओं के अनेक शब्दों को समझने में कठिनाई होने लगी तो वैदिक शब्दों के संग्रह-ग्रन्थ बनाए गए, जिन्हें 'निघंटु' कहते हैं। आज तो केवल एक ही निघंटु (कुछ लोगों के अनुसार यह यास्क (8वीं सदी ई० पू०) का है, किन्तु कुछ अन्य लोगों के अनुसार, किसी और का है। महाभारत में कश्यप को इसका रचयिता कहा गया है) प्रसिद्ध है, किन्तु निश्चय ही बहुत-से बने होंगे, जिनमें दो अन्य (1. शाकपूणि का—यह पूना से छपा था; 2. कौत्सव्य का—यह लाहौर से छपा था) भी आज उपलब्ध हैं। मैकडॉनेल के अनुसार, यास्क के समय में पाँच निघंटु उपलब्ध थे। 'निघंटु' मात्र शब्द-संग्रह है। इनमें शब्दों के अर्थ नहीं दिए गए हैं, किन्तु चूँकि शब्द पर्याय-क्रम से रखे गए हैं, अतः, अर्थ न दिया होने पर भी स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए, प्राप्त निघंटु के नैघंटुक कांड में पृथ्वी के 21 पर्याय, पानी के 101 पर्याय, हवा के 16 पर्याय तथा 'जाना' के 122 पर्याय दिए गए हैं। मान लें, किसी शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं है, किन्तु वह पृथ्वी के पर्यायों में है, तो स्पष्ट ही यह पता लगने में देर न लगेगी कि उसका अर्थ 'पृथ्वी' है। यों प्राप्त निघंटु में तीन कांड हैं: **नैघंटुक** (इसमें तीन अध्याय हैं, जिनमें प्रथम में पृथ्वी, उषा आदि 17 विषय हैं, दूसरे में मनुष्य तथा उसके अवयव आदि 22 विषय हैं, तथा तीसरे में गुण-धर्म-भाव सूचक 3 विषय है), **ऐकपदिक** तथा **दैवत**। इनमें प्रथम कांड ही प्राचीन है। अन्य निघंटु भी इसी प्रकार के अर्थात् पर्याय-मालाओं वाले रहे होंगे। दूसरे तथा तीसरे कांड बाद के हैं, और मूल निघंटु या प्राचीन निघंटुओं में इस प्रकार के अध्याय नहीं रहे होंगे। 'ऐकपदिक' कांड (चौथा अध्याय) में पर्याय-माला नहीं है। इसमें ऐसे शब्द हैं, जिनके या तो अर्थ या व्युत्पत्तियाँ या दोनों स्पष्ट नहीं हैं। दैवत कांड (पाँचवा अध्याय) में देवताओं के नाम हैं। निघंटु में शब्दों का क्रम नहीं है। हाँ, वर्गों (जो अर्थ के आधार बनाए गए हैं) में कुछ तारतम्य अवश्य है।

'निघंटु' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। मोनियर विलियम इसका सम्बन्ध

'ध्वनि करना' या 'बोलना' अर्थ की 'घंट्' धातु से मानते हैं। 'घंटा,' 'घंटी' शब्द का सम्बन्ध भी कुछ लोगों के अनुसार इसी धातु से है। यों इस व्युत्पत्ति की संभावना बहुत अधिक है नहीं। यास्कपूर्व आचार्य औपमन्यव ने 'निघंटु' को मूलतः 'निगंतु' माना है। इस आधार पर यास्क इसकी व्युत्पत्ति 'नि+गम्+तु' रूप में संकेतित करते हैं। यों निघंटु की व्याख्या यास्क ने 'वेदों से चुनकर जमा किया हुआ' (नि+हृ=संगृहीत) रूप में की है।

यास्क ने कहा है, कि निघंटु वह है, जिसमें पर्याय धातुओं (एतावन्तः समानकर्माणोधातवः), पर्याय शब्दों (एतावन्ति अस्य सत्वस्य नामधेयानि), अनेकार्थी शब्दों (एतावतामर्थानाम् इदमभिधानं) तथा देवताओं के नामों का संग्रह हो। साथ ही प्राप्त निघंटु में अज्ञातार्थ तथा अज्ञातव्युत्पत्ति शब्दों का ऐकपदिक कांड है। इन सब बातों के आधार पर मैं निम्नांकित निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ: (1) भारत में कोशों का विकास मूलतः पर्याय कोशों के रूप में हुआ, जिसमें संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा धातुओं की पर्याय-मालाएँ होती थीं। (2) बाद में एक शब्द के अनेक अर्थों की ओर ध्यान गया तो अनेकार्थी शब्दों के कांड भी निघंटुओं में जुड़ने लगे। (3) यहाँ तक आते-आते अर्थ की ओर काफ़ी ध्यान जा चुका था, और अर्थ का निर्धारण प्रायः व्युत्पत्तियों के आधार पर किया जाता था, अतः तीसरे चरण में निघंटुओं में ऐसे अध्याय भी जुड़ने लगे, जिनमें अज्ञातार्थी, अज्ञातव्युत्पत्ति या अज्ञातार्थी व्युत्पत्ति शब्दों का संकलन होता था। (4) दृष्टि धार्मिक होने से देवताओं के नामों का महत्त्व था, अतः निघंटुओं में देवनाममालावाले कांड कदाचित् बहुत पहले जुड़ने लगे थे। संभव है, अनेकार्थी शब्दों के अध्याय जोड़े जाने के पूर्व ही, ऐसा होने लगा हो, किन्तु कोश की दृष्टि से इनका बहुत महत्त्व नहीं है, अतः यहाँ, इसे अन्त में रखा जा रहा है।

निरुक्त कोश तो नहीं है, किन्तु कोशों के विकास में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान तथा योगदान है। व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों के अर्थ को समझने-समझाने की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद तथा परवर्ती संहिताओं में अथर्ववेद, व्युत्पत्ति-संकेतों द्वारा अर्थ स्पष्ट करने या अर्थ-संकेत देने की दिशा में, विश्व में निश्चय ही प्राचीनतम हैं। अन्य वैदिक संहिताओं में भी इस प्रकार की बातें न्यूनाधिक रूप में पाई जाती हैं। आगे चलने पर ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में भी इस प्रकार के प्रयास हुए। इस दृष्टि से ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऐतरेय आरण्यक मुख्य रूप से उल्लेख्य हैं। लगता है कि ऐतरेय परंपरा इस दिशा में विशेष रूप से सक्रिय थी।

व्युत्पत्ति द्वारा अर्थ स्पष्ट करने की दिशा में पूर्व-उल्लिखित प्रयासों की चरम परिणति 8वीं सदी ई० पू० में यास्क के निरुक्त में होती है। इसमें ऊपर संकेतित निघंटु के प्रत्येक शब्द को अलग-अलग लेकर, व्युत्पत्ति देते हुए अर्थ स्पष्ट किया गया है। लगता है कि मूल बल शब्दों के अर्थ पर ही है, इसीलिए कभी-कभी एक शब्द की कई व्युत्पत्तियाँ देते हुए, उनके कई अर्थ स्पष्ट किए गए हैं। जहाँ एक व्युत्पत्ति से कई अर्थों का स्पष्ट होना संभव नहीं था, स्वभावतः
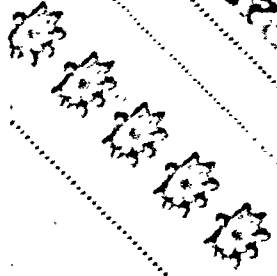
यास्क को अर्थों के स्पष्टीकरण के लिए कई व्युत्पत्तियों का सहारा लेना पड़ा है। इस तरह बड़े पैमाने पर शब्दों के अर्थ देने की दिशा में यह पहला प्रयास है। इसमें कुल 1298 शब्दों पर विचार किया गया है। कोश-कला की दिशा में विकास की दृष्टि से यास्क की एक और बात भी उल्लेख्य है। इन्होंने अर्थ को वास्तविक प्रयोग द्वारा भी स्पष्ट करने पर बल दिया है, और इसके लिए अपेक्षित स्थलों पर वैदिक संहिताओं से प्रयोग दिए हैं।

इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ देना, कई अर्थ होने पर कई व्युत्पत्तियों से उसे जोड़ना, तथा अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए अपेक्षित होने पर प्रयोग देना—ये तीन विशेषताएँ ऐसी हैं जो कोश-कला के विकास में यास्क का महत्त्वपूर्ण योगदान कही जा सकती हैं। साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि इसकी रचना गद्य में है, पद्य में नहीं।

यास्क के निरुक्त में बारह अध्याय हैं, तथा प्रत्येक अध्याय तीन से सात पादों में विभक्त है। दो पूरक अध्याय (13, 14) परिशिष्ट रूप में हैं, जिन्हें प्रायः प्रक्षिप्त माना जाता है। बारह अध्याय तीन कांडों में वर्गीकृत हैं : नैघंटुक (1-3), नैगम (4-6), दैवत (7-12)। पहले अध्याय में शब्दों के चार वर्ग (नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात) हैं। निरुक्त की मुख्य टीकाएँ स्कन्दस्वामी (11 से 14वीं सदी के बीच), देवराज यज्वा (12वीं सदी) तथा दुर्ग (1387 से कुछ पूर्व) की हैं।

इस समय तो एक ही निरुक्त उपलब्ध है, किन्तु संभावना इस बात की है कि एकाधिक निरुक्त ग्रन्थ बने होंगे जो काल-कवलित हो गए। यास्क के बाद इनके निरुक्त की परंपरा आगे नहीं बढ़ी। इस दिशा में केवल एक ही उल्लेख्य काम है 'महाव्युत्पत्ति' नामक बौद्ध कोश जिसका रचनाकाल तथा जिसके रचयिता का पता नहीं है। 9000 शब्दों के इस कोश में बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्दों, पशुओं, वनस्पतियों, रोगों आदि के पर्याय हैं।

अब तक वैदिक वाङ्मय में कोशों के विकास की बात की गई। वैदिक के बाद, लौकिक संस्कृत का काल आता है। कोशों के विकास की दृष्टि से इसे तीन कालों में बाँटा जा सकता है : (क) अमरकोशपूर्व-काल, (ख) अमरकोश-काल, (ग) अमरकोशोत्तर-काल।

(ii) **अमरकोशपूर्व-काल**—अमरकोश पूर्व के कोशों में कोई भी आज उपलब्ध नहीं है। मुख्य व्याडि का उत्पलिनी कोश (इसमें समानार्थी तथा अनेकार्थी शब्द थे), कात्य की नाम-माला (समानार्थी तथा अनेकार्थी शब्दों की), भागुरि का त्रिकांड (अनुष्टुप छन्दों में समानार्थी शब्द थे), किसी अज्ञातनामा व्यक्ति का रत्नकोश (इसमें लिंग के आधार पर शब्द वर्गीकृत थे), अमरदत्त का अमरमाला, वाचस्पति का शब्दार्णव (अनुष्टुप छन्दों में समानार्थी शब्दों का विशाल संग्रह), विक्रमादित्य का 'संसारवर्त' आदि हैं। कुछ लोगों ने कात्यायन, धन्वंतरि, रंतिदेव, वररुचि, वाचस्पति, वोपालित, विंध्यवासी के कोशों के भी संकेत किए हैं। धन्वंतरि का 'निघंटु' वैद्यक का कोश है, जो उपलब्ध (पूना से 1896 में प्रकाशित) है। क्षीरस्वामी की टीका के अनुसार अमरसिंह ने अपने कोश में इससे सहायता ली थी।

इस काल के कोशों की मुख्य विशेषताएँ हैं : (क) निघंटु की तरह शब्द पर्याय-मालाओं में संकलित होते थे, अर्थात् एक प्रकार से पर्याय-कोश थे। साथ ही वे विषयानुसार वर्गों में विभक्त होते थे, ताकि शब्द-विशेष को खोजने में आसानी हो। (ख) कुछ में (जैसे व्याडि के कोश में) व्युत्पत्ति द्वारा अर्थ-संकेत के भी यत्न थे। (ग) अनेकार्थी शब्दों को अलग रखा जाता था। (घ) कहीं-कहीं अर्थ के संक्षिप्त या लंबे संकेत भी थे। जैसे कात्य ने अपने नाममाला में 'तितउ' को 'जिससे सत्तू छाना जाए' रूप में समझाया था। व्याडि में भी यह विशेषता थी। (ङ) कुछ कोशों में (जैसे अज्ञातनामा कोशकार का रत्नकोश) परिच्छेदों का वर्गीकरण लिंगों पर आधारित था। अर्थात् कोशकार इस बात की आवश्यकता समझने लगे थे कि कोश का प्रयोक्ता संज्ञा शब्दों के लिंग भी जानना चाहेगा ताकि अर्थ के निर्णय के साथ-साथ प्रयोग की सुविधा प्राप्त हो सके। (च) कुछ कोश (जैसे वाचस्पति का शब्दार्णव), जहाँ आवश्यक हो, शब्द के विभिन्न रूपों या वर्तनी का भी उल्लेख करते थे। (छ) इस काल में कुछ धातु-पाठ भी बने, जिनमें मुख्य पाणिनि का है। कुछ लोगों के अनुसार मूलतः इसमें अर्थ नहीं था, अर्थ बाद में किसी ने जोड़े। धातु-पाठ भी एक प्रकार के कोश ही हैं। इस काल में पाणिनि के अतिरिक्त, शर्ववर्मन, चन्द्र, तथा जैनेन्द्र ने भी अपने-अपने धातु-पाठ बनाए। इन धातुपाठों में भी प्रायः धातुओं के अर्थ हैं।

इस तरह इस काल में, भारतीय कोश-कला को लिंग संकेत, शब्द की व्याख्या तथा अपेक्षित होने पर शब्द के विभिन्न रूप देने की परंपरा मिली, और भारतीय कोश-कला इस प्रकार आगे बढ़ी।

(iii) **अमरकोश-काल**—अमरकोश-काल की केवल एक ही कृति ज्ञात है : अमरकोश। इसका रचना-काल प्रायः पाँचवीं-छठी सदी है। संस्कृत व्याकरण में जो स्थान पाणिनि का है, संस्कृत कोशों में वही स्थान अमरकोश के रचयिता का है। यदि पाणिनि की अष्टाध्यायी जगत् की माता है तो अमरकोश जगत् का पिता (अष्टाध्यायीजगन्मातामरकोशो जगत्पिता)। इसकी महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी सत्तर से ऊपर टीकाएँ संस्कृत में हो चुकी हैं। चीनी भाषा में छठी सदी में इसका अनुवाद भी हुआ था। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध थेसारसकार रॉजेट ने अपने कोश के निर्माण में अमरकोश का आभार स्वीकार किया है। बाद के प्रायः सभी संस्कृत कोशों को इसने किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है। पालि, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के बहुत-से मध्यकालीन कोश इसी के आधार पर बने हैं, तथा अंग्रेज़ी आदि कई समुन्नत भाषाओं में थेसारस की मूल प्रेरणा इसी कोश से मिली है।

यास्क ने शब्दों के चार वर्ग किए थे : नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात। इनमें प्रथम वर्ग ही भाषा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, इसी कारण धातु-पाठों की चर्चा छोड़ दें, तो संस्कृत कोशों में नामों की ही प्रधानता है। अमरकोश के पूर्व नामों के संकलन की दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं और उन्हीं के आधार पर दो प्रकार के कोश बने : (क) **लिंगमात्रपरायण कोश**—इनमें केवल लिंग का निर्देश होता था। उदाहरण के लिए, व्याडि और वररुचि के कोश लिंगपरायण थे। पूरे

संस्कृत कोश-साहित्य में इस प्रकार के लगभग पचास कोशों की रचना हुई। सामान्यतः ऐसे कोशों में तीन कांड (स्त्रीकांड, पुंकांड, नपुंसककांड) होते थे। शब्द लिंगार्थ-चन्द्रिका में एकलिंग, द्विलिंग, त्रिलिंग के रूप में विभाजन है। संस्कृत में लिंग-निर्णय कठिन कार्य है, इसीलिए इस तरह के कोश बनाए गए। (ख) **नाममात्रपरायण कोश**—इनमें सामान्य पर्याय-कोश तथा अनेकार्थ कोश आते हैं, जिनमें विषय आदि के अनुसार नाम (संज्ञा) का विभाजन होता है। अमरसिंह ने 'नाम' और 'लिंग' दोनों को महत्त्व देते हुए दोनों को मिलाकर अपना कोश बनाया और इसीलिए उसे 'नामलिंगानुशासन' कहा। इसमें पर्याय-मालाएं हैं तथा संज्ञा, विशेषण, अव्यय की पर्याय-मालाएँ हैं तथा प्रायः सभी शब्दों के रूपभेद या साहचर्य आदि के द्वारा लिंग-संकेत हैं।

कोशकार ने अपनी लिंग-निर्देश-पद्धति को काफ़ी सोच-समझकर बनाया है तथा प्रारंभ के श्लोकों में प्रयोक्ता की सुविधा से स्पष्टतः उनका उल्लेख कर दिया है।

अमरकोश की मुख्य विशेषताएं ये हैं : (1) भारतीय कोशों में वर्णानुक्रमता का प्रथम प्रयास इसमें ही है। किन्तु यह वर्णानुक्रमता आधुनिक कोशों की तरह आदि ध्वनि से न होकर, अंत्य ध्वनि की दृष्टि से है। साथ ही स्वरों का विचार नहीं है, केवल व्यंजनों का विचार है। ऐसा नानार्थ वर्ग में किया गया है, जहां नानार्थी या अनेकार्थी शब्द अंत्य व्यंजन की दृष्टि से वर्गीकृत हैं : कांत, खांत, गांत...हांत। उदाहरणार्थ, कांत में नाक, लोक, अंक, कोशातकी (चिचिंडा) तथा गणिका हैं, तो खांत में मयूख, तथा शिखा आदि, घांत में अघ, लघु आदि तो चांत में शुचि, रुचि आदि। कोशातकी, गणिका, शिखा, रुचि और शुचि आदि से स्पष्ट है कि इ, आ, ई आदि अंत्य स्वरों का विचार नहीं किया गया है। (2) सभी संज्ञा शब्दों के लिंग-संकेत किसी-न-किसी प्रकार दे दिए गए हैं। (3) शब्दों के अर्थ-संकेत भी हैं। ये अर्थ-संकेत तीन तरह के हैं : (क) नानार्थ वर्ग के सभी शब्दों के विभिन्न अर्थ अलग-अलग दिए गए हैं। जैसे 'प्रसून' के 'फूल' और 'फल' अर्थ हैं (प्रसूनं पुष्पफलयोः) या 'क्षण' का अर्थ 'निकम्मा होकर बैठे रहना,' 'निश्चित काल' तथा 'उत्सव विशेष' है (निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः)। (ख) जिन शब्दों के पर्याय दिए गए हैं, उनके अर्थ पर्यायों के कारण अपने आप स्पष्ट हो गए हैं। उदाहरण के लिए, एक पर्याय-माला सुन्दर, रुचिर, चारु, सुषम, साधु, शोभन, कांत, मनोरम, रुच्य, मनोज्ञ, मंजु, मंजुल इन बारह शब्दों की है। स्पष्ट ही यहां अर्थ देने की आवश्यकता नहीं। इस तरह जहां भी दो या अधिक पर्याय शब्द एक साथ दिए गए हैं, अर्थ नहीं दिया गया है, क्योंकि हर शब्द का अर्थ, साथ के पर्याय शब्द से स्पष्ट हो जाता है। (ग) जहां मात्र एक शब्द दिया गया है, वहां उसके अर्थ जानने का कोई साधन नहीं है, इसीलिए कोशकार ने स्पष्टतः उनका अर्थ दिया है। उदाहरणार्थ, आविध—जिससे छेद करते हैं (आविधो विध्यते येन); आवुत्तः—बहिन का पति (भगिनीपतिरावुत्तो)। कभी-कभी छंद की आवश्यकतानुसार कई शब्दों का अर्थ एक साथ भी दिया गया है : 'विलंब' से नाचने-गाने को

'तत्त्व,' 'जल्दी-जल्दी' नाचने-गाने-बजाने को 'ग्रोघ' तथा मध्यम गति से नाचने-गाने-बजाने को 'घन' कहते हैं (विलंबितं द्रुतं मध्यं तत्त्वमोघो घनं क्रमात्)। (4) शब्दों के विषयानुसार (जैसे कालवर्ग, वारिवर्ग, सिंहादिवर्ग) या प्रयोगानुसार (जैसे ग्रव्ययवर्ग, विशेष्यनिघ्न ग्रर्थात् विशेषण वर्ग) वर्गीकरण भी हैं। इस प्रकार का वर्गीकरण निघंटु में भी है, तथा ग्रमरकोशपूर्व के कुछ ग्रन्य कोशों में भी इसके होने के संकेत मिलते हैं, किन्तु इसमें वर्गीकरण ग्रधिक व्यवस्थित है।

ग्रमरकोश की एक कमी खटकती है कि इसमें केवल संज्ञा, विशेषण तथा ग्रव्यय शब्द ही लिए गए हैं, धातु नहीं। यों तो इसीलिए ग्रपने कोश को ग्रमरसिंह ने 'नामलिंगानुशासन' कहा है, जिसमें 'नाम' का प्रयोग इन्हीं तीनों के लिए है। किन्तु यदि ऐसा न किया गया होता, तो कोश ग्रौर भी पूर्ण होता। यह उल्लेख्य है कि निघंट में धातुएँ भी हैं। लगता है कि संस्कृत के काफ़ी वैयाकरणों ने धातु-पाठ बनाए जिनमें ग्रर्थ भी थे, ग्रतः ग्रमरसिंह ने उन्हें नहीं लिया। ग्रागे पालि-प्राकृत में भी यही परंपरा चली। काशकृत्स्न ने ग्रपने धातु-पाठ की रचना भी कदाचित् इसी काल में की।

(iv) **ग्रमरकोशोत्तर-काल**—ग्रमरकोशोत्तर-काल के कोशकारों[1] में रसमपाल (600 से 900 के बीच, कोश का नाम ग्रज्ञात), शाश्वत (ग्रनेकार्थ समुच्चय, छठी सदी, पूना से प्रकाशित), माधवकर (पर्यायमाला, 700 ), महाक्षपणक (ग्रनेकार्थ ध्वनि-मंजरी, 900), हलायुध (ग्रभिधानरत्नमाला, 950), हरिचरण सेन (पर्यायमुक्तावली, रचनाकाल लगभग 1000), चक्रपाणिदत्त (शब्दचंद्रिका, 1060), यादवप्रकाश (वैजयंती कोश, 1100), शुभांक (उत्पलिनी, 1100), पुरुषोत्तमदेव (त्रिकांड शेष, हारावली, वर्णदर्शना, द्विरूपकोश, एकाक्षर कोश, 1050-1200), महेश्वर (विश्वप्रकाश, 1111), धनंजय (नाममाला, 1123), ग्रजयपाल (ग्रनेकार्थकोश, 1140 के पूर्व, मद्रास से प्रकाशित), मंख (मंखकोश, 1140, बम्बई से प्रकाशित), हेमचंद (जीवन-काल 1088-1175, ग्रभिधान-चिन्तामणि, ग्रनेकार्थ-संग्रह, निघंटुशेष, देशीनाममाला), धरणीधर (धरणीकोश, 1159 के पूर्व), श्रीहर्ष (द्विरूप-कोश, 12वीं सदी), केशव (नानार्थार्णव संक्षेप, कल्पद्रुमकोश जो चार हज़ार श्लोकों का संस्कृत का सबसे बड़ा पर्याय कोश है, 13वीं सदी), मेदिनीकर (नानार्थ शब्दों का कोश ग्रथवा मेदिनी कोश, 1200-1275 के बीच, प्रकाशित), बोपदेव (हृदयदीपिका, 1250), माधव (एकाक्षर रत्नमाला, 1350), इरुगप्प दंडाधिनाथ (नानार्थ रत्नमाला, 1370), मदनपाल, (मदनविनोद, 1375), नरहरि (राजनिघंटु, 1380), गदासिंह (ग्रनेकार्थ ध्वनिमंजरी, 1431 के पूर्व), महीप (ग्रनेकार्थ तिलक, 1434 के पूर्व), पांडुरंग विट्ठल (शीघ्रबोधिनीमाला, 16वीं सदी), शुभशील (पंचवर्ग संग्रह, नाममाला, उणादिनाममाला, 1450-1500), रूपचंद्र (रूपमंजरी नाममाला, 1588), हर्षकीर्ति (शारदीयाख्यानाममाला, 1600), भरसेन (द्विरूपध्वनिसंग्रह, 1620), सुन्दरगणि (उक्तिरत्ना-

1. कोष्ठक में रचना-काल ई० में दिया गया है जो प्रायः 'लगभग' है।

कर, शब्दरत्नाकर, धातुरत्नाकर, 1600-1650), केशव (कल्पद्रुम कोश, 1660), शिवदत्त (शिवकोश, 1677), विश्वनाथ (कोशकल्पतरु, इसमें पाँच हज़ार से अधिक छंद हैं, 17वीं सदी), तारामणि (शब्दमुक्तामहार्णव, 1785), भास्कर राव (वैदिक कोश, 1775) आदि नाम मिलते हैं। इस काल के धातु-पाठों में कातंत्र, शाकटायन, हेमचंद्र, वोपदेव के प्रसिद्ध हैं। धातु-पाठ प्रायः छंदोबद्ध नहीं मिलते, किन्तु देव का 'दैवम्,' श्री भट्टमल्ल की 'आख्यातचंद्रिका,' पुरुपकार का 'आख्यातनिघंटु' तथा किसी अज्ञात रचयिता का 'रूपमाला' छंदोबद्ध हैं। इस काल के कोशों की मुख्य विशेपताएँ हैं :

(1) कोश-निर्माण में 'अक्षर' (syllable) के महत्त्व को पहचाना गया। पुरुषोत्तम देव का 'एकाक्षर कोश'; यादवप्रकाश के प्रसिद्ध 'वैजयंती कोश' के दूसरे भाग में द्व्यक्षर, त्र्यक्षर कांड (जिनमें क्रमशः दो और तीन अक्षरों के शब्द हैं); महेश्वर का 'विश्वप्रकाश' जिसमें प्रत्येक अध्याय में अक्षरों की दृष्टि से शब्दों का वर्गीकरण (एकाक्षर से लेकर सप्ताक्षर तक) है; तथा हेमचन्द्र के 'अनेकार्थ संग्रह' के कांडों का शब्दों में अक्षर की संख्या के आधार पर वनाया जाना इसके प्रमाण हैं।

(2) यह अनुभव होने लगा था कि शब्दकोश वना देना पर्याप्त नहीं है। कोश ऐसा होना चाहिए, जिसमें सरलता से शब्द खोजा जा सके। अमरकोश-कार ने अंत्य ध्वनि के आधार पर वर्गीकरण किया था, किन्तु उसे पर्याप्त नहीं समझा गया, अतः शब्द की अंत्य ध्वनि के साथ उसकी अक्षर-संख्या का भी ध्यान रखा जाने लगा। इसके कारण शब्द खोजना पहले की तुलना में आसान हो गया। उदाहरण के लिए, 'मेदिनी कोश' में शब्दों का वर्गीकरण पहले अंत्य ध्वनि (कांत वर्ग, खांत वर्ग, हांत वर्ग आदि) के आधार पर है, फिर इस प्रकार के हर वर्ग के शब्दों को अक्षर-संख्या के आधार पर अलग-अलग किया गया है। उदाहरण के लिए, 'क' (=ब्रह्मा आदि), कैकम् ('क्+एकम्' अर्थात् क-अंत्य शब्दों में एक अक्षर वाले शब्द) उपवर्ग में हैं तो 'काक' कद्विकम् में। इसी प्रकार 'अलका' कत्रिकम् में, 'गोभेदक' कचतुष्कम् में, 'शतपर्विका' कपंचकम में तथा 'मदनशलाका' कपटकम् में।

(3) अंत्य ध्वनि और अक्षर-संख्या के आधार पर शब्दों को क्रमित करने के वावजूद कोशों से शब्दों को खोजने में उतनी सरलता नहीं थी, जितनी आज के आदि ध्वनियों के आधार पर क्रमित शब्दकोशों में मिलती है। इसी कमी को दृष्टि में रखते हुए कुछ कोश आदि ध्वनि के आधार पर भी वने थे। जैसे केशव स्वामी के 'नानार्थार्णव' में प्रत्येक अध्याय में शब्द अकारादि क्रम से हैं। अजयपाल के 'नानार्थ संग्रह' में भी यही वात है।

(4) इस वात की ओर लोगों का ध्यान पहले ही गया था कि भाषा में कुछ शब्द एकार्थी होते हैं तो कुछ अनेकार्थी। अमरकोश में 'नानार्थ' वर्ग अलग है, जिसका अर्थ यह है कि शेष अध्यायों में एकार्थ शब्द हैं। इस काल में एकार्थी शब्दों के अलग तथा अनेकार्थी शब्दों के अलग कोश भी वने। जैसे शाश्वत का 'अनेकार्थ समुच्चय,' मंख का 'अनेकार्थ,' अजयपाल का 'नानार्थसंग्रह' तथा

हेमचंद्र का 'अनेकार्थसंग्रह' आदि दूसरे वर्ग में उल्लेख्य है। जिन कोशों के नाम के साथ 'नाना' या 'अनेक' शब्द नहीं जुड़ा है, वे एकार्थ कोश हैं। जैसे पुरुषोत्तम-देव का त्रिकांडशेष। यों ऐसे काफ़ी कोशों में एक वर्ग या एक अध्याय अनेकार्थी शब्दों का भी है। अपवादतः सौभरि ने दो अर्थ वाले शब्दों का द्व्यर्थनाममाला तथा छः अर्थ वाले शब्दों का कवि राक्षस ने 'षडर्थनिर्णय कोश' संकलित किया था।

(5) कवियों को श्लेष के लिए अनेकार्थी शब्दों की आवश्यकता होती है। उस काल में श्लेष पर इतना बल था कि, इसके लिए अलग कोश बनाने पर भी लोगों का ध्यान गया। हर्ष का 'श्लेषार्थ पद-संग्रह' इसका प्रमाण है। यों तो अनेकार्थ कोश भी इसके लिए अच्छे थे।

(6) कुछ कोश केवल अप्रचलित शब्दों के बने। जैसे पुरुषोत्तम देव की 'हारावली'। कहना न होगा कि ऐसे शब्दों के कोशों की परंपरा योरप में भी रही है।

(7) व्याकरण की दृष्टि से भी कुछ कोश बने। जैसे महादेव का 'अव्यय कोश,' जयभट्टारक का अव्ययार्णव, भवदेव का 'तद्धित कोश,' एक अज्ञातनामा कोशकार का 'उणादि कोश' तथा अनेक धातु-पाठ जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है।

(8) शुद्ध लेखन तथा वर्तनी सम्बन्धी रूपान्तरों की ओर भी लोगों का ध्यान गया तथा 'वर्णदेशना' की रचना इसी उद्देश्य से की गई।

(9) शब्दों के एकाधिक रूपों की ओर भी लोगों का ध्यान गया। पुरुषोत्तम देव ने एक 'द्विरूपकोश' बनाया था, जिसमें दो रूप वाले शब्द दिए गए थे। जैसे, उषा-ऊषा, ओषधि-औषध।

(10) इस काल के अधिकांश कोश लौकिक संस्कृत के हैं, किन्तु केशवस्वामी के 'नानार्थार्णव' में वैदिक शब्द हैं। इस प्रकार वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों को एक में मिलाकर भी कोश बनाने के प्रयास हुए।

(11) अमरकोश काफ़ी अच्छा और बड़ा कोश है, किन्तु उसमें भी सभी शब्द नहीं हैं। कुछ कोशकारों का ध्यान इस बात की ओर गया कि जो शब्द उसमें नहीं आ पाए हैं, उनके भी कोश बनने चाहिए। संभव है, समय बीतने के साथ कुछ नये शब्द भी भाषा में आ गए हों। ऐसे शब्दों का अमरकोश में न मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। इस दिशा में पुरुषोत्तम देव ने काम किया। उनके 'त्रिकांडशेष' नामक कोशग्रंथ में ऐसे ही शब्द हैं, जो अमरकोश में नहीं हैं। 'त्रिकांड' अमरकोश का ही एक नाम है। 'त्रिकांडशेष' का अर्थ है वे शब्द जो 'त्रिकांड' में छूट गए हैं।

(12) व्युत्पत्तियों की ओर वैदिक-काल में ही लोगों का ध्यान गया था। इस काल तक आते-आते ऐसे शब्दों का भी एक वर्ग विद्वानों के सामने उभरकर आ गया था, जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं था तथा जो देशज या देशी माने जाते थे। इनके संग्रह की ओर भी लोगों का ध्यान गया। हेमचंद्र की 'देशीनाममाला' में ऐसे ही शब्दों का संग्रह है।

(13) इस काल में वैद्यक (जैसे हेमचंद्र का 'निघंटु' शीर्षक वैद्यक कोश) तथा ज्योतिष (जैसे हरिदत्त का गणितरत्नमाला) आदि, साहित्य से इतर विषयों के भी कोश बने ।

(14) अधिकांश कोश पद्यबद्ध हैं । याद करने की सुविधा के कारण ऐसा किया गया है ।

(15) इस काल के कोश मूलतः दो प्रकार के हैं :(1) मौलिक कोश,(2) टीका-व्याख्या कोश । पहले में तो वे कोश हैं जो स्वतंत्रतः कोश रूप में लिखे गए हैं, चाहे वे पूर्णतः मौलिक हों या किसी अन्य कोश पर कम या अधिक आधारित हों । दूसरे में अमरकोश तथा कुछ अन्य पर लिखी गई व्याख्याएँ तथा टीकाएँ आती हैं जिनकी परंपरा काफ़ी लंबी है और 18वीं सदी तक चली आई है। जैसाकि कहा गया है, अमरकोश की सत्तर से ऊपर व्याख्याओं का पता चला है जिनमें भट्टक्षीरस्वामी के अमरकोशोद्घाटन (11वीं सदी), सुभूतिचंद्र की कामधेनु (11वीं सदी), सर्वदानन्द का टीकासर्वस्व (12वीं सदी), रायमुकुट की पदचंद्रिका (15वीं सदी), भट्टोजि दीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित की व्याख्या-सुधा (17वीं सदी), भरतमल्लिक की मुग्धबोध (18वीं सदी) के नाम लिए जा सकते हैं। अमरकोश की टीकाएँ मात्र टीकाएँ या व्याख्याएँ नहीं हैं, इन्होंने कोशकला को निम्नांकित दृष्टियों से आगे बढ़ाया है : (क) कइयों में व्युत्पत्ति के संकेत हैं। (ख) कुछ में त्रुटियों के निर्देश हैं । (ग) कुछ में शब्दों के अर्थ समझाने के साथ-साथ प्रामाणिक ग्रंथों से उनके प्रयोग के उद्धरण भी हैं। (घ) कुछ ने प्रसंगतः कुछ नये शब्द भी जोड़े हैं जो मूल अमरकोश में नहीं हैं। (ङ) अर्थ की अपेक्षाकृत विस्तृत व्याख्याएँ हैं। इस तरह इन टीका-ग्रंथों ने कोशकला को कई दृष्टियों से काफ़ी आगे बढ़ाया है ।

धातु-पाठ को छोड़कर जिसका सीधा सम्बन्ध व्याकरण से है; इस काल के किसी भी कोश में धातुओं को प्रायः नहीं लिया गया है। संज्ञा, विशेषण तथा अव्यय तक ही सभी सीमित हैं। अमरकोश तथा उसके पूर्व के कोशों में भी यही बात है। यों निघंटु में धातुओं को समाहित किया गया था। लगता है कि धातु-पाठ अलग बनने लगे थे, और उनमें अर्थ भी होता था, अतः अन्य कोशों में उन्हें देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

## (ख) संस्कृत के द्विभाषिक कोश

ऊपर संस्कृत-कोशों की चर्चा की गई। संस्कृत में कुछ द्विभाषिक कोश भी 16वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के तीसरे चरण तक बने, जिनमें अरबी-फ़ारसी, तुर्की शब्दों के संस्कृत पर्याय दिए गए थे। उदाहरणार्थ, अकबर के काल के विहारी कृष्णदास (1556-1605) का पारसी-प्रकाश, शाहजहाँ के आश्रय में रचित वेदांगराय का पारसी-प्रकाश (1647), व्रजभूषण का पारसीविनोद (1659), शिवाजी के राज्यकाल में रघुनाथ पंडित का राजव्यवहारकोश (1676-77); यह भारत में संपादित पहला पारिभाषिक-कोश है। इसमें फ़ारसी शब्दों के संस्कृत या मराठी में अर्थ दिए गए हैं, इस तरह यह त्रिभाषी-कोश है, दलपति-

राय का यावनपरिपाटी अनुक्रम (1764) तथा विक्रमसिंह का पारसी भाषा-नुशासन आदि।

### (ग) पालि-कोश

पालि में दो प्रकार के कोश बने। एक तो वे जो वैदिक निघंटुओं की तरह पर्याय-कोश थे जिनकी रचना छंदों में नहीं हुई थी। इनमें आज कोई भी कदाचित् उपलब्ध नहीं है। दूसरे प्रकार के कोश लौकिक संस्कृत के अमरकोश आदि की शैली पर हैं। इनमें प्रसिद्ध दो हैं : महाव्युत्पत्ति-कोश (दे० पीछे) तथा मोग्गलान (12वीं सदी) की अभिधानप्पदीपिका। पहले कोश की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वैदिक तथा लौकिक कोशों से अलग हटकर इसमें मुहावरों का भी संग्रह है। कुछ लौकिक कोशों की तरह पालि में भी कुछ एकाक्षर कोश लिखे गए, जिनमें एक भिक्षु सद्धम्मकित्ति का 'एकक्खर कोश' है। वैयाकरणों ने धातु-कोश भी बनाए जिनमें प्रसिद्ध हैं मोग्गलान का धातु-पाठ, सद्नीति की धातुमाला, वर्मी भिक्षु हिंगुलवल जिनरतन की धात्वत्थदीपनी तथा सीलवंस की 'धातु-मंजूसा' आदि।

### (घ) प्राकृत-कोश

प्राकृत भाषा के भी कोश बने, किन्तु संस्कृत जितने नहीं। इनमें अभिमान चिह्न का 'देशी कोश' सूत्र रूप में है तथा गोपाल का 'देशी कोश' श्लोकों में है। देवराज के प्राकृत-कोश तथा द्रोण के देशी कोश में प्राकृत शब्दों का अर्थ प्राकृत में दिया गया है। सबसे प्रसिद्ध कोश धनपाल का 'पाइअ लच्छी नाममाला' (सन् 982 ई०) है, जिसे संस्कृत में 'प्राकृत लक्ष्मी नाममाला' कह सकते हैं। यह पर्याय-कोश है। उदाहरण के लिए, इसकी एक (27) पंक्ति है : 'रवं अब्भं अंतरिक्खं वोमं नहं अंबरं गयणं' अर्थात् रवं, अभ्र, अंतरिक्ष, व्योम, नभ, अंबर, गगन। इसमें संज्ञा, विशेषण तथा अव्यय शब्द हैं। हेमचंद्र की 'देशीनाममाला' का उल्लेख भी यहाँ कर सकते हैं, क्योंकि इसमें लिए गए शब्द भी प्राकृत के हैं। वस्तुत: ऊपर दिए गए 'देशी कोश' की ही श्रेणी का वह भी है। संस्कृत और पालि की तरह ही प्राकृत के भी कुछ धातु-पाठ बने थे।

अपभ्रंश के अलग कोशों की रचना नहीं हुई। प्राकृत के कोशों के प्राय: अधिकांश शब्द अपभ्रंश के भी हैं। वस्तुत: शब्द के स्तर पर अपभ्रंश कुछ विशिष्टताओं को छोड़कर प्राय: प्राकृत ही है।

इस प्रकार पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की, कोश की दिशा में कोई खास देन नहीं है, सिवा इसके कि महाव्युत्पत्ति कोश में 'मुहावरे' भी हैं।

## (आ) यूरोपीय, मुख्यत: अंग्रेजी कोश-परंपरा

यूरोप के कई देशों में प्राचीन काल में धर्मग्रन्थों के हाशिये पर कठिन शब्दों के अर्थ लिखने की परंपरा रही है। बाद में इसी सामग्री को अनु-क्रमणिका तथा शब्दसूची का रूप दिया गया। होमर के ग्रन्थों की भी 'ग्लोसाइ' (शब्दसूची) बनी। लैटिन का प्रमुख बढ़ने पर लैटिन सिखाने के लिए लैटिन

की शब्द-सूचियाँ भी बनीं। इनमें प्रथम वर्ण के अनुसार, शब्दों का वर्गीकरण होता था, बाद में दूसरे और तीसरे वर्ण का भी क्रम-विचार होने लगा। इस तरह की एक शब्दसूची 725 ई० की 'कार्पस ग्लासरी' है जो इंग्लैंड में मिली है। इनमें अर्थ लैटिन में होते थे। 10वीं सदी तक आते-आते लैटिन-अंग्रेज़ी, लैटिन-फ्रांसीसी, लैटिन-इतालवी कोश बनने लगे। 15वीं सदी में प्रथम अंग्रेज़ी-लैटिन कोश (लगभग 2500 शब्दों का) बना जिसकी प्रविष्टियाँ पूरी तरह वर्णानुक्रम के अनुसार थीं। साथ ही विषयाश्रित वर्गीकरण वाले कोश भी बन रहे थे। इनमें आकाश, राशि, ग्रह, काल, ऋतु, वार, पक्षी आदि शीर्षक से शब्द संग्रहीत होते थे। अंग्रेज़ी में अंतिम ध्वनि या तुक की दृष्टि से भी कुछ कोश बने। धीरे-धीरे द्विभाषिक कोशों (लैटिन-अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी-अंग्रेज़ी, अंग्रेज़ी-फ्रांसीसी आदि) की परंपरा बढ़ी। और आगे बढ़ने पर अंग्रेज़ी में प्रचलित ऐसे ग्रीक, लैटिन, फ्रांसीसी शब्दों के कोश बनने लगे, जिनसे सामान्य लोग परिचित नहीं थे। एकभाषिक अंग्रेज़ी कोशों तथा आधुनिक कोशविज्ञान का श्रीगणेश यहीं से होता है।

सत्रहवीं सदी के प्रारंभ में इटली (Vocabolario, Academici della Crusca, 1612), तथा अन्त में फ्रांस (Dictionnaire de l' Academie Francaise, 1694), अकादमियों द्वारा बड़े कोश प्रकाशित किए गए, जिनका उद्देश्य भाषा को मानक और शुद्ध बनाना था।

इंग्लैंड में कोई अकादमी नहीं थी, अतः व्यक्तिगत प्रयास हुए। किन्तु इन प्रयासों का इतिहास काफ़ी पुराना है। सबसे पहले 1582 में रिचर्ड मुलकास्टर (Mulcaster) ने सुझाव दिया कि कोई ऐसी पुस्तक बननी चाहिए जिसमें अंग्रेज़ी के सभी शब्द हों तथा उसमें उनकी ठीक वर्तनी तथा उनका ठीक अर्थ दिया गया हो। 1604 में हार्वे (G. Harvey) का अंग्रेज़ी का पहला ऐसा कोश प्रकाशित हुआ, जिसमें अंग्रेज़ी के केवल वे शब्द लिए गए थे, जो साहित्य में आते थे, किन्तु सामान्य बोलचाल में नहीं थे, अतः लोगों के लिए कठिन थे। ये प्रायः हिब्रू, ग्रीक, लैटिन तथा फ्रांसीसी से गृहीत शब्द थे। कोश का नाम था: 'A Table Alphabetical, Containing and teaching the true writing and understanding of hard usual English words, borrowd from the Hebrew, Greeke, Latine or French, etc.' यह 120 पृष्ठों का छोटा-सा कोश था। इसके बाद इस तरह के छोटे-बड़े कई कोश निकले। इनमें कुछ (जैसे Cawdrey का कोश Table Alphabetical) पर लिखा है कि वे स्त्री प्रयोक्ताओं के लिए हैं। शायद उस ज़माने में स्त्रियों को ऐसे कोशों की अधिक आवश्यकता थी, क्योंकि वे इन आगत शब्दों से कम परिचित थीं। 1623 में प्रकाशित काड्रे (Cawdrey) के कोश में, इन शब्दों के अतिरिक्त 'बाज़ारू' (vulgar) शब्दों के लिए 'शिष्ट' शब्द भी दिए गए हैं। अर्थात् कोश का उद्देश्य केवल अर्थ बताना न रहकर बाज़ारू शब्द के लिए मानक या शिष्ट शब्द बताना भी माना जाने लगा था। 17वीं सदी में जान बुलोकर (1616), हेनरी कौकेरम (1623, The English Dictionary; इसी के नाम में

Dictionary शब्द सर्वप्रथम आया है), थॉमस ब्लाउंट (1656, Glossographia), फ़िलिप्स (1658), कोल्स (1676) के भी कोश निकले। यहाँ तक अंग्रेजी कोश का प्रथम काल था। 1700 से अंग्रेज़ी कोश का दूसरा काल शुरू हुआ; 1721 में बेली (N. Bailey) का कोश (Universal Etymological Eng. Dictionary) प्रकाशित हुआ। इसमें व्युत्पत्ति पर बल अधिक है। इसके 1731 के संस्करण में उच्चारण पर भी बल दिया गया। इस कोश ने अंग्रेजी भाषा को सभी दृष्टियों से मानक रूप देने में बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया। कहा जाता है कि डॉ० जान्सन ने अपने प्रसिद्ध कोश में इस 1731 के संस्करण से भी सहायता ली थी।

मूलत: एक अच्छा अंग्रेज़ी कोश बनाने का विचार डॉ० जान्सन का नहीं था। कुछ पुस्तक-विक्रेताओं ने उन्हें सम्मिलित रूप से इस कार्य के लिए नियुक्त किया तथा कोश (A Dictionary of the Eng. Language, दो भाग) तैयार हुआ (1755) और लगभग 27 वर्षों तक अंग्रेजी कोशों के क्षेत्र में इसका एकछत्र राज्य रहा।

इसके पूर्व प्रकाशित अंग्रेज़ी कोशों की तुलना में इसमें सबसे बड़ी विशेषता थी प्रसिद्ध लेखकों और कवियों के प्रयोग। यों इसका विचार डॉ० जान्सन ने इतालवी एवं फ्रांसीसी कोशों से लिया था जो इसके पूर्व वहाँ के अकादमियों द्वारा प्रकाशित हुए थे। डॉ० जान्सन की मृत्यु के बाद भी इस कोश का संशोधन होता रहा तथा अंतिम संस्करण कदाचित 1874 में प्रकाशित हुआ था, जिसे लाथम (R. G. Latham) ने संशोधित किया था। यह चार बड़े-बड़े खंडों में था। डॉ० जान्सन ने बलाघात-संकेत तो दिया था, किन्तु उच्चारण की और बातें नहीं दी थीं। अंग्रेज़ी उच्चारण के स्थानीय भेद इतने अधिक थे कि इनमें किसी एक को अलगाकर मानक मानना कठिन था, किन्तु बाद में इंग्लैंड के उच्च वर्ग में मानक उच्चारण पर बल दिया जाने लगा, और धीरे-धीरे अंग्रेज और स्कॉट कोशकारों द्वारा संपादित उच्चारण-कोश प्रकाशित हुए। बाद में 1780 में आइरिश विद्वान शेरीडान (Sheridan) तथा 1791 में अंग्रेज विद्वान वाकर (Walker) के उच्चारण-कोश प्रकाशित हुए। उच्चारण में वाकर को अधिक प्रामाणिक माना गया और बाद में जान्सन के कोश में भी इनके ही उच्चारण दिए गए। इसके बाद अंग्रेज़ी के कई छोटे-बड़े कोश प्रकाशित हुए।

यह तो इंग्लैंड में कोश के विकास की कहानी थी। अमेरिका में कोशों का विकास अलग से हुआ। इस क्षेत्र में प्रथम मुख्य नाम वेब्स्टर (N. Webster, 1758-1843) का है, जो मूलत: स्कूल के अध्यापक थे। 1806 में उन्होंने एक छोटा-सा कोश प्रकाशित किया, तथा बड़े कोश पर काम शुरू किया, जो 1828 में दो भागों में The American Dictionary of Eng. Language नाम से प्रकाशित हुआ। ये चालीस वर्ष (1806 से 1843) तक कोशकार्य में लगे रहे। उनके कोश का संशोधित संस्करण 1840 में आया। वेब्स्टर का कोश व्युत्पत्ति, उच्चारण, व्याख्या, परिभाषा आदि की दृष्टि से जान्सन से अधिक प्रामाणिक और अच्छा था। कुछ शब्दों की अमरीका में प्रचलित सरलीकृत

वर्तनी को स्वीकृति देकर, उन्हें प्रचलित करने में, वेब्स्टर का बहुत बड़ा हाथ था। वेब्स्टर के एक साथी वार्सेस्टर (J. Worcester, 1784-1865) ने भी एक कोश A Comprehensive Pronouncing and Explanatory Dictionary of the Eng. Language, 1830 प्रकाशित किया और दोनों में बड़ी प्रतिस्पर्धा रही। दोनों दो क्षेत्रों के थे, अतः दोनों के अपने-अपने क्षेत्र विद्वान् इन्हें तथा इनके कोशों को समर्थन देते रहे, किन्तु अंततः समय की कसौटी पर वेब्स्टर का ही कोश खरा उतरा। यों वार्सेस्टर में इंग्लैंड के स्तर का अधिक ध्यान रखा गया था, तो वेब्स्टर में अमरीका का। कोशकला की दृष्टि से वेब्स्टर निश्चित रूप से अच्छा था, अतः आगे चलकर वेब्स्टर के नाम से बहुत-से कोश निकले, जिनसे वस्तुतः वेब्स्टर का कोई भी सम्बन्ध नहीं था। वेब्स्टर के सिद्धान्तों के आधार पर बने कोशों के साथ भी लोगों ने वेब्स्टर नाम जोड़ दिया। उदाहरण के लिए, 1953 में Webster's New World Dictionary of American Language, College Edition का एक विज्ञापन निकला, जिसमें 'वेब्स्टर' नाम का आधार केवल यही था। ऐसे ही Webster's Unified Dictionary and Encyclopedia में भी वेब्स्टर का नाम वैसे ही है।

फिर, रिचर्डसन की अंग्रेज़ी डिक्शनरी (1837), ओगिल्वी Cassel's (Ogeilvie) की Imperial Dictionary (1850), सात भागों में Encyel-opedic Dictionary (1879-1888) आदि से होते अंग्रेज़ी कोशकला आगे बढ़ी। 'विश्वकोशीय कोश' में जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'कोश और विश्वकोश' दोनों की विशेषताओं को मिला दिया गया था। 1854 में जैकब तथा ग्रिम के प्रसिद्ध जर्मन कोश का प्रकाशन हुआ, जिससे अंग्रेज विद्वानों को काफ़ी प्रेरणा मिली। 19वीं सदी के अन्त में फंक (Funk) तथा वाग्नल (Wagnall) की Standard Dictionary (1894) प्रकाशित हुई, तथा आगे इन्हीं सबकी सहायता से बड़े, छोटे, संक्षिप्त, कई अंग्रेज़ी-अंग्रेज़ी कोश बने और अब तक बनते आ रहे हैं।

19वीं सदी के मध्य में इंग्लैंड में कोश के क्षेत्र में एक नया प्रयास शुरू हुआ जो अपने ढंग का विश्व में अकेला था, और अभी आज तक भी उस प्रकार का किसी भी भाषा का कोई भी कोश नहीं बन सका है। हाँ, पूना में संस्कृत का तथा सोवियत यूनियन में रूसी के उसी प्रकार के कोश अवश्य बन रहे हैं।

1857 की गर्मियों में 'इंगलिश फ़िलोलॉजिकल सोसायटी' की एक बैठक में, अंग्रेज़ी का ऐतिहासिक सिद्धान्तों पर कोश बनाने का निर्णय लिया गया। इसका सुझाव उसके एक सदस्य फ़र्निवाल (F. J. Furnival) ने, जो उस समय के बहुत प्रसिद्ध भाषाशास्त्री थे, दिया था। इसमें (क) अंग्रेज़ी के सभी शब्दों को लेना था; (ख) शब्दों की व्युत्पत्ति पूरे विस्तार से देनी थी; (ग) मूल प्रविष्टि के रूप में शब्द की उस काल में प्रयुक्त मानक वर्तनी देनी थी; (घ) हर सदी में उसकी क्या-क्या वर्तनी या वर्तनियाँ प्रचलित थीं, यह देना था; (ङ) हर शब्द का उच्चारण देना था; (च) अर्थ ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से देना था। अर्थात् अंग्रेज़ी में जब सबसे पहले उस शब्द का प्रयोग हुआ तो उसका क्या अर्थ था, यह देना था, और फिर किस-किस समय कौन-कौन नये अर्थ विकसित

हुए या किन-किन नये-नये अर्थों में उस शब्द का प्रयोग हुआ, यह कालक्रमानुसार देना था; (छ) हर अर्थ में शब्द-विशेष का प्राप्त प्रथम प्रयोग (प्रायः एक वाक्य का उद्धरण) प्रयोगकाल के साथ देना था। इस प्रकार इस कोश में एक प्रकार से अंग्रेज़ी में प्रयुक्त सारे शब्दों का पूरा इतिहास देना था—उद्भव, ध्वन्यात्मक विकास, वार्तनिक विकास, तथा आर्थी विकास।

निश्चय ही यह निर्णय एक बहुत बड़ा और ऐतिहासिक निर्णय था, तथा इसको कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त समय, साधन और धन की आवश्यकता थी। कार्य शुरू हुआ। 1859 में कॉलरिज (प्रसिद्ध कवि के पोते) इसके संपादक नियुक्त किए गए। बहुत-से लोगों ने बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए प्राचीन और नवीन साहित्य से शब्दों के प्रयोग वाले उद्धरण संकलित करने का काम प्रारंभ किया। लोगों में इस कार्य के लिए इतना उत्साह था कि देश-भर से लगभग 800 लोगों ने बिना पारिश्रमिक के इसके लिए सामग्री एकत्र करनी शुरू कर दी। 10, 20, 25, 30, 36 हज़ार उद्धरण तो बहुतों ने भेजे। एक व्यक्ति ने तो एक लाख उद्धरण भेजे। फिर भी यह काम इतना बड़ा था कि इतने सहयोग के बावजूद इस काम को पूरा होने में लगभग पचहत्तर वर्ष लगे। इसका पहला भाग 1884 में निकला, अंतिम भाग 1928 में, तथा परिशिष्ट 1933 में। कॉलरिज तो पहले संपादक थे। दो वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई और इसका सुझाव देने वाले फ़र्निवाल (Furnival) संपादक बने। अट्ठारह वर्ष तक ये काम करते रहे, किन्तु ये कुछ बहुत अधिक काम नहीं कर-करा सके। अन्त में मरे (J. A. H. Marray) संपादक बनाए गए और बड़ी ही लगन और योग्यता से ये अड़तीस वर्षों तक इसके संपादन का काम करते रहे तथा इसके लगभग आधे भाग को इन्होंने संपादित किया। इसी बीच ब्रैडले (H. Bradley) नामक एक युवक ने, जिसे विश्वविद्यालयीय शिक्षा का कभी अवसर भी नहीं मिला था, इस कोश के प्रथम प्रकाशित खंड की बहुत ही विद्वत्तापूर्ण समीक्षा लिखी। मरे इतने गुणग्राही थे, कि वह समीक्षा देखकर उन्होंने ब्रैडले को भी उपसंपादक के रूप में नियुक्त कराया, और दो वर्ष बाद 1888 में ब्रैडले स्वतन्त्र रूप से कुछ कर्मचारियों के साथ इसके कुछ भागों का संपादन करने लगे तथा पैंतीस वर्षों तक संपादन का कार्य करते रहे। 1901 से डॉ० (बाद में सर) क्रेगी (W. Craigie) के संपादकत्व में इस कोश की एक तीसरी इकाई तथा 1914 से डॉ० ओनियन्स (C. T. Onions) के संपादकत्व में एक चौथी इकाई भी काम करने लगी। इस कोश को 'ऑक्सफ़ोर्ड इंगलिश डिक्शनरी' इसलिए कहते हैं कि, आक्सफ़ोर्ड प्रेस ने इसे प्रकाशित किया। मरे ने इसमें सबसे अधिक काम किया, अतः इसे 'मरे डिक्शनरी' भी कहते रहे हैं। साथ ही इसे New English Dictionary (कुछ लोग संक्षेप में N. E. D.) नाम से भी अभिहित करते रहे हैं। यह कोश 10 खंडों (14 जिल्दों) में है। परिशिष्ट अलग है।

बड़े आकार के 15,487 पृष्ठों के इस कोश में कुल 4,14,825 शब्द हैं जिनमें मुख्य शब्द 2,40,165 हैं। इसमें कुल 18,27,306 उद्धरण हैं। 'ऑक्सफ़ोर्ड

डिक्शनरी' के प्रकाशन के कुछ पूर्व क्रेगी ने एक लेख लिखा था, जिसमें यह संकेत दिया था कि सीमित कालों के भी ऐतिहासिक कोश बनने चाहिए। लोगों को यह विचार पसन्द आया, क्योंकि ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी जैसे विशालकाय कोश को संशोधित-परिवर्धित करके फिर से छपवाना कठिन था। क्रेगी ने स्वयं The Dictionary of the Older Scottish Tongue संपादित किया, जिसका प्रकाशन 1931 में प्रारंभ हुआ (1955 तक यह काम पूरा नहीं हुआ था)। बाद में ये अमरीका (शिकागो) चले गए, और उन्नीस वर्षों तक काम करने के बाद 1944 में 'अमरीकी अंग्रेज़ी कोश' प्रकाशित किया। The Scottish National Dictionary (1700 से अब तक के विकास की, अर्थात् Older Scottish का पूरक), Middle English Dictionary, A Dictionary of Americanism आदि कुछ अन्य ऐतिहासिक कोशों पर भी काम शुरू हुआ था और इनमें दूसरी का 1952 में एक खंड प्रकाशित भी हुआ था। आगे क्या हुआ, इसकी ठीक जानकारी मुझे उपलब्ध नहीं है।

छोटे-मोटे सैकड़ों अंग्रेज़ी कोशों की चर्चा यहाँ अनावश्यक होगी। यों कुछ अन्य उल्लेख्य कोश हैं: ह्निटने की 'सेंचुरी डिक्शनरी' (1889-91), अमरीका से प्रकाशित 'न्यू स्टैंडर्ड डिक्शनरी' (1893-95), इंग्लैंड में प्रकाशित 'स्लैंग डिक्शनरी' (1890-1904), यूल की 'हॉब्सन-जॉब्सन' (1886), राइट की 'इंग्लिश डाइलेक्ट डिक्शनरी,' तथा 'यूनिवर्सल डिक्शनरी आफ़ द इंग्लिश लैंग्विज,' 'चैम्बर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी', 'वेब्स्टर्स थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी,' 'वेब्स्टर्स डिक्शनरी आफ़ सिनानिम्स' एवं रॉजेट का 'थेसारस' आदि।

इस तरह अंग्रेज़ी कोश-परंपरा काफ़ी समृद्ध रही है तथा उसने कोश की सभी दिशाओं (प्रविष्टि, व्याकरण, व्युत्पत्ति, उच्चारण, पर्याय, व्याख्या, उद्धरण, प्रयोग-संकेत, चित्र आदि) में पर्याप्त विकास किया है। भारत के 19वीं सदी तथा उसके बाद का सारा कोश वाङ्मय (संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं का) अंग्रेज़ी कोश परंपरा का बहुत अधिक ऋणी है। हिन्दी कोशों को भी उसका योगदान बहुत अधिक है।

## (इ) अन्य

### (1) संस्कृत आदि के आधुनिक कोश

संस्कृत, पालि, प्राकृत में आधुनिक कोशों की परंपरा यूरोपियों ने शुरू की। यूरोप में, जैसा कि पीछे संकेतित है, मुख्यतः अंग्रेज़ी, फ़ांसीसी, जर्मन आदि के कोशों की बड़ी समृद्ध परंपरा थी, इसी कारण इन लोगों ने या इनके अनुकरण पर भारतीयों ने संस्कृत आदि भाषाओं के कोश बनाने की दिशा में अच्छा काम किया।

### (क) संस्कृत

संस्कृत के, इस प्रकार के लगभग पच्चीस कोश बनाए गए हैं, जिनमें

विलसन (संस्कृत-अंग्रेज़ी, 1819), येट्स (संस्कृत-अंग्रेज़ी, 1846), बॉप (Glossarium Sanscritum, 1847), (संस्कृत-लैटिन), गोल्ड्सटकर (संस्कृत-अंग्रेज़ी, अधूरी है, 1856), वेनफ़ी (संस्कृत-अंग्रेज़ी, 1866), बर्नोफ़ (संस्कृत-फ्रांसीसी, 1866), मोनियर विलियम्स (संस्कृत-अंग्रेज़ी, 1872), बार्थलिंग तथा रॉथ (संस्कृत-जर्मन, 7 भागों में, 9478 बड़े पृष्ठों का, बहुत अच्छा कोश, यह सेंटपीटर्सबुर्ग में छपा, अतः इसे 'सेंट पीटर्सबुर्ग कोश' भी कहते हैं, 1852-1875) तथा रेनू एवं अन्यों (संस्कृत-फ्रांसीसी, 1932) के कोश मुख्य हैं। भारतीयों द्वारा बनाए गए आधुनिक कोशों में राधाकांत देव का कई भागों में 'शब्दकल्पद्रुम' (इसका काम 1822 में शुरू हुआ तथा 1858 में पूरा हुआ), सुखानन्द झा का चार खंडों में 'शब्दार्थ चिन्तामणि' (1864-1885) तथा तारानाथ तर्कवाचस्पति का 20 भागों में 'वाचस्पत्यम्' संस्कृत-संस्कृत कोशों में अच्छे हैं। संस्कृत-अंग्रेज़ी कोशों में आप्टे (संस्कृत-अंग्रेज़ी) का कोश सर्वोत्तम है, जिसका नया संस्करण तीन भागों में (1768 पृष्ठ) छपा है। संस्कृत का सर्वोत्तम ऐतिहासिक कोश पूना में आजकल चल रहा है, जिसका एक भाग छप चुका है। इसके पूरा होने में अभी समय लगेगा किन्तु पूरा हो जाने पर, विश्व की किसी भी प्राचीन भाषा का, सभी दृष्टियों से यह सर्वोत्तम कोश होगा।

### (ख) पालि

पालि के आधुनिक कोशों ने चाइल्डर्स (पालि-अंग्रेज़ी, 1875), राइज़-डेविड-स्टेड (पालि-अंग्रेज़ी, 1925), और ट्रेंकनर-एंडर्सन-स्मिथ तथा हेंड्रिक्सेन (पालि-अंग्रेज़ी, 1924-1948) के कोश अच्छे हैं। इनमें अन्तिम सर्वोत्तम है। पालि व्यक्तिवाचक नामों का कोश 1937 में मललशेखर ने दो भागों में प्रकाशित किया। भदन्त आनन्द कौशल्यायन का पालि-हिन्दी कोश (1972) सामान्य कोटि का है।

### (ग) प्राकृत

प्राकृत के आधुनिक कोशों में हरगोविंददास त्रिकमचंद शेठ का 'पाइअ सद्द महण्णवो' (1928), विजयराजेन्द्र सूरि का 'अभिधान राजेन्द्र कोश' (1913-1975, सात भागों में, अर्धमागधी का है; यह विश्वकोश जैसा है), तथा रत्नचंद्र का अर्धमागधी कोश (1923-38, पाँच भागों में, अर्धमागधी-संस्कृत-गुजराती-हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश) मुख्य हैं।

### (घ) अपभ्रंश

अपभ्रंश (अपभ्रंश-अंग्रेज़ी-हिन्दी) का पहला कोश प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक कई वर्षों से बना रहा है। उसे पूरा होने में अभी कुछ समय लगेगा। यह उल्लेख्य है कि अपभ्रंश का अभी तक नया या पुराना कोई भी कोश प्रकाश में नहीं आया है।

## (2) फ़ारसी-परंपरा

फ़ारसी में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः पद्यबद्ध कोशों की परंपरा रही है। 13वीं सदी के अन्त में अबूनस्र फ़रही ने अरबी-फ़ारसी के एक 'निसाबुस-सिबयान' नामक कोश की रचना की थी, जो इस परंपरा का बहुत प्रसिद्ध कोश था। भारत में हिन्दी-उर्दू के जो 'बारी' नाम वाले कोश (खालिकबारी, हामिद-बारी, राज़कबारी आदि) या अल्लाखुदाई आदि अन्य छंदोबद्ध कोश बनाए गए वे इसी परंपरा में थे। यों ईरान में तथा भारत में भी इस प्रकार के पद्यबद्ध कोश मुख्यतः विद्यार्थियों के लिए बनाए जाते थे।

## (3) अरबी परंपरा

अरबी में यों तो कुछ छंदोबद्ध कोश भी बने थे, किन्तु मुख्यतः गद्य के ही कोश बने जिनमें सईदुल ख़ूरी का 'अकरबुल मवारिद' बहुत प्रसिद्ध रहा है। आगे हम देखेंगे कि इस परंपरा में भी कुछ हिन्दी कोश लिखे गए।

## (4) भारतीय भाषाओं के आधुनिक कोशों का प्रारंभ

आधुनिक भारतीय भाषाओं के आधुनिक ढंग के व्याकरण और शब्दकोश बनाने की दिशा में पहल करने का श्रेय यूरोपियों को है। ईसाई धर्म-प्रचार के लिए मिशनरियों ने, व्यापार बढ़ाने के लिए व्यापारियों के आदमियों ने, तथा साम्राज्य-स्थापन के लिए संबद्ध लोगों ने इस क्षेत्र में काम किया। हॉब्सन-जॉब्सन की भूमिका (पृ० 417) से पता चलता है कि 12 दिसम्बर 1677 को ईस्ट इंडिया क़म्पनी के डाइरेक्टरों ने अपने भारतीय कर्मचारियों को लिखा था, 'यह सूचना दी जाती है कि जो कर्मचारी फ़ारसी सीखेंगे उन्हें दस पौंड, जो इंदोस्तान भाषा सीखेंगे उन्हें बीस पौंड पुरस्कार के रूप में दिए जाएँगे।' साथ ही उन्होंने अपने अफ़सरों को यह भी निर्देश दिया था कि इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति नियुक्त किए जाएँ। यह तो बात हिन्दी या हिन्दुस्तानी की है, प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में न केवल अंग्रेज़ों एवं अन्य यूरोपियों की भी नीति कुछ इसी प्रकार की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि मुख्य-मुख्य सभी भाषाओं के व्याकरण और शब्दकोश बनने लगे। 1630 में पुर्तगालियों तथा अंग्रेज़ों के उपयोग के लिए सूरत में 'फ़ारसी-हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी-पुर्तगाली' (चार भाषाओं का) कोश बनाया गया। यह कदाचित् यूरोपियों द्वारा बनाया गया पहला कोश था। 1679 में एक पादरी प्रोएनका ने 'तमिल-पुर्तगाली' कोश बनाया। 1704 में तुरो-नेसिस ने हिन्दुस्तानी कोश, 1743 में केटेलर ने लैटिन-हिन्दुस्तानी-फ़ारसी-अरबी-कोश तथा 1773 में फ़र्ग्यूसन ने, 1785 में किर्कपैट्रिक एवं 1798 में उपजोहन का बंगला-अंग्रेज़ी कोश, 1810 में कैरे का मराठी-अंग्रेज़ी कोश, 1832 में रीव का कन्नड़-अंग्रेज़ी कोश, 1843 में सुज़न का उड़िया-अंग्रेज़ी कोश, 1846 में कोज़िम का गुजराती-अंग्रेज़ी कोश, तथा 1867 में ब्रोन्सन का असमी-अंग्रेज़ी कोश इसी परंपरा में हैं। इसके उलटे अंग्रेज़ी से भारतीय भाषाओं में भी कोश बने। उदाहरणार्थ, फ़र्ग्यूसन का अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश (1773), गिलक्राइस्ट का

अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश (1790), हैरिस का अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश (1790), पियर्सन का अंग्रेज़ी-बँगला कोश (1829), रीव का अंग्रेज़ी-कन्नड़ कोश (1824), कैनेडी का अंग्रेज़ी-मराठी कोश (1824), करन्दुन जी का अंग्रेज़ी-गुजराती कोश (1837), कटर का अंग्रेज़ी-असमी कोश (1840), तथा सुजन का अंग्रेज़ी-उड़िया कोश (1841) आदि।

ये तो थे द्विभाषिक कोश। एकभाषिक कोश भी यूरोपीय प्रभाव से लिखे गए, यद्यपि उनका प्रारंभ अपेक्षाकृत बाद में हुआ। जैसे, शील (1806), रामचंद्र विद्यावागीश (1818) तथा हलधर (1830) के बँगला-बँगला कोश, दातार (1867) का मराठी-मराठी कोश, कान्ह जी (1865) का गुजराती-गुजराती कोश तथा राधेलाल मुंशी (1873), सदासुखलाल (1876) एवं मंगलीलाल (1877) के हिन्दी-हिन्दी कोश आदि।

इस तरह भारतीय भाषाओं में द्विभाषिक तथा एकभाषिक कोशों का उद्भव और प्रारंभिक विकास यूरोप के सम्पर्क से हुआ।

### (ई) हिन्दी कोश-परंपरा : उद्भव और विकास

हिन्दी कोश-परंपरा के उद्भव और विकास में निम्नांकित का हाथ रहा है : (क) संस्कृत, फ़ारसी, अरबी तथा अंग्रेज़ी कोशों की परंपरा से प्रेरणा और उनका प्रभाव; (ख) यूरोपियों (मुख्यतः अंग्रेज़ों और पुर्तगालियों) की धर्म-प्रचार, व्यापार तथा राज्य-स्थापन के उद्देश्य से भारतीय भाषाओं को जानने की इच्छा; तथा (ग) हिन्दी की भारतीय भाषाओं में केन्द्रीय स्थिति एवं उसका विस्तृत क्षेत्र तथा इन दोनों से उद्भूत उसकी अपनी आवश्यकताएँ। उद्भव में तो नहीं, किन्तु इस सदी के प्रथम चरण में कोशों के विकास में थोड़ी-सी भूमिका बँगला भाषा के कोशों की भी रही है। यह उद्भव और विकास कई धाराओं में हुआ है जिन्हें अलग-अलग लिया जा रहा है।

### (क) फ़ारसी-परंपरा के द्विभाषिक कोश

'बारी' परंपरा के हिन्दी (उर्दू) कोश छंदोबद्ध कोशों की परंपरा में लिखे गए। यह उल्लेख्य है कि फ़ारसी में छन्दोबद्ध कोशों की परंपरा मुख्य रूप से थी तो अरबी में मुख्यतः गद्य में लिखे कोशों की। इनमें सबसे प्रसिद्ध अमीर खुसरो की 'खालिकबारी' है जो हिन्दी-फ़ारसी कोश है। यों जो अरबी तथा तुर्की शब्द फ़ारसी में चलते थे उन्हें भी इसमें दे दिया गया है। 'छन्द' तथा पर्यायों को देने का ढंग, दोनों ही दृष्टियों से अबू नस्र फ़रही के अरबी-फ़ारसी कोश 'निसाबुस्-सिबयान' तथा उसकी परंपरा इन कोशों का आदर्श रही है। 'खालिकबारी' के काल और रचयिता के सम्बन्ध में विवाद है, किन्तु रचयिता और रचनाकाल जो भी हो, यह सत्य है कि यह एक कोशग्रंथ है और इसीलिए कोशों की परंपरा में इसका अपना स्थान है। हिन्दी (उर्दू) में इस परंपरा में 'समदबारी,' 'इजदबारी,' 'अल्लाबारी,' 'वाहिदबारी,' 'राजकबारी' तथा 'हामिदबारी' आदि कई छन्दोबद्ध कोश लिखे गए और इनकी पांडुलिपियाँ विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं।

'वारी' अरबी शब्द है तथा इसका अर्थ है 'सृष्टि करने वाला' या 'भगवान'। ख़ालिकवारी के पहले छन्द 'ख़ालिकवारी सिरजनहार' के 'ख़ालिकवारी' अंश के आधार पर उस कोश को 'ख़ालिकवारी' कहने लगे और फिर उसी के सादृश्य पर अन्य कोशों के नाम 'अल्लाबारी,' 'वाहिदवारी' आदि पड़े। 'ख़ालिकवारी' में 'ख़ालिक' भी अरबी शब्द है और इसका अर्थ है 'उत्पत्ति करने वाला' (ख़ालिकबारी की रचना और उसके रचयिता पर विस्तृत विचार के लिए देखिए— परिशिष्ट (क) ख़ालिकवारी : हिन्दी का प्रथमकोश; वैसे इसके बारे में संक्षेप में हिन्दी कोशों की सूची में आगे विचार किया गया है)। इस परंपरा के 'बारी'[1] कोशों का केवल ऐतिहासिक महत्त्व है। कोशकला की दृष्टि से ये बड़े सामान्य कोटि के हैं तथा हिन्दी कोशों की परंपरा के विकास में इनका कोई भी योगदान प्रायः नहीं है। तज़ल्ली का 'अल्लाख़ुदाई' (1688) नामक कोश भी इसी परंपरा में है। तज़ल्ली ने ख़ुसरो की 'ख़ालिकबारी' को अपना आधार बनाया है जो उनकी एक पंक्ति (शाहिद अज़लुत्फ़ रहमते वारी। रुह ख़ुसरो नुमा वदम यारी) से स्पष्ट है। यह भी हिन्दी-फ़ारसी कोश है, तथा फ़ारसी में प्रचलित अरबी-तुर्की शब्द भी इसमें ले लिए गए हैं। ख़ालिकबारी की तरह ही इसकी भाषा भी फ़ारसी है। यह ख़ालिकबारी की तुलना में अधिक व्यवस्थित है। इस परंपरा का अन्तिम कोश 'पारसीपारसात' था जो आज प्राप्त नहीं है। उसका हिन्दी अनुवाद कुशल सूरी का पारसीपारसात नाममाला (1800) है, जिसमें हिन्दी (ब्रज)-फ़ारसी समानार्थी शब्द पद्यबद्ध हैं। इस अनुवाद पर संस्कृत के नाममाला कोशों का प्रभाव है, जो इसके नाम तथा इसकी वर्गीकरण-पद्धति से स्पष्ट है। इसे फ़ारसी और संस्कृत परंपरा का समन्वय भी कहा जाए तो, अत्युक्ति न होगी।

## (ख) अरबी-परंपरा के द्विभाषिक कोश

अरबी में मुख्यतः गद्य में कोश लिखने की परंपरा रही है। इस परंपरा का अन्तिम प्रसिद्ध कोश सईदुल सूरी का 'अकरबुल मवारिद' है। इस परंपरा में लुग़ात-ए-गुजरी का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। 'गुजरी' का अर्थ 'गुजराती' लगता है, किन्तु वस्तुतः है नहीं। इसमें 'गुजरी' का अर्थ 'मध्यकालीन हिन्दी' है। यह रचना अकबर के ज़माने की है। यों उस काल में हिन्दी-गुजराती का शब्द-भंडार एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं था। हाँ, व्याकरणिक रूप अवश्य भिन्न थे। इसमें फ़ारसी-अरबी-गुजरी शब्द दिए गए हैं। इस रूप में यह त्रैभाषिक कोश लगता है, किन्तु इसमें अरबी शब्द वे ही हैं जो फ़ारसी में प्रयुक्त होते हैं। ऐसी स्थिति में यह द्विभाषी-कोश है। इस परंपरा का हिन्दी का दूसरा कोश मिर्ज़ा खाँ के ग्रंथ 'तुहफ़तुल हिन्द' का 'लुग़तए हिन्दी' (1676) शीर्षक परिशिष्ट है, जो पूरे ग्रन्थ का लगभग आधा है। यह हिन्दी (मुख्यतः ब्रजभाषा)-फ़ारसी कोश है, जिसमें लगभग साढ़े तीन हज़ार हिन्दी शब्दों का अर्थ और उच्चारण

---

१. इस परंपरा के कोशों को 'वारी कोश' नाम मैंने दिया है। इसका आधार यह है कि अधिसंख्य के नाम के साथ 'वारी' शब्द आया है।

फ़ारसी में समझाया गया है। मीर अब्दुल वासे 'हाँसवी' का 'ग़रायबुल लुग़ात' (लगभग 1680) है। इस हिन्दी-फ़ारसी कोश में हिन्दी के केवल उन शब्दों को लिया गया है, जो फ़ारसीवालों के लिए कठिन थे। इसमें भी उच्चारण के संकेत हैं। अन्तिम प्राप्त कोश आरज़ू का 'नवादिरुल अलफ़ाज़' (1751) है जो 'ग़रायबुल लुग़ात' का ही संशोधित-परिवर्धित रूप है।

आगे एकभाषिक, द्विभाषिक, पर्याय, अनेकार्थी, पारिभाषिक, व्यक्ति तथा कृति, मुहावरा, लोकोक्ति, चरित्र, विषय, विश्व, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत हिन्दी कोशों पर विचार किया जा रहा है।

## (ग) एकभाषिक अथवा हिन्दी-हिन्दी कोश

एकभाषिक अथवा हिन्दी-हिन्दी कोशों से आशय है, हिन्दी के ऐसे कोश, जिनमें हिन्दी शब्दों का अर्थ हिन्दी में ही समझाया गया हो। संस्कृत में समानार्थक और अनेकार्थक, दो ही प्रकार के कोशों की परंपरा प्रायः मिलती है। संस्कृत शब्दों के संस्कृत में ही अर्थ समझाने की परंपरा यदि कुछ मिलती भी है, तो यास्क के निरुक्त या व्याख्या एवं टीका ग्रन्थों में या फिर इधर आधुनिक काल के कोशों में। आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी ऐसे कोशों की परंपरा बहुत पुरानी नहीं मिलती। यूरोपीय संपर्क के बाद—जिसका आशय यह है कि उसके प्रभाव-स्वरूप—यहाँ ऐसे कोशों का विकास हुआ है। हिन्दी के ऐसे कोशों की परंपरा 19वीं सदी में प्रारंभ हुई। इस प्रकार के कुछ प्रारंभिक प्रयास निम्नांकित हैं। कोष्ठक में प्रकाशन-काल है।

(1) हिन्दवी भाषा का कोश (1829 ई०)—आदम, (2) हिन्दी कोष (1871 ई०)—बुक एंड लिटरेचर सोसाइटी, कलकत्ता, (3) शब्द-कोष (1873 ई०)—राधेलाल मुंशी, गया, (4) कोष-रत्नाकर (1876 ई०)—सदासुखलाल, (5) मंगलकोष (1877 ई०)—लाला मंगलीलाल, (6) देवकोष (1883 ई०, दूसरा संस्करण)—देवदत्त तिवारी, (7) कैसर कोष, (1885 ई०)—कैसर बख्श मिर्ज़ा, इलाहाबाद, (8) मधुसूदन निघंटु (1887 ई०)—मधुसूदन पंडित, लाहौर, (9) विवेक कोश (1892 ई०)—बाबा बैजूदास, बाँकीपुर, (10) भाषा कोष (1898 ई०, चतुर्थ संस्करण)—मूलचन्द शर्मा, (11) गौरी नागरी कोष (1901 ई०)—गौरीदत्त, (12) श्रीधर-भाषा कोष (1903 ई०, दूसरा संस्करण)—श्रीधर, (13) हिन्दी शब्दार्थ-पारिजात, (1914)—द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।

हिन्दी में, इस प्रकार के एक अच्छे और व्यवस्थित कोश बनाने का निर्णय सर्वप्रथम नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने 1893 ई० में किया। वहाँ कुछ काम भी शुरू हो गया, किन्तु 1904 में सभा के अधिकारियों को पता चला कि कलकत्ते की हिन्दी साहित्य-सभा हिन्दी का एक बड़ा कोश बनाने जा रही है, और वहाँ कुछ काम भी आरंभ हो गया है। सभा ने अन्त में अपने द्वारा कराया गया काम हिन्दी साहित्य-सभा को दे देने का निश्चय किया, किन्तु कलकत्ते में व्यवस्थित रूप से कुछ हो नहीं पाया, अतः कुछ वर्षों तक प्रतीक्षा करने के बाद सभा फिर इस

दिशा में सक्रिय हुई। 23 अगस्त, 1907 को रेवरेंड ई० ग्रीव्ज ने सभा की कार्यकारिणी में हिन्दी के एक वृहत् कोश बनाने का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव पारित हो गया, 1908 में कार्य शुरू हुआ, और अन्त में श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, रामचन्द्र वर्मा आदि सात विद्वानों के संपादकत्व में 'हिन्दी शब्द सागर' नाम से यह कोश चार खंडों (1916, 1920, 1925, 1928) में प्रकाशित हुआ। विशालता और कोशकला दोनों ही दृष्टियों से भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह पहला कोश था, तथा शब्द-चयन, अर्थ, उदाहरण, व्युत्पत्ति आदि की दृष्टि से अनेक कमियों के बावजूद, उस समय ऐसे कोश का बन जाना हिन्दी के लिए कम गौरव की बात नहीं थी। बाद में इसके संक्षिप्त, लघु, लघुतर आदि कई संस्करण प्रकाशित हुए। इनमें मूलतः रामचन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' (1933) विशालता की दृष्टि से छोटा होते हुए भी कोशकला की दृष्टि से 'हिन्दी शब्द सागर' से भी अच्छा है। इधर इसके संशोधित और परिवर्धित अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं।

1933 के पूर्व प्रकाशित होने वाले कोशों में, सामान्य होते हुए भी द्वारकाप्रसाद शर्मा का 'शब्दार्थ पारिजात' (1919 ?), रामनरेश त्रिपाठी का 'हिन्दी शब्द कल्पद्रुम' (1925) तथा मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव का 'हिन्दी शब्द संग्रह' (1930) उल्लेख्य हैं।

1933 के बाद 'हिन्दी शब्द सागर' एवं 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' के आधार पर थोड़े-बहुत परिवर्तन-परिवर्धन के साथ कई कोश प्रकाशित हुए जिनमें प्रमुख निम्नांकित हैं :

(1) भाषा शब्द कोष—डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', 1936, इलाहाबाद, (2) प्रामाणिक हिन्दी कोष—रामचन्द्र वर्मा, 1949, बनारस, (3) हिन्दी राष्ट्र भाषा कोष—विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त,' इलाहाबाद, (4) भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोष—रामचन्द्र पाठक, 1950, बनारस, (5) *नालन्दा विशाल शब्द-सागर—नवलजी, 1950*, पटना, (6) प्रचारक हिन्दी शब्दकोष—*लालधर त्रिपाठी प्रवासी*, 1950, बनारस, (7) वृहद् हिन्दी कोश—कालिकाप्रसाद श्रीवास्तव तथा अन्य, 1952, बनारस, (8) भारतीय हिन्दी कोश—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, 1956 मद्रास।

उपर्युक्त कोशों में सबसे महत्त्वपूर्ण है रामचन्द्र वर्मा का 'प्रामाणिक हिन्दी कोश'। वर्मा जी 'हिन्दी शब्द सागर' के संपादकों में एक हैं, और इस दिशा में लगभग 1909 से कार्य करते रहे हैं। उन्होंने अपने इस दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर इस कोश की रचना की है। प्रस्तुत कोश आकार-प्रकार में बहुत बड़ा नहीं है, किन्तु शब्द-चयन, व्युत्पत्ति, अर्थ, परिभाषाएँ, व्याख्या आदि की दृष्टि से इसमें पूर्ववर्ती कोशों की तुलना में स्पष्ट विकास दिखाई पड़ता है। दो वर्ष बाद 1951 में इसका दूसरा संशोधित और परिवर्धित संस्करण निकला, जो और भी अच्छा है। सच पूछा जाय तो इस कोश में यदि कुछ त्रुटियाँ हैं, तो केवल व्युत्पत्ति और अर्थ-क्रम की दृष्टि से। अर्थ-क्रम में त्रुटि से हमारा आशय यह है कि उसमें अर्थों को न तो वर्णनात्मक कोशों की भाँति प्रयोगाधिक्य के आधार

पर क्रम दिया गया है, और न ऐतिहासिक कोशों की भाँति काल-क्रम के आधार पर। मनमाने ढंग से अर्थों को क्रम देना वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। अन्य कोशों में 'वृहद् हिन्दी कोश' भी अपेक्षाकृत कुछ अच्छा है। यों इसमें ऐसे भी अनेक शब्द भर दिए गए हैं, जो न तो हिन्दी में कभी प्रयुक्त हुए हैं, और न कभी जिनके प्रयुक्त होने की संभावना ही है।

10-12 वर्ष पूर्व सम्मेलन ने एक कोश का काम प्रारंभ करवाया था (इन पंक्तियों का लेखक कुछ दिनों तक, उस विभाग का प्रधान था) जो बाद में रामचन्द्र वर्मा द्वारा संपादित होकर 'मानक हिन्दी कोश' के रूप में पाँच भागों में (1962, 1962, 1963, 1964, 1965) छपा है। इसमें पूर्ववर्ती कोशों की तुलना में सामग्री अधिक है, और विस्तार भी है, किन्तु व्युत्पत्ति, अर्थ आदि की वैज्ञानिक दृष्टि से 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' की तुलना में यह कोश भी बहुत आगे नहीं बढ़ पाया है।

'हिन्दी-हिन्दी' अथवा एकभाषिक हिन्दी कोशों के पूरे इतिहास को प्रथम काल (1829-1914), द्वितीय काल (1915-1928), तृतीय काल (1933-अब तक) में बाँटा जा सकता है। स्पष्ट ही प्रथम काल प्रयास-काल है। इसमें आदम का 'हिन्दवी भाषा का कोष' (1829) संकलन, प्रविष्टि, व्याकरण, अर्थ आदि की दृष्टि से काफ़ी अच्छा है। चतुर्वेदी जी का हिन्दी शब्दार्थ-पारिजात भी सभी दृष्टियों से अच्छा बन पड़ा है। इस तरह इस काल का प्रथम और अन्तिम—ये ही दो कोश विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। दूसरे काल में उल्लेख्य कृति एक ही है: हिन्दी शब्द-सागर, जो सभी दृष्टियों से पूर्वकाल के कोशों से बहुत अच्छी है। तीसरे काल में संक्षिप्त शब्दसागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश (वर्मा), भाषा शब्द-कोश (रसाल), हिन्दुस्तानी कोश (त्रिपाठी), भारतीय हिन्दी कोश (द० भा० हिन्दी प्रचार सभा), तथा मानक हिन्दी कोश (वर्मा) उल्लेख्य हैं। इनमें सबसे अच्छे वर्मा जी के ही दोनों कोश हैं, किन्तु अभी हिन्दी कोशों को शब्द-संकलन, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग तथा चित्र के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ना है, यदि वे अंग्रेज़ी, रूसी आदि के कोशों से टक्कर लेना चाहते हैं।

### (घ) द्विभाषिक हिन्दी कोश

अन्य भाषाओं के द्विभाषिक कोशों की तरह हिन्दी के द्विभाषिक कोश भी दो प्रकार के हैं: (क) हिन्दी-अन्य भाषा, (ख) अन्य भाषा-हिन्दी।

इन कोशों के विकास को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है: (1) आदि काल (प्रारम्भ से 1800 तक); मध्यकाल (1800-1900 तक); आधुनिक काल (1900-अब तक)।

(i) आदि काल : हिन्दी-अन्य भाषा—इस काल में कुल लगभग एक दर्जन कोश बने जिनमें मुख्य छः हिन्दी-फ़ारसी, चार हिन्दी-अंग्रेज़ी, तथा दो हिन्दी-मलयालम हैं। हिन्दी का पहला-द्विभाषी कोश खालिकबारी है जिसे कुछ लोग अमीर खुसरो का मानते हैं, कुछ लोग किसी परवर्ती व्यक्ति का तथा कुछ लोग मूलत: खुसरो का मानते हैं किन्तु उनका कहना है कि इसमें बहुत परिवर्तन हो

गया है। मेरे विचार में यह खुसरो की रचना है क्योंकि प्राचीन काल से ऐसे प्रमाण मिलते हैं। तज्ल्ली ने अपने हिन्दी-फ़ारसी कोश (1650 ई०) में तथा खान आरज़ू ने खुसरो के नाम के साथ इसका उल्लेख किया है। हाँ, इसमें परिवर्तन अवश्य हुए जो इसकी भाषा से स्पष्ट है। यों अमीर खुसरो की रचना हो या न हो, यह हिन्दी का प्राचीनतम कोश है, और इसके महत्त्व की दृष्टि से इतना पर्याप्त है। (विस्तार के लिए, देखिए—परिशिष्ट (क) खालिकबारी : हिन्दी का प्रथम कोश) खालिकबारी में 475 हिन्दी शब्दों के 480 फ़ारसी, 236 अरबी तथा चार तुर्की पर्याय दिए गए हैं। मेरे विचार में फ़ारसी जानने वालों को हिन्दी के बोलचाल के शब्द सिखाने के लिए इस हिन्दी-फ़ारसी कोश की रचना हुई। सामान्यतः ठीक है, किन्तु ग़लतियाँ भी हैं। हिन्दी 'काना' को फ़ा० में 'कोर' कहा गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ अन्धा होता है। इस कोश में पर्याय ही हैं, व्याख्याएँ नहीं।

दूसरा कोश मिर्ज़ा खाँ का तुहफ़तए हिन्दी (1675) है जिसमें 3500 हिन्दी शब्दों की फ़ारसी व्याख्या या पर्याय हैं। हिन्दी शब्दों के उच्चारण के भी संकेत हैं। सब मिलाकर खालिकबारी की तुलना में यह बहुत अच्छा है।

औरंगज़ेब के काल में मीर अब्दुलवासे हाँसवी ने 'ग़रायबुल लुग़ात' की रचना की। इसमें हिन्दी के उन अल्पप्रयुक्त शब्दों (ग़रायबुल) के अर्थ और उच्चारण-संकेत हैं जो उस काल के फ़ारसी दाँनों के लिए कठिन थे।

हिन्दी-अंग्रेज़ी कोशों में फ़र्गुसन (1773), किर्क पैट्रिक (1785), हैरिस (1790) तथा गिलक्राइस्ट (The Oriental Linguist, लगभग एक हज़ार हिन्दी शब्दों को अंग्रेज़ी में अर्थ) के कोश आते हैं। इनमें अन्तिम सर्वोत्तम है।

हिन्दी-मलयालम कोशों में दो ताड़पत्र पर मिले हैं, जो अमरकोश की तरह विषयानुसार वर्गीकृत हैं। लेखक, नाम तथा काल अज्ञात हैं। लगभग तीन हज़ार शब्द इनमें हैं। दोनों अधूरे हैं तथा 18वीं सदी उत्तरार्ध के लगते हैं।

अन्य भाषा-हिन्दी—इसमें केटेलर का लैटिन-हिन्दुस्तानी कोश (1743), तथा फ़र्गुसन (1773), गिलक्राइस्ट (1790), हैरिस (1790) आदि के अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश आते हैं। इनमें गिलक्राइस्ट का सबसे अच्छा है।

(ii) मध्यकाल : हिन्दी-अन्य भाषा : हिन्दी-अंग्रेज़ी—लगभग 20 कोश छपे- जिनमें मुख्य चार हैं : टेलर (1808), शेक्सपीयर (1817), फ़ैलन (1880), तथा प्लाट्स (1884) के। शेक्सपीयर का 70 हज़ार शब्दों का तथा बहुत व्यवस्थित है। प्लाट्स इन सभी में, सभी दृष्टियों (वर्तनी, व्युत्पत्ति, अर्थ, शब्द-संख्या) सर्वोत्तम है। फ़ैलन की विशेषता है लोक शब्दों का संकलन। इस प्रकार शेक्सपीयर, फ़ैलन तथा प्लाट्स ने हिन्दी कोशकला को बहुत आगे बढ़ाया। प्लाट्स तो आज भी हिन्दी-अंग्रेज़ी का एक बहुत अच्छा कोश माना जाता है। हिन्दी-फ्रांसीसी—दो कोश : तासी (1849), लेखक का नाम अज्ञात (1875), पेरिस से इसका कुछ भाग छपा था। हिन्दी-पुर्तगाली—एक कोश : होमम (1874) का। ये सभी सामान्य कोटि के हैं।

अन्य भाषा-हिन्दी : अंग्रेज़ी-हिन्दी : लगभग बीस कोश निकले जिनमें

आदम (1829), थॉमस (1838), ग्रोव (1865), फैलन (1883; इसमें लोकोक्तियाँ-मुहावरे काफ़ी हैं) तथा ग्रांट (1859) के मुख्य हैं। एक फ़ारसी-हिन्दी (हिन्दुस्तानी प्रेस, कलकत्ता 1808), एक ग्रीक-हिन्दी (हूपर तथा कतवारी लाल, वाइविल की नई पोथी के ग्रीक शब्दों का) तथा एक उर्दू-हिन्दी (चिरंजीलाल, वंशीधर, 1866) कोश भी छपे, किन्तु ये सभी सामान्य कोटि के हैं।

(iii) आधुनिक काल—इस काल में हिन्दी के छोटे-बड़े लगभग सौ द्विभाषिक कोश प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी-अन्य भाषा : (अंग्रेज़ी, असमी, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, गुजराती, तमिल, तेलुगु, बँगला, मराठी, मलयालम, पंजाबी, सिन्धी, संस्कृत, चीनी, रूसी, जर्मन, जापानी आदि)। इनमें महेन्द्र चतुर्वेदी तथा भोलानाथ तिवारी का व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश काफ़ी अच्छा माना जा रहा है। छोटे कोशों में शिवेन्द्रकिशोर वर्मा तथा रमानाथ सहाय का भी अच्छा है।

अन्य भाषा-हिन्दी : राजस्थानी, अवधी, मैथिली, बुन्देली, ताजुज्बेकी, मगही आदि बोलियों तथा संस्कृत, पालि, प्राकृत, असमी, बँगला, उड़िया, मराठी, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, अंग्रेज़ी, जर्मन, जापानी, रूसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कोश प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें बुल्के का अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश ठीक हिन्दी पर्याय या अभिव्यक्ति की दृष्टि से सर्वोत्तम है। यों सत्यप्रकाश (सम्मेलन), तथा बाहरी के कोश भी इस दृष्टि से अच्छे हैं कि उनमें अधिक अंग्रेज़ी शब्दों को सम्मिलित किया गया है। यों अभी तक अन्य भाषा-हिन्दी का कोई ऐसा कोश नहीं आया है जिसमें पूरे हिन्दी प्रदेश के मानकोचित शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों को स्थान दिया गया हो।

समवेततः अंग्रेज़ी, रूसी आदि के स्तर के 'अन्य भाषा-हिन्दी' तथा 'हिन्दी-अन्य भाषा कोश' बनने अभी शेष हैं। ऐसे कोश एक व्यक्ति द्वारा नहीं बन सकते। उनके लिए विशेषज्ञों का दल चाहिए, किन्तु अभी तक हिन्दी में सच्चे अर्थों में दलीय कार्य का श्रीगणेश नहीं हुआ है।

हिन्दी के द्विभाषिक कोशों की एक संक्षिप्त सूची यहाँ देखी जा सकती है :

(1) खालिकबारी—इसको कुछ लोग अमीर खुसरो की रचना मानते हैं और कुछ लोग उसे और बाद के किसी खुसरो शाह की रचना मानते हैं। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि यह हिन्दी से संबद्ध पहला कोश है जिसमें फ़ारसी शब्दों के हिन्दी पर्याय दिए गए हैं। कहीं-कहीं अरबी तथा कुछ स्थानों पर तुर्की शब्दों के भी हैं। इसके हिन्दी में मुख्यतः दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। एक सभा का तथा दूसरा मेरा। कोश अपने समय को देखते हुए अच्छा है और इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। हाँ, आज की दृष्टि से प्रविष्टि-चयन तथा पर्याय-चयन दोनों ही दोषपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए—हिन्दी 'काना' के लिए फ़ारसी 'कोर' दिया गया है, जबकि फ़ा० 'कोर' का अर्थ 'अंधा' है। (2) लुग़तए हिन्दी—मिर्जा खाँ, रचनाकाल लगभग 1675 ई०। यह कोश मिर्जा खाँ के प्रसिद्ध ग्रंथ 'तुहफ़तुल हिन्द' का परिशिष्ट है। इसमें लगभग 3500 हिन्दी शब्दों की फ़ारसी में व्याख्या है, या उन्हें अरबी-फ़ारसी पर्यायों द्वारा स्पष्ट किया गया है। हिन्दी शब्दों के उच्चारण के संकेत भी हैं। आधुनिक अर्थों में इसे हिन्दी का प्रथम कोश कहा

जाय तो अत्युक्ति न होगी।(3) **ग़रायबुल लुग़ात**—मीर अब्दुल वासे हाँसवी, रचना-काल औरंगज़ेब का शासन-काल (1680 के लगभग)। इसमें हिन्दी के ऐसे शब्दों को लिया गया है, जो उस काल के फ़ारसी के विद्वानों के लिए कठिन या अज्ञात थे। पूर्ववर्ती कोश की तरह ही इसमें भी उच्चारण के संकेत हैं। (4) **अल्ला खुदाई**—इसके रचयिता का नाम तजल्ली है। रचना 1688 ई० में हुई थी। इस त्रिभाषी-कोश में हिन्दी-अरबी-फ़ारसी के समानार्थी शब्द साथ-साथ दिए गए हैं। (5) **नवादिरुल अलफ़ाज**—सिराजुद्दीन अली खाँ 'आरज़ू', रचनाकाल 1751। यह हाँसवी के उपर्युक्त कोश का संशोधित एवं परिवर्धित रूप है। (6) **पारसीपारसात नाममाला**—कुशल सूरी। रचनाकाल 1800। इसमें हिन्दी (व्रज) एवं फ़ारसी के समानार्थी शब्द छन्दबद्ध किए गए हैं। यह कोश कदाचित् किसी पूर्ववर्ती फ़ारसी कोश पर आधारित है। 1800 के बाद हिन्दी-फ़ारसी कोशों की परंपरा आगे नहीं बढ़ी, क्योंकि धीरे-धीरे फ़ारसी का प्रचार कम होता गया।

## हिन्दी-यूरोपीय तथा जापानी आदि भाषाएँ

इस श्रेणी के कोश अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित एवं उपयोगी हैं। इनमें अधिकांश अंग्रेज़ी के हैं, अन्यों (लैटिन, फ्रांसीसी, पुर्तगाली तथा रूसी) के एक-दो ही हैं, अतः इन्हें भाषानुसार न लेकर केवल कालानुसार लिया जा रहा है।

(1) **हिन्दुस्तानी भाषा का कोश**—फ्रांसिस्कस एम० तुरोनेसिस। यह 1704 में लिखा गया था और 1761 तक रोम के पुस्तकालय में था। अब इसका कहीं पता नहीं है। (2) इस प्रसंग में जान जोशुआ केटेलर के प्रसिद्ध ग्रंथ (लैटिन में लिखित तथा 1743 में प्रकाशित) का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें कुछ धार्मिक विषयों के साथ-साथ हिन्दुस्तानी व्याकरण, फ़ारसी-व्याकरण, लैटिन-हिन्दुस्तानी-फ़ारसी धातु-पाठ, लैटिन-हिन्दुस्तानी-फ़ारसी-अरबी शब्द-कोश तथा हिन्दुस्तानी के समोच्चारणयुक्त कुछ शब्दों का संग्रह आदि है। यों इसका शब्द-कोशवाला भाग बहुत सामान्य है। (3) **हिन्दुस्तानी कोश** (A Dictionary of Hindustani Language)—जॉन फ़र्ग्युसन्, 1773 ई०, लंदन। इसमें अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी तथा हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी दो भाग हैं। (4) **हिन्दुस्तानी कोश**—विलियम किर्कपैट्रिक, 1785, लंदन। इस कोश का वास्तविक नाम (A Vocabulary of Persian, Arabic, English) है, किन्तु इसमें वे ही अरबी-फ़ारसी के शब्द लिए गए हैं, जो हिन्दुस्तानी में उस काल में प्रचलित थे। इसमें तत्सम तथा तद्भव शब्द नहीं हैं। (5) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश** (Dictionary, Hindustany and English)—हेनरी हैरिस, 1790, मद्रास। (6) **शब्द-समूह : हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी** (Vocabulary Hindustani and English)—गिलक्राइस्ट, 1798 ई०, कलकत्ता। यह कोश 'दि ओरिएन्टल लिंग्विस्ट' नाम से छपा था। इसमें लगभग 1000 शब्द हैं। (7) 1800 में टी० राबर्ट्स का कोश (An Indian glossary consisting some 1000 words and terms used in East Indies) लंदन से प्रकाशित हुआ। इसमें

कुछ हिन्दी शब्द भी हैं। (8) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary : Hindoostanee and English)—कैप्टेन जॉसेफ़ टेलर, 1808, कलकत्ता। दो भागों का यह बड़ा कोश मूलतः टेलर ने अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए बनाया था। बाद में विलियम हंटर ने फ़ोर्ट विलियम कालिज के अध्यापकों की सहायता से इसे संशोधित और परिवर्द्धित करके प्रकाशित किया। 1820 में कारमाइकेल ने इसका एक संक्षिप्त संस्करण लंदन से प्रकाशित करवाया था। (9) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश**—रूसो, 1812। (10) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary : Hindoostani and English)—जॉन शेक्सपीयर, 1817, लंदन। उस समय तक के सभी कोशों एवं पर्याप्त मौलिक सामग्री के आधार पर संपादित, लगभग 70 हज़ार शब्दों का यह कोश हिन्दी का प्रथम सुव्यवस्थित कोश है। 1849 तथा 1870 में इसके अन्य संस्करण हुए। इसमें तत्सम तथा तद्भव शब्द नागराक्षर में हैं। शब्दों के प्रारंभ में इस बात के भी संकेत हैं (जैसे P=फ़ारसी, A=अरबी, H=हिन्दी) कि शब्द मूलतः किस भाषा का है। इस तरह हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति का इसमें प्रथम प्रयास है। (11) **हिन्दी कोश** (Hindi Dictionary)—आदम, 1829, कलकत्ता। नागराक्षरों में छपा (सभी शब्द) यह प्रथम कोश है। शब्द-संख्या लगभग 20,000 है। (12) **उर्दू-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary of Oordoo and English)—जे० टी० थामसन, 1838, सिरामपुर। इसमें हिन्दी शब्द भी पर्याप्त हैं तथा नागराक्षर का भी प्रयोग हुआ है। (13) **भारतीय शब्दावली** (A Glossary of Indian Terms)—एच्० एम्० इलिअट, 1845, आगरा। (14) **हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary in Hindi and English)—थामसन, 1846, कलकत्ता। द्वितीय संस्करण 1870। शब्द-संख्या लगभग 30,000 है। (15) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary, Hindustany and English)—डब्ल्यू० येट्स, 1847, कलकत्ता। (16) **हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary, Hindustani and English)—डंकन फोर्ब्स, 1848, लंदन; दूसरा संस्करण, 1858। (17) **उर्दू-अंग्रेज़ी शब्द-समूह** (Urdu-English Vocabulary)—1860, बनारस। इसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। (18) **बाइबिल की नई पोथी तथा भजनों का हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी शब्द-समूह** (Glossary : Hindustani and English to the New Testament and Psalms)—मेथर (Mathor), 1861, लंदन। (19) **उर्दू-हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्द-समूह** (Urdu-Hindi-English Vocabulary)—रईद (Raid), 1868, इलाहाबाद। (20) **हिन्दुस्तानी-पुर्तगाली कोश**—पोलोमेरिस होमम, 1874, असागांव, बम्बई। यह कोश पुर्तगाली में है। (21) **हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश** (Hindi-English Dictionary)—जे०-डी० बेट्स, 1875। (22) **हिन्दुस्तानी-फ्रांसीसी कोश**—1875 में पेरिस से इस कोश का कुछ अंश छपा था। (23) **उर्दू-हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश** (A Dictionary of Urdu, classical Hindi and English)—प्लाट्स, 1884, लंदन। हिन्दी और उर्दू का यह कोश पर्याप्त बड़ा, बहुत उपयोगी तथा कोशकला की दृष्टि
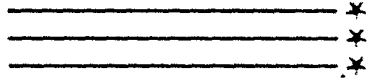
से रचनाकाल को देखते हुए अत्यन्त वैज्ञानिक है। शब्दों के उच्चारण के साथ, अपेक्षाकृत, कुछ विस्तार से इसमें व्युत्पत्ति देने का प्रयास है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के अद्यावधि छपे कोशों में आज भी इसका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी या उर्दू के अंग्रेज़ी कोशों में यह सबसे अच्छा है। इधर मास्को तथा लंदन से इसका पुनर्मुद्रण हुआ है। (24) हाव्सन-जाव्सन—हेनरी यूल तथा ए० सी० बर्नेल, 1886, लंदन। कोश का पूरा नाम है—A Glossary of Anglo-Indian Colloquial Words and Phrases and of Kindered terms—किन्तु सामान्यतः इसे हाव्सन-जाव्सन कहते हैं। यह हिन्दी का कोश तो नहीं है, किन्तु इसमें अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी के भी बहुत-से शब्द हैं। इन शब्दों की व्युत्पत्ति एवं यूरोपियनों द्वारा लिखित साहित्य में इन शब्दों के प्राचीन प्रयोगों की दृष्टि से यह कोश बड़ा ही उपयोगी है। (25) हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश (Hindustani-English Dictionary)—थामस क्रैवेन 1911 (संशोधित संस्करण), लखनऊ। (26) त्रैभाषिक विश्वकोश—पं० रामस्वरूप, 1915। यह विश्वकोश न होकर हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेज़ी शब्दकोश है। यों इसकी गणना हिन्दी-संस्कृत कोशों में भी की जा सकती है। (27) भार्गव हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश (Bhargav's Standard Illustrated Dictionary of the Hindi Language)—रामचन्द्र पाठक, 1946, बनारस। अन्त में कहावत कोश भी है। (28) हिन्दी-रूसी कोश—वेस्क्रोव्नी, 1953, मास्को। (29) हिन्दी-इंगलिश-सिंधी शब्द-कोश—दीपचन्द त्रिलोकचन्द तथा अन्य, 1962, अजमेर। (30) व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश—चतुर्वेदी, तिवारी, 1970, दिल्ली। (31) हिन्दी-जापानी कोश—डॉ० दोई, टोकियो।

हिन्दी भाषा के इन यूरोपीय कोशों में पुरानों में शेक्सपीयर तथा प्लाट्स के हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश तथा नयों में वेस्क्रोव्नी का हिन्दी-रूसी कोश अपेक्षाकृत काफ़ी अच्छे हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से हाव्सन-जाव्सन भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। नये में चतुर्वेदी-तिवारी भी अच्छा कहा जाता है।

## हिन्दी-अन्य भारतीय भाषा

हिन्दी के विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रमुख कोश अधोलिखित हैं :

**हिन्दी-संस्कृत :** (1) त्रैभापिक विश्वकोश—पं० रामस्वरूप, 1915, यह विश्वकोश न होकर मझोले आकार का हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश है। (2) श्रीकोप—केदारनाथ शर्मा, 1940, बनारस। (3) आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश—रामस्वरूप शास्त्री, 1957, बनारस। यह कोश अपेक्षाकृत अच्छा है।

**हिन्दी-उर्दू :** (1) हिन्दी-उर्दू कोप—गौरीशंकर शर्मा, 1901। (2) हिन्दी-उर्दू लुग़त—अबू मुहम्मद।

**हिन्दी-पंजाबी :** हिन्दी-पंजाबी कोश—पंजाबी विभाग, पटियाला, 1953। यह कोश काफ़ी बड़ा और अच्छा है।

**हिन्दी-गुजराती :** हिन्दी-गुजराती कोश—मगन भाई प्रभुदास देसाई, 1939

अहमदाबाद। अच्छा और बड़ा कोश है। इसके कई संस्करण (1946, 1956) प्रकाशित हो चुके हैं।

**हिन्दी-सिन्धी** : हिन्दी-इंगलिश-सिंधी शब्दकोश—दीपचन्द त्रिलोकचन्द तथा अन्य, 1962, अजमेर।

**हिन्दी-मराठी** : (1) हिन्दी-मराठी कोष—नारायण तमना जी कटगरे, 1929। (2) हिन्दी-मराठी कोश—कातगडे, 1937, बेलगाँव। (3) हिन्दुस्तानी-मराठी शब्दकोश—गो० प० नेने, 1939। (4) हिन्दी-मराठी व्यवहार कोश—रामचन्द्र पाठक। (5) हिन्दी-मराठी शब्दकोश—गो० प० नेने तथा श्रीपाद जोशी, 1948, पूना। इसका पहला संस्करण और पहले, तथा तीसरा 1956 में हुआ। (6) हिन्दी-मराठी व्यवहार कोश—गणेश रघुनाथ वैशंपायन, 1949, पूना। (7) राष्ट्रभाषा हिन्दी-मराठी कोश—कृष्णलाल वर्मा, राहामन बाई पेणकर 1951, बम्बई। इनमें पाँचवाँ तथा सातवाँ अधिक अच्छे हैं।

**हिन्दी-बँगाली** : (1) हिन्दी-बँगला कोश—ईश्वरीप्रसाद शर्मा, 1915। (2) हिन्दी-बँगला अभिधान—गोपालचन्द्र, कलकत्ता।

**हिन्दी-असमिया** : हिन्दी-असमिया राष्ट्रभाषा अभिधान—छगनलाल जैन।

**हिन्दी-ओड़िया** : हिन्दी-ओड़िया शब्दकोश—कुमारी नीहार पात्र, 1951, कटक।

**हिन्दी-तमिल** : (1) हिन्दी-तमिल कोश—हरिहर शर्मा, 1925, मद्रास। (2) हिन्दी-तमिल कोश—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, 1959, मद्रास।

**हिन्दी-तेलुगु** : (1) हिन्दी-तेलुगु कोश—शिवन्न शास्त्री, 1922। (2) हिन्दी-तेलुगु कोश—दक्षिण भारत प्रचार सभा, 1950, मद्रास (चौथा संस्करण)।

शिवन्न शास्त्री के उपर्युक्त कोश को 1940 में ओरुगंटि वेंकटेश्वर ने संवर्द्धित करके प्रकाशित किया था। उसी को सुधार कर सभा ने इस रूप में छापा है। इसके एकाधिक संस्करण निकल चुके हैं।

**हिन्दी-कन्नड़** : (1) हिन्दी-कन्नड़ रत्न कोश—जे० डी० मैसाले। (2) हिन्दी-कन्नड़ कोश—म० व० जम्बुनाथन, 1939, बंगलोर। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं, और काफ़ी अच्छा कोश है। (3) संक्षिप्त हिन्दी-कन्नड़ कोष—म० व० जम्बुनाथन, 1939, बंगलोर, दू० सं० 1949। (4) हिन्दी-कन्नड़ कोश—दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, 1950, मद्रास। (5) हिन्दी-कन्नड़ कोष—सिद्धनाथ पंत, 1950, मद्रास।

**हिन्दी-मलयालम** : (1) हिन्दी-मलयालम कोश—दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, मद्रास। (2) हिन्दी-मलयालम कोश—न० राघवन नायर, 1950, एर्नाकुलम। अच्छा कोश है। (3) आधुनिक हिन्दी-मलयालम संक्षिप्त शब्द-कोश—श्री रामविलासम प्रेस, 1951, कोइलोण। (4) हिन्दी-मलयालम बृहत् शब्द-कोशम—पि० के० गोपाल पिल्ले, 1954, कोल्लम। इसका नाम तो बृहत् है, किन्तु यह है केवल 159 पृष्ठों का। (5) हिन्दी-मलयालम-अंग्रेजी-कोश—पी० कृष्णन नायर, त्रिवेन्द्रम।

### (ङ) ग्रन्य भाषा-हिन्दी

ग्रनेक ग्रन्य भापाग्रों के भी कोश हिन्दी में वने हैं, जिन्हें भाषानुसार नीचे दिया जा रहा है।

### भारतीय भाषा-हिन्दी

**संस्कृत-हिन्दी :** (1) संस्कृत-हिन्दी कोप—द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, लखनऊ, 1917। (2) सरस्वती कोश—जीवाराम शर्मा, 1918। (3) युगल कोश—जी० डी० व्यास, इलाहावाद, 1921। (4) पद्मचन्द्र कोश—गणेशदत्त शास्त्री, लाहौर, 1925। (5) संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ—द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, इलाहावाद, 1928, द्वि० सं० 1957। (6) संस्कृत कोष सुधा—रामसुन्दर शर्मा, 1954, राँची। (7) संस्कृत-हिन्दी कोश—(ग्राप्टे के प्रसिद्ध कोश का हिन्दी ग्रनुवाद), दिल्ली 1966।

इनमें चौथे, पाँचवें ग्रौर सातवें ग्रच्छे हैं। संस्कृत-हिन्दी का कभी एक 'चतुर्वेदी कोश' भी छपा था।

**प्राकृत-हिन्दी :** (1) पाइग्र सद्द महण्णवो—हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द शेठ, 1928, कलकत्ता; द्वि० सं० 1964, वनारस। (2) पाइग्र लच्छी नाममाला—वेचरदास जीवदास जोशी, 1960, वम्वई। प्रथम कोश वहुत ग्रच्छा है।

**उर्दू-हिन्दी :** (1) उर्दू-हिन्दी-ग्रंग्रेज़ी शब्द-समूह (Urdu-Hindi-English Vocabulary)—चिरंजीलाल, वंशीधर, 1866, इलाहावाद। (2) भगीरथी कोष—दीनानाथ कौल, 1913। (3) हिन्दुस्तानी कोप—रामनरेश त्रिपाठी, 1931। (4) उर्दू-हिन्दी कोश—ग्रव्वासी। (5) देवनागरी उर्दू-हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा, 1936, वम्वई; परवर्ती संस्करण 1940, 1948, 1953। (6) उर्दू-हिन्दी कोश—जंवुनाथन, 1936। (7) उर्दू-हिन्दी-मराठी कोश—कुलकर्णी तथा भिकरे, पूना, 1949। (8) हिन्दुस्तानी कोश—हरिशंकर शर्मा, 1952, ग्रागरा। (9) उर्दू-हिन्दी डिक्शनरी—ग्रंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, ग्रलीगढ़, 1955। (10) उर्दू-हिन्दी कोश—केदारनाथ भट्ट, 1955, इलाहावाद। (11) उर्दू-हिन्दी शब्दकोश—मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मद्दाहे', 1959, लखनऊ। यह कोश काफ़ी ग्रच्छा है, यद्यपि इसे उर्दू का न कहकर उर्दू में प्रयुक्त ग्ररवी-फ़ारसी शब्दों का कहा जाय तो कदाचित ग्रत्युक्ति न होगी। (12) व्यावहारिक उर्दू-हिन्दी कोश—डॉ० सैयद ग्रसद ग्रली, 1978 दिल्ली।

**मराठी-हिन्दी :** मराठी से हिन्दी शब्द-संग्रह—1949।

**तमिल-हिन्दी :** तमिल-हिन्दी कोश—हरिहर शर्मा, 1962, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

**तेलुगु-हिन्दी :** (1) ग्रांध्र हिन्दी कोश—ग्रांध्र हिन्दी प्रचार सभा, विजयवाड़ा, 1956। (2) तेलुगु-हिन्दी कोश—कामाक्षिराव, 1960, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

कन्नड़-हिन्दी—(1)

मलयालम-हिन्दी— (1)

अभारतीय भाषाएँ-हिन्दी

अंग्रेजी-हिन्दी : (1) A Dictionary of the Hindustani Language —फ़र्ग्युसन, 1773, लंदन। यह दो भागों में है। पहला भाग अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी, दूसरा हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी है। (2) A Dictionary, English and Hindustani—जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट, 1790, कलकत्ता। इसी कोश के आधार पर उलटकर कोशकार ने बाद में हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश बनाया था। (3) A Dictionary, English and Hindustani—हेनरी हैरिस, 1790, मद्रास। (4) Hindustani Philology—गिलक्राइस्ट, 1810, लंदन। इसमें अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी तथा हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश हैं। (5) Dictionary, English-Hindustani—रोवक, 1811। (6) Dictionary, English and Hindi—मैथ्यू थामसन आदम, 1829, कलकत्ता; द्वि० सं० 1838। (7) A Dictionary of Principal Languages spoken in the Bengal Presidency—English-Bengali-Hindustani— डि रोजरिओ (D' Rozario), 1837, कलकत्ता। (8) Polyglot Munshi or Vocabulary Exercises in English, Presian, Hindi, Hindustani and Bengali—देवीप्रसाद राय, कलकत्ता, 1841। इसमें 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग 'उर्दू' के लिए हुआ है। (9) A Pocket Dictionary of English and Hindustani—आर० एस० डोबी (Dobbie), 1846-47, लंदन। (10) A Anglo-Hindoostanee Vocabulary—एन० एच० ग्रांट, 1850, कलकत्ता। (11) Trilingual Dictionary, English-Urdu-Hindi—मथुरा प्रसाद मिश्र, 1865, बनारस। (12) A Vocabulary, English and Hindustanee—हैज़ेल ग्रोव, 1865, बम्बई। (13) A Vocabulary, English and Hindustanee—कैप्टेन बोराडाइल, 1868, मद्रास। (14) New English-Hindustani Dictionary—फ़ैलन, 1883, लंदन। इसमें लोकोक्ति और मुहावरे भी काफ़ी हैं। (15) अंग्रेजी-हिन्दी कोश—मुन्नीलाल, 1887, दानापुर। (16) The New Royal Dictionary (English into English and Hindustani—थामस क्रैवेन, 1911 (संशोधित संस्करण), लखनऊ। (17) Popular English-Hindi Dictionary—इंडियन प्रेस, 1936, इलाहाबाद। (18) The Student's Model Dictionary—राँची, 1936; दू० सं० 1940; ती० सं० 1951। (19) Bhargav Standard Illustrated Dictionary of the English Language—रामचन्द्र पाठक, 1939, बनारस। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। (20) Nalanda Current Dictionary—पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल तथा अन्य, 1950 के लगभग, पटना। (21) आंग्ल-हिन्दी पर्याय शब्दकोश—गोपीनाथ श्रीवास्तव, 1952। इसमें व्यर्थ के नये शब्द गढ़ने

की प्रवृत्ति है। Error के लिए 'ग़लती' या 'अशुद्धि' नहीं है, 'विभ्रम' है। इसी प्रकार Fault के लिए 'प्रदोश' तथा efficient के लिए 'प्रगुण' हैं। (22) A Concise English-Hindi Dictionary—उस्मानिया यूनिवर्सिटी, 1953, हैदराबाद। इस कोश में हास्यास्पद शब्द भी बनाए गए हैं। उदाहरणार्थ, acknowledge=रसीदियाना। (23) A New English-Hindi Dictionary—डॉ० सूर्यकान्त, 1953, दिल्ली। यह फ़ैलन के उपर्युक्त कोश पर आधारित है। (24) अभिनव अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश—केदारनाथ भट्ट, 1955, आगरा। (25) A Technical English-Hindi Glossary—कामिल बुल्के, 1955, राँची। इसका नाम टेकनिकल है, किन्तु इसमें अन्य शब्द भी हैं। ईसाई धर्म से सम्बद्ध शब्द इसमें काफ़ी हैं। (26) बृहत् अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश—डॉ० हरदेव बाहरी, 1960, काशी। यह कोश काफ़ी बड़ा और शब्द-संग्रह की दृष्टि से अच्छा है। (27) सामान्य अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश—राममूर्ति सिंह, बम्बई, 1964। (28) मानक अंग्रेज़ी व हिन्दी कोश—डॉ० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद।

इन कोशों में फ़ैलन, सूर्यकान्त, केदारनाथ भट्ट, बुल्के तथा बाहरी के कोश अपेक्षाकृत अच्छे हैं।

फ़ारसी-हिन्दी : अल्फ़ाज-ए-फ़ारसी-ओ-हिन्दी—हिन्दुस्तानी प्रेस, कलकत्ता, 1808। यह नागरी लिपि में है।

यूनानी-हिन्दी : यवन भाषा कोश—रेवरेंड हूपर तथा कतवारू लाल, 1878, इलाहाबाद।

रूसी-हिन्दी : (1) रूसी-हिन्दी शब्दकोश—व० म० बेस्क्रोवनी, मास्को, 1957। (2) रूसी-हिन्दी शब्दकोश—वीर राजेन्द्र ऋषि, 1957, दिल्ली।

जापानी-हिन्दी : जापानी-हिन्दी कोश—डॉ० दोई, टोकियो।

## पर्याय-कोश

संस्कृत में 'अमरकोश' आदि पर्याय अथवा समानार्थी शब्दों के छन्दोबद्ध कोश हैं। उन्हीं के अनुकरण पर हिन्दी में भी भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल में कुछ छन्दोबद्ध पर्याय-कोश बने। इनमें अधिकांश का नाम 'नाममाला' है। 'नाम' का अर्थ है संज्ञा, और ऐसे कोशों में मुख्यतः संज्ञा शब्दों के समानार्थी शब्दों की ही मालाएँ होती हैं, अतः संस्कृत में इन्हें 'नाममाला' कहा गया। वहीं से हिन्दी में यह नाम ले लिया गया। हिन्दी की कुछ नाममालाएँ हैं : हरराज की डिंगलनाममाला (1561), नन्ददास की नाममाला (1568), बनारसीदास की नाममाला (1613), शिरोमणि मिश्र की नाममाला अथवा नामउर्वसी (1623), भीखजन की भारती नाममाला (1626), मियाँ नूर का प्रकाशनाममाला (1697), बालकराम की विश्वनाममाला (1750), सागरकवि की धनजी नाममाला (1820), कृष्णदास की अमसार नाममाला (1838), तथा लाड़लीप्रसाद की नाममाला (1906) आदि। इस परंपरा में कुछ ग्रन्थ ऐसे भी मिले हैं जिनके नाम 'नाममाला' नहीं हैं, किन्तु जो वस्तुतः हैं 'नाममाला'। उदाहरणार्थ, 'नागराज डिंगल कोश' (1700), भिखारीदास का

'नाम प्रकाश' (1713), तथा सुवंश शुक्ल का 'उमराव कोश' (1805) आदि ।

आधुनिक काल के जो पर्यायवाची कोश हैं, वे इस परंपरा के नहीं हैं । वे छन्दोबद्ध न होकर शब्दसूची मात्र हैं, तथा उन्हें अंग्रेजी के आधुनिक पर्याय-कोशों के आधार पर बनाया गया है । उनकी चर्चा पश्चिमी परंपरा के कोशों के अन्तर्गत की जाएगी ।

संस्कृत परंपरा के पद्यबद्ध पर्याय-कोशों की मुख्य विशेषताएँ हैं—(1) इन कोशों को बनाने के कई उद्देश्य रहे हैं : (क) कुछ लोगों ने उन लोगों के लिए ये कोश बनाए हैं जो संस्कृत नहीं जानते, अतः अमरकोश आदि संस्कृत कोशों का उपयोग नहीं कर सकते, किन्तु पर्याय शब्दों को जानना चाहते हैं । उदाहरण के लिए, नन्ददास अपनी नाममाला में लिखते हैं, 'उचरि सकति नहीं संस्कृत जान्यो चाहत नाम, तिन हित नन्द सुमति जथा रचत नाम के दाम ।' भीखजन ने भी अपनी भारती नाममाला में कुछ ऐसा ही कहा है : 'नाममाला गुन संसक्ति दुगम लखो जिय जानि, इह उपजी जनु भीख जिय रचीजू भाषा आनि ।' (ख) कुछ लोगों ने संस्कृत के ऐसे कोशों के आधार पर स्वांतः सुखाय ऐसे ग्रन्थों की रचना की है; (ग) कुछ ने आश्रयदाता के आश्रय को सार्थक बनाने के लिए इन्हें रचा है । हमेशा मौलिक कविता तो नहीं की जा सकती थी, अतः अमरकोश के आधार पर तथा कुछ नये शब्दों को जोड़ते हुए ऐसे ग्रन्थ रचे गए; (घ) नन्ददास ने अपनी नाममाला को 'मानमंजरी नाममाला' कहा है । दोहे की एक पंक्ति में समानार्थी शब्द हैं तो दूसरे में 'राधा की मानलीला का वर्णन' । यदि दो दोहे साथ हैं तो अन्तिम पंक्ति में मानवर्णन । इस प्रकार इनका उद्देश्य 'मानलीला वर्णन' भी है । नन्ददास की यह मौलिक सूझ है । इसके पूर्व संस्कृत या हिन्दी के किसी भी कवि ने ऐसी रचना नहीं की है । इस रूप में कल्पना तथा अलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है, अतः शैली में सरसता आ गई है । बाद में भी कुछ अन्यों ने भी इस परंपरा का पालन किया । उदाहरण के लिए, बद्रीदास की 'मानमंजरी नाममाला' भी इसी शैली में है; (ङ) डिंगल नाममाला 'हरराज' के नाम से मिलती है, उसका तथाकथित रचयिता 'हरराज' स्वयं कवि नहीं था । उसके एक छन्द में कवि-रूप में 'कुशललाभ' का नाम आया है । 'हरराज' इनके आश्रयदाता थे । इस तरह कुशलनाम ने अपने आश्रयदाता की ख्याति के लिए इस कोश की रचना की; (च) कुछ ने किसी के कहने से कोश बनाए हैं । उदाहरण के लिए, बनारसीदास ने अपनी नाममाला में कहा है कि उन्होंने मित्रों के कहने से यह ग्रन्थ रचा है । (2) संस्कृत के छन्दोबद्ध कोश-ग्रन्थों पर प्रायः कवियों ने अपनी नाममालाओं को आधारित किया है, किन्तु ऐसे नये तद्भव तथा विदेशी शब्द भी जोड़े गए हैं, जो उस काल में प्रचलित थे । उदाहरण के लिए, मियाँ नूर की प्रकाश नाममाला के एक-तिहाई शब्द अमरकोश में नहीं मिलते । (3) मुख्यतः संज्ञा शब्द हैं, किन्तु कुछ विशेषण (जैसे नन्ददास में 'सुंदर') तथा कुछ क्रिया-विशेषण (जैसे नन्ददास में 'शीघ्र') भी हैं । अपवादतः रत्नजित की 'भाषा धातुमाला' हिन्दी धातुओं का पर्याय-कोश है । उदाहरण के लिए, 'देख' के पर्याय हैं 'देख, अवदेख, लख, झाँक, अवलोक, विलोक,

निदख, निहार, परेख ।' (4) अमरकोश आदि की तरह इन कोशों का कांडों आदि में विभाजन नहीं है और न वर्गों में ही। इस प्रकार कोई विशेष क्रम और व्यवस्था नहीं है। अपवादतः भिखारीदास का 'नामप्रकाश' अमरकोश तीन कांडों तथा 23 वर्गों में विभक्त है। सुवंश शुक्ल के 'उमरावकोश' में भी तीन कांड तथा 21 वर्ग हैं। (5) अधिकांश नाममालाएँ 'अमरकोश' पर आधारित हैं (जैसे नन्ददास या भीखजन की), किन्तु कुछ ने अपनी नाममालाओं के लिए अन्य संस्कृत कोशों का भी सहारा लिया है। उदाहरण के लिए, बनारसीदास ने धनंजय की 'नाममाला' को अपना आधार बनाया है। (6) इन कोशों की रचना छन्दों में हुई है तथा संस्कृत में जैसे ऐसे कोशों के लिए अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है, वैसे ही इनके लिए प्रायः 'दोहा' छन्द प्रयुक्त हुआ है। अपवादतः बद्रीदास ने अपनी पूरी मानमंजरी सोरठों में लिखी है तो हमीरदान ने अपनी हमीर 'नाममाला' डिंगल गीत 'वेलियों' में लिखी है। इसमें डिंगल के शब्द हैं। (7) अमरकोश की तरह ही इनमें से कुछ में अनेकार्थी शब्दों का खंड अलग है। (8) संस्कृत कोशों में लिंग-सूचना प्रायः होती थी, इनमें नहीं है।

उपर्युक्त पर्याय-कोश पूर्णतः प्राचीन परंपरा के तथा छन्दोबद्ध थे। आधुनिक काल में अंग्रेज़ी के पर्याय-कोशों की परंपरा में नये ढंग के भी कुछ पर्याय-कोश प्रकाशित हुए हैं जो पर्याय शब्दों की सूचियाँ हैं। इस परंपरा में फ़ेरला का 'हिन्दुस्तानी सिनानिम्स' (1873), श्रीकृष्ण शुक्ल का 'हिन्दी पर्यायवाची कोश' (1935), भोलानाथ तिवारी का 'वृहत पर्यायवाची कोश' (1954, नया संस्करण 1962) तथा महेन्द्र चतुर्वेदी तथा ओमप्रकाश गावा का 'व्यावहारिक पर्याय कोश' (1972) मुख्य हैं। इनमें भोलानाथ तिवारी का 'वृहत् पर्यायवाची कोश' में अंग्रेज़ी के 'थेसारसों' तथा भारतीय परंपरा के संस्कृत के अमरकोश आदि तथा हिन्दी की कई मध्यकालीन ऐसी नाममालाओं की सहायता ली गई है जिनमें तद्‌भव शब्दों का भी प्रतिनिधित्व हुआ है। साथ ही हिन्दी में प्रचलित विदेशी शब्द भी ले लिए गए हैं। इसमें पर्याय शब्दों के साथ विलोम शब्द भी दे दिए गए हैं। पर्याय-मालाओं का वर्गीकरण अमरकोश तथा राजेट के थेसारस की तरह सुव्यवस्थित विषयानुसार हुआ है, किन्तु साथ ही अपेक्षित शब्द देखने की सुविधा की दृष्टि से अन्त में शब्दानुक्रमणी भी दे दी गई है। इस तरह भारतीय और पश्चिमी परंपरा के समन्वय पर आधारित यह कोश हिन्दी का पहला तथा अभी तक का अन्तिम 'थेसारस' है।

हिन्दी के पर्याय-कोशों की उपर्युक्त परंपरा ने हिन्दी पर्यायों के संकलन की दिशा में अच्छा योग दिया है। हाँ, अभी तक एक कमी अवश्य है। वेब्सटर के अंग्रेज़ी पर्याय-कोश की तरह हिन्दी में कोई ऐसा कोश नहीं आ सका है जिसमें पर्यायों के सूक्ष्म भेदों का विवेचन हो। रामचन्द्र वर्मा की 'शब्द साधना' तथा 'शब्दार्थ' में तकनीकी शब्द पर्यायों का अन्तर दिखाने का यत्न किया गया है, किन्तु उसमें वर्माजी ने मनमाने अर्थों का आरोप करके उन्हें प्रामाणिक होने से वंचित कर दिया है।

अनेकार्थी कोश

पारिभाषिक कोश

## ग्रनेकार्थी कोश

हम पीछे कोशों की संस्कृत-परंपरा में देख चुके हैं कि संस्कृत में कुछ तो पर्याय-कोश ऐसे थे जिनका एक कांड ग्रनेकार्थी शब्दों का था, तथा कुछ कोश पूरे-के-पूरे ग्रनेकार्थी शब्दों के ही थे। उन्हीं की परंपरा में, उन्हीं की प्रेरणा ग्रौर प्रभाव से हिन्दी में भी इस प्रकार के कोश लिखे गए। ऐसे कोशों में मुख्य हैं: नन्ददास की ग्रनेकार्थमंजरी (1568 के लगभग), भगवतीदास ग्रग्रवाल की 'ग्रनेकार्थ नाममाला' (1630), महासिंह पांडे की 'ग्रनेकार्थ नाममाला' (1703), केसर कीर्ति का 'नामरत्नाकर बोध' (1729), दयाराम त्रिपाठी का ग्रनेकार्थ (1738), चंदनराम का ग्रनेकार्थ (1809), मातादीन का 'नानार्थ नव संग्रहावलि' (1842) तथा उमापति त्रिपाठी का 'सौ ग्रर्थ सीता शब्द' (1916) ग्रादि। ग्रब ऐसे कोशों की ग्रावश्यकता नहीं रह गई है, क्योंकि सामान्य शब्दकोशों में हर शब्द के सभी ग्रर्थ दिए होते हैं। भक्ति, रीति तथा ग्राधुनिक काल में रचित इन ग्रनेकार्थी कोशों की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं: (1) संस्कृत के शाश्वत के 'ग्रनेकार्थ समुच्चय' तथा ग्रमरकोश के 'ग्रनेकार्थ' भाग पर प्रायः ये ग्राधारित हैं। नये शब्द, नये ग्रर्थ प्रायः नहीं हैं। (2) ये प्रायः दोहा छन्द में हैं। ग्रपवादतः विनय सागर की 'ग्रनेकार्थ नाममाला' इहा छन्द में है। (3) प्रायः इनमें क्रम या वर्गीकरण नहीं है। ग्रपवादतः विनय-सागर उपाध्याय का ग्रनेकार्थ नाममाला तीन 'ग्रधिकारों' में विभक्त है। पहले में एक शब्द के ग्रनेकार्थ पूरे दोहे में हैं, दूसरे में प्रायः एक शब्द के ग्रर्थ ग्राधे दोहे में हैं तथा तीसरे में एक शब्द के ग्रर्थ दोहे के चतुर्थ भाग में हैं। इस तरह ग्रर्थों के ग्राधिक्य ग्रौर न्यूनता के ग्राधार पर उन्हें क्रमित किया गया है। (4) कुछ ग्रन्थों में देवनागरी के ग्रक्षरों के विविध ग्रर्थ दिए गए हैं, जैसे वीरभाण के 'एकाक्षरी नाममाला' में—महाक्षपणक रचित संस्कृत 'एकाक्षरी कोश' के ग्राधार पर यह बना है। 'लखपतमंजरी नाम-माला' भी इसी प्रकार का एकाक्षरी कोश है। (5) इनमें लिंग-संकेत नहीं है। (6) सामान्यतः इनमें ग्रर्थ ही दिए गए हैं। ग्रपवादतः नन्ददास ने ग्रपने कोश के प्रत्येक दोहे में दूसरी पंक्ति के उत्तरार्ध में भक्तिपरक उपदेश रखकर ग्रपने कोश को एक नीति-ग्रन्थ-सा बना दिया है।

हिन्दी कोशकला ग्रथवा कोशविज्ञान के विकास में इन ग्रनेकार्थी कोशों का कोई उल्लेख्य योगदान नहीं है।

## पारिभाषिक कोश

समृद्ध भारतीय परंपरा में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग यों तो बहुत प्राचीन काल से होता रहा है, मुख्यतः व्याकरण, गणित, चिकित्सा, तर्कशास्त्र, योग, दर्शन, संगीत, ज्योतिष, रसायनशास्त्र तथा कर्मकांड ग्रादि के क्षेत्र में, किन्तु पारिभाषिक कोश बनाने का प्रयास कदाचित् नहीं किया गया। इस दिशा में प्रथम व्यवस्थित प्रयास शिवाजी के समय में हुग्रा। उनकी ग्राज्ञा से रघुनाथ पन्त ने राजकाज के लिए लगभग डेढ़ हजार पारिभाषिक शब्दों का 'राजकोश' नामक
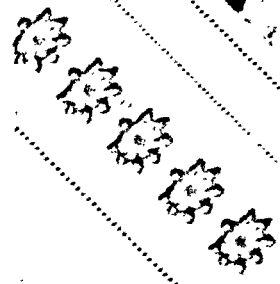
एक कोश बनाया। इसके शब्द या तो संस्कृत से लिए गए थे या संस्कृत व्याकरण के आधार पर बनाए गए थे। मध्ययुग में कर्णपूर, दलपतिराय आदि ने भी कुछ कोशों की रचना की थी, जिनमें राजकाज में प्रयुक्त होने वाले फ़ारसी शब्दों के लिए पुराने या नव-निर्मित संस्कृत शब्द दिए गए थे। इन कोशों में प्रमुख यवन-नाममाला, पारसीकनाममाला, पारसीप्रकाश, पत्रप्रशस्ति, राजव्यवहार कोश आदि हैं। आधुनिक परंपरा में सर्वप्रथम 1797 ई० में कलकत्ता से क़ानून का एक कोश—A Dictionary of Mohammedan Law and Bengal Revenue Terms—छपा। थामस रोवक नामक अंग्रेज ने 1811 ई० में कलकत्ता से नौ-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दबन्धों और शब्दों का अंग्रेज़ी-हिन्दी संकलन (An English and Hindustanee Naval Dictionary of Technical Terms and Sea Phrases) प्रकाशित हुआ। ग्यारह वर्ष बाद 1822 ई० में ब्राउन का भारतीय व्यावसायिक शब्दों का 'ज़िला कोश' (Zila Dictionary) प्रकाशित हुआ। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में इस दिशा में विशेष प्रयास शुरू हुए। 1871 ई० में बंगाल सरकार ने एक समिति बनाई जिसका कार्य, अन्य कार्यों के अतिरिक्त यह भी निश्चित करना था कि विज्ञान, क़ानून आदि के यूरोपीय पारिभाषिक शब्द भारतीय भाषाओं में कैसे लाए जाएँ? इसी समय श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने इस विषय पर अपने विचारों को ('A Scheme for the rendering of European scientific terms into the vernaculars of India' शीर्षक से) प्रकाशित किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी 1898 ई० में इस कार्य के लिए एक समिति नियुक्त की थी, जिसकी बनाई हुई शब्द-सूची (Hindi Scientific Glossary) 1901 ई० में प्रकाशित हुई। इस दिशा में काम करने वाली संस्थाओं में नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा भारतीय हिन्दी परिषद् के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। व्यक्तियों में डॉ० रघुवीर का नाम उल्लेख्य है। यों संस्कृत पर अत्यधिक बल देने के कारण डॉ० रघुवीर के कोशों के बहुत-से शब्द बहुत यान्त्रिक, अटपटे—अतः अग्राह्य—हैं, किन्तु उनके कार्य का ऐतिहासिक महत्त्व अविस्मरणीय है।

अंग्रेज़ी-हिन्दी के ये पारिभाषिक कोश दो प्रकार के हैं। एक तो वे जिनमें कई विषयों के शब्द समाहित हैं और दूसरे वे जिनमें कोई एक विषय ही लिया गया है। आगे दोनों की अलग-अलग सूचियाँ अपेक्षित टिप्पणी के साथ दी जा रही हैं। इसके मुख्य वर्ग दो हैं : कई विषयों के कोश, अलग-अलग विषयों के कोश।

### कई विषयों के कोश

(1) हिन्दी वैज्ञानिक कोश—श्यामसुन्दर दास तथा अन्य, 1901, इलाहाबाद (नागरी प्रचारिणी सभा के लिए)।

(2) वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द—डॉ० सत्यप्रकाश, 1930, इलाहाबाद।

(3) ट्वेंटिएथ सेंचुरी इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी—सुखसंपतिराय भंडारी, 1940, अजमेर। यह कोश कई भागों में है जिनमें शासन, क़ानून, फ़िल्म, अर्थ-

शास्त्र, गणित, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवविज्ञान, इतिहास, भूगोल, कृषि, उद्योग-धन्धे, शिक्षा, जलवायु, इंजीनियरी आदि विभिन्न विषयों के अंग्रेज़ी-हिन्दी पारिभाषिक शब्द हैं, साथ ही सभी पारिभाषिक शब्दों पर टिप्पणियाँ भी हैं। कहीं-कहीं कुछ हिन्दी प्रतिशब्द (Socialist action—समाजवादी प्रवृत्ति) खटकते हैं, किन्तु समवेतत: यह अच्छा कार्य है।

(4) अंग्रेज़ी-हिन्दी वैज्ञानिक कोश—डॉ० सत्यप्रकाश, प्रयाग। 1948 में प्रथम खंड तथा 1950 में दूसरा खंड। लगभग 30,000 शब्दों का यह कोश सभी दृष्टियों से काफ़ी अच्छा है। इसमें भौतिकी, रसायन, गणित, वनस्पति-विज्ञान, ज्योतिष तथा जीवविज्ञान आदि के शब्द हैं।

(5) व्यावहारिक शब्दकोश—एल० पी० वैश्य, 1949, जयपुर। राजनीति, शासन, अर्थशास्त्र, चिकित्सा, व्यापार, कार्यालय आदि के शब्द हैं। यह बहुत अशुद्ध (प्रतिनिधी, दोषमुक्ती) छपा है तथा अत्यन्त सामान्य कोटि का है।

(6) राजकाज शब्दकोश—सोमदेव उपाध्याय, 1950 ई०, मंडी (हिमाचल प्रदेश)। चार भागों के इस बड़े कोश में राजस्व, शासन, राजनीति, व्यापार आदि के लगभग 21 हज़ार शब्द हैं। नये शब्द भी बनाए गए (Small Town—नगरोटा) हैं। इसमें प्रचलित शब्दों को छोड़कर संस्कृत के शब्द लेने या नये शब्द बनाने की प्रवृत्ति (District—मंडल; Tehsil—उपमंडल) भी है।

(7) अ कंप्रिहेंसिव इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी—डॉ० रघुवीर, 1955, दिल्ली। इसमें लगभग सभी आवश्यक विषयों के पारिभाषिक तथा सामान्य शब्द हैं। विभिन्न विषयों के व्यक्तियों की सहायता से सम्पादित यह कोश कई दृष्टियों से अच्छा है, किन्तु इसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी है डॉ० रघुवीर का शुद्धतावादी दृष्टिकोण। उन्होंने अनेक प्रचलित शब्दों को छोड़कर उनके स्थान पर प्राचीन संस्कृत साहित्य से शब्द लेने तथा संस्कृत-पद्धति के आधार पर नये शब्द गढ़ने पर विशेष बल दिया है। उदाहरण के लिए, 'पेन' के लिए 'लेखनी' और 'मसीपथ' है, किन्तु हिन्दी का बहुप्रचलित शब्द 'क़लम' नहीं है, 'फ़ाउंटेनपेन' के लिए 'मसीपथ' है, पर 'फ़ाउंटेनपेन' नहीं है, 'ऑनेस्ट' के लिए सत्य, सच्चा, निष्कपट, शुचि है पर 'ईमानदार' नहीं है, तथा 'गार्डेन' के लिए उद्यान और वाड़ी हैं, पर बाग़ नहीं है। ऐसे ही 'सीमेंट' के लिए हिन्दी में प्रचलित शब्द 'सीमेंट' नहीं है 'वज्रचूर्ण' है, और 'कंकरीट' के लिए हिन्दी का प्रचलित शब्द 'कंकरीट' नहीं है, 'संधा' है। ऐसे शब्द इस कोश में कई हज़ार हैं। यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि नहर के लिए 'कुल्या' और सड़क के लिए 'रथ्या' गढ़ लेने या प्राचीन साहित्य से खोज निकालने की यह परंपरा किसी भी दृष्टि से सही नहीं कही जा सकती। 'नहर' और 'सड़क' हिन्दी के अपने शब्द हैं और 'कुल्या' तथा 'रथ्या' उनके स्थान पर चल नहीं सकते।

(8) स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ़ टेकनिकल टर्म्स—योगेन्द्रमोहन गुप्त, कर्तारसिंह, 1956, लुधियाना। इसमें इतिहास, भूगोल, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति, रसायन, भौतिकशास्त्र, कृषि, शासन आदि के अंग्रेज़ी-हिन्दी-पंजाबी शब्द हैं।

(9) पारिभाषिक शब्द-संग्रह (अंग्रेज़ी-हिन्दी)—केन्द्रीय हिन्दी **निदेशालय**,
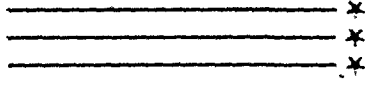
द्वारा, 1962 में दिल्ली से प्रकाशित। उस समय तक निदेशालय द्वारा निर्धारित विभिन्न विषयों के सभी शब्द इसमें ले लिए गए हैं।

(10) विज्ञान शब्दावली—केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली, 1964। यह इस कोश का पहला खंड है जिसमें वनस्पति, रसायन, भूगोल, भू-विज्ञान, गणित, भौतिकी तथा प्राणिविज्ञान के शब्द हैं। मूलतः ऊपर के कोश नं० 9 से ही इन विषयों के शब्द एकत्र कर, कुछ संशोधन के साथ इस कोश के रूप में प्रकाशित कर दिए गए हैं।

(11) ऊपर संकेतित शब्द-संग्रहों (9, 10) का संशोधित संस्करण 'वृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह' नाम से छपा है। इसके दो खंड विज्ञान के तथा दो खंड मानविकी के हैं—विज्ञान : खंड 1—1973, खंड 2—1973; मानविकी : खंड 1—1973, खंड 2—1974। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग एवं केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली द्वारा विभिन्न विषयों के सैकड़ों विद्वानों के सहयोग से प्रस्तुत यह चार खंडों का अंग्रेज़ी-हिन्दी पारिभाषिक शब्द-संग्रह इस दिशा में भारत में हुए सभी प्रयासों की एक प्रकार से चरम परिणति है, जिसमें अपेक्षित सभी बातों का ध्यान रखते हुए अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों के भारतीय प्रतिशब्द दिए गए हैं। यह संग्रह अपनी अनेकानेक कमियों के बावजूद अद्यावधि सर्वोत्तम है।

## अलग-अलग विषयों के कोश

### मनोविज्ञान

(1) इंग्लिश-हिन्दी वाकेबुलरी ऑफ़ जेनरल साइकोलॉजी—पी० एल० विद्यार्थी।

(2) 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (प्रधान संपादक—डॉ० नगेन्द्र) का मनोविज्ञान खंड—डॉ० पद्मा अग्रवाल, 1968, दिल्ली। इसमें मनोविज्ञान के पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाएं तथा व्याख्याएँ हैं।

### नौविज्ञान

एन इंग्लिश ऐंड हिन्दुस्तानी नेवल डिक्शनरी ऑफ़ टेकनिकल टर्म्स ऐंड सी फ्रेज़िज—थामस रोबक, 1811, कलकत्ता।

### जीवविज्ञान

(1) जंतुविज्ञान शब्दकोश—महेश्वरसिंह, 1956, आगरा। लगभग 20,000 शब्दों के इस अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में शब्दों पर परिचयात्मक टिप्पणी भी है। संस्कृत के आधार पर इसमें नये शब्द भी बनाए गए हैं, साथ ही अंग्रेज़ी के gill, fin, cusp, keel जैसे अनेक शब्दों को अपना भी लिया गया है।

(2) आंग्ल-भारतीय पक्षिनामावली—डॉ० रघुवीर।

### बिजली

वैद्युत शब्दावली—केशवप्रसाद मिश्र तथा रामनाथसिंह, 1915, बनारस।

### ज्योतिष

हिन्दी-वैज्ञानिक शब्दावली—शुकदेव पांडे, 1934, प्रयाग (नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से)। इसमें अंग्रेजी के भी कुछ शब्द ज्यों-के-त्यों या सरल करके ले लिए गए हैं, जैसे डायोनी (Dione), साइगनस (Cygnus) आदि।

### खनिज-विज्ञान

खनिज अभिधान—डॉ० रघुवीर तथा अन्य, 1953, नागपुर। यह हिन्दी-अंग्रेजी कोश है।

### चिकित्सा और शरीरविज्ञान

(1) इंग्लिश-अरैबिक-पर्शिअन-संस्कृत वाकेबुलरी—पीटर ब्रीटन, 1825, कलकत्ता। इसमें मनुष्य के अंगों के नाम तथा चिकित्सा-विषयक शब्द हैं।

(2) रोगनामावली कोश—दलजीत सिंह, 1951, काशी। इसमें रोगों के नाम तथा विवरण हैं। अंग्रेजी नाम विवरण के साथ हैं।

(3) प्रत्यक्ष शरीर-कोश—एस० सी० सेनगुप्त, 1951, प्रयाग। राहुलजी ने भी इसमें सहयोग किया था। कोश अच्छा है।

(4) वृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह—(आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान)—यह कई विषयों के कोश के नवें शब्द-संग्रह के आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान तथा शारीरिक नृविज्ञान से संबद्ध शब्दों की अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली है, जो केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा 1974 में प्रकाशित हुई। सच पूछा जाए तो यह उपर्युक्त ग्यारहवें कोश का ही पाँचवाँ भाग है, यद्यपि उस पर ऐसा लिखा नहीं है। यों यह शब्द-संग्रह अच्छा है, किन्तु काफ़ी शब्द छूट गए हैं।

### व्यवसाय

(1) जिला डिक्शनरी—ब्राउन, 1822, मद्रास। इसमें व्यवसाय के भारतीय शब्द हैं।

(2) छियालीस भाषाओं के व्यावसायिक शब्दों का कोश—फ़ॉकनर, 1856। इसमें अरबी, हिन्दू-हिन्दुस्तानी, इटैलियन, जापानी तथा लैटिन आदि 46 भाषाओं के शब्द हैं। 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए है तथा 'हिन्दुस्तानी' का उर्दू के लिए।

(3) देखिए क़ानून नं० 2

(4) वाणिज्य शब्दकोश—बल्दुवा तथा अन्य, 1947 के लगभग।

(5) वाणिज्य शब्दकोश—कान्तानाथ गर्ग तथा श्रीनारायण श्रीवास्तव,

1949, इलाहाबाद। इसमें सरल शब्द (जैसे acceptance of bill—बिल सकारना) भी हैं, किन्तु ऐसे भी शब्द हैं जिनके चलने की संभावना (tenant—भाटकी) नहीं है।

## अर्थशास्त्र

(1) **अर्थशास्त्र शब्दावली**—गदाधर प्रसाद तथा भगवानदास केला, 1932, वृन्दावन; 1941, 1946, 1949 में अन्य संस्करण। अंतिम संस्करण में केवल केलाजी का नाम है।

(2) **अर्थशास्त्र शब्दकोश**—आचार्य रघुवीर तथा अन्य, 1948 के लगभग, वर्धा। कठिन शब्दों की विशेष प्रवृत्ति है। उदाहरण के लिए, 'इरिगेशन' के लिए 'भूसेचन' तथा 'इनवेंशन' के लिए 'उपज्ञा'। 'इंटरनेशनल' के लिए 'अंताराष्ट्रीय' जैसे शब्दों से स्पष्ट है कि इसमें प्रचलन से अधिक बल शुद्धतावादी दृष्टिकोण पर है।

(3) **मैकमिलन अर्थशास्त्र कोश**—महेन्द्र चतुर्वेदी, नारायण कृष्ण पंत, 1974, दिल्ली। इसमें अर्थशास्त्र के परिभाषा और व्याख्या-सापेक्ष ऐसे बहु-प्रयुक्त शब्दों को लिया गया है जो इस विषय को समझने के लिए आवश्यक हैं।

(4) **अर्थशास्त्र कोश**—अमरनाथ अग्रवाल, 1977, दिल्ली।

## गणित

(1) हिन्दी वैज्ञानिक कोश—सुधाकर द्विवेदी, 1905, बनारस।

(2) हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—डॉ० निहालकरण सेठी, 1931, प्रयाग (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से)।

(3) सांख्यिकी शब्दकोश—आचार्य रघुवीर तथा अन्य, 1948, वर्धा। सामान्यतः अच्छा कोश है, किन्तु even के लिए 'युग्म' या sphere के लिए 'गोल' जैसे शब्द बहुत अच्छे नहीं माने जा सकते।

(4) गणितीय कोश—डॉ० ब्रजमोहन, 1954, बनारस। प्राचीन-नवीन सभी स्रोतों पर आधारित इस कोश में परिभाषाएँ भी हैं। कोश काफ़ी अच्छा है।

## पत्रकारिता

समाचार पत्र शब्दकोश—(अंग्रेज़ी-हिन्दी)—डॉ० सत्यप्रकाश, प्रयाग, 1942; दूसरा सं०, 1945।

## पुस्तकालयविज्ञान

पुस्तकालयविज्ञान कोश—प्रभुनारायण गौड़, 1961, पटना। इस अंग्रेज़ी-हिन्दी-कोश में शब्दों के साथ परिचयात्मक टिप्पणी भी है। अंत में हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्द-सूची है।

दर्शन

(1) हिन्दी वैज्ञानिक कोश—महावीरप्रसाद द्विवेदी, 1906, बनारस।

(2) मानविकी पारिभाषिक कोश—(प्रधान संपादक—डॉ० नगेन्द्र) दर्शन खंड—डॉ० वी० एस० नरवणे, प्रथम संस्करण, 1965, दिल्ली। इसमें अंग्रेजी शब्द, हिन्दी प्रतिशब्द तथा उसका विस्तृत विवेचन है। दूसरा संस्करण, 1966।

भौतिक-शास्त्र

(1) हिन्दी वैज्ञानिक परिभाषा—ठाकुरप्रसाद खत्री, 1906, बनारस।

(2) हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1929, प्रयाग।

(3) भौतिकविज्ञान कोश—डॉ० सत्यप्रकाश, 1951, प्रयाग। काफ़ी अच्छा कोश है।

रसायनशास्त्र

(1) जीवरसायन कोश—व्रजकिशोर मालवीय, 1952, प्रयाग।

(2) हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—फूलदेवसहाय वर्मा।

(3) हिन्दी टर्म्स ऑफ़ कैमिस्ट्री—उस्मानिया यूनिवर्सिटी, 1954, हैदराबाद।

पदार्थ

(1) पदार्थ-संख्या कोश—व्रजवल्लभ मिश्र, 1911, अलीगढ़।

(2) जगत् व्यापारिक पदार्थ कोश—ठाकुरप्रसाद खत्री, 1912, बनारस।

समाजशास्त्र

हिंदी टर्म्स ऑफ़ सोशियालॉजी—उस्मानिया विश्वविद्यालय, 1952। इसमें अंग्रेजी के साथ हिन्दी शब्द नागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों में है। काफ़ी शब्द बड़े भोंडे ढंग से गढ़े गये हैं: aftercare—पिछ देखभाल; psychological—साइकोलोजिया; racism—नसलता; racialism—नसलवाद; progressivism—तरक्कीवाद आदि।

शिक्षा

एजुकेशनल वर्ड्ज एंड फ्रेजिज

कृषि

(1) मैटेरियल फ़ॉर अ रूरल ऐग्रिकल्चरल ग्लॉसरी ऑफ़ द नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसिज एंड अवध—विलियम कुक, 1879, इलाहाबाद।

(2) कृषि कोश—हरिराम वर्मा, कानपुर, 1910।

(3) बिहार पीज़ेंट लाइफ़—ग्रियर्सन, 1926, पटना।

(4) कृषिज्ञान-कोश—नारायण दुलीचन्द व्यास।

(5) कृषि-शब्दावली—प्यारेलाल गर्ग।

(6) **ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली**—डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त, 1956, इलाहाबाद। इसमें कृषि, पशु-पालन तथा ग्रामोद्योग-विषयक भोजपुरी (तहसील फूलपुर, जिला आज़मगढ़) शब्दावली सव्याख्या संगृहीत है।

(7) कृषि-कोश—विश्वनाथप्रसाद, पटना, 1959। यह प्रथम खंड है, जिसमें बिहार के मैथिली, मगही, भोजपुरी क्षेत्रों से संग्रहीत अ से घ तक के कृषि-शब्द व्याख्या और व्युत्पत्ति के साथ दिए गए हैं।

(8) **कृषक जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली**—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन, प्रथम भाग 1960, दूसरा भाग 1961, इलाहाबाद। इन दोनों भागों में कृषि, मौसम, किसान के गृह-उद्योग, वर्तन, खान-पान, कपड़े-लत्ते तथा यात्रा आदि से सम्बद्ध अलीगढ़ क्षेत्र के पारिभाषिक शब्द संगृहीत हैं। शब्दों के साथ उनका सचित्र विवेचन भी है।

नम्बर 6 और 8 शोध-प्रबन्ध हैं। इस प्रकार का सविवेचन संग्रह-कार्य शोध-प्रबन्ध के रूप में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश के कई क्षेत्रों का हुआ है, यद्यपि प्रकाशित नहीं है।

## राजनीति

(1) राजनीति-शब्दावली—भगवानदास केला, 1927 वृन्दावन।

(2) **अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-शब्दकोश**—एक पत्रकार, 1940, लखनऊ।

(3) **राजनीति-शब्दावली**—गदाधरप्रसाद तथा भगवानदास केला, इलाहाबाद, चौथा संस्करण 1950। यह नं० एक का ही संशोधित-परिवर्धित रूप है। इसमें 'साक्षीकृत' जैसे नये शब्द तो हैं ही, साथ ही 'मुख्तारनामा' जैसे फ़ारसी और 'असेम्बली' जैसे अंग्रेज़ी शब्द भी हैं।

(4) **ग्लॉसरी ऑफ़ टेकनिकल टर्म्स यूज्ड इन द कन्स्टीट्यूशन ऑफ़ इंडिया**—नयी दिल्ली, 1953। काफ़ी अच्छा कोश है। प्रचलित शब्दों को भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त है: ऐग्रिमेंट—क़रार; ऐडवांस—पेशगी। नये शब्द भी काफ़ी अच्छे हैं: adulteration—अपमिश्रण।

(5) **भारतीय राजनीति-कोश**—व्यंकटेश शास्त्री जोशी।

(6) **राजनीति-कोश**—डॉ० सुभाष कश्यप, विश्वप्रकाश गुप्त, 1971, दिल्ली।

## शासन

(1) **शासन शब्द-संग्रह**—हरिहरनिवास द्विवेदी, 1940, ग्वालियर। 1952 तक छह संस्करण। अनेक प्रतिशब्द (नोटोरिअस—नीच; रजिस्टर—नोंदना) बहुत ठीक नहीं कहे जा सकते।

(2) आरक्षिक शब्द—रामचन्द्र वर्मा, गोपालचन्द्रसिंह, 1948, काशी। इसमें पुलिस से सम्बद्ध शब्द हैं।

(3) स्थानिक परिषद् शब्दावली—रामचन्द्र वर्मा, गोपालचन्द्र सिंह, 1948, काशी। इसमें डिस्ट्रिक्ट वोर्ड तथा म्युनिसिपल वोर्ड से सम्बद्ध शब्द हैं।

(4) राजकीय कोश—गोरखनाथ चौबे, 1948, इलाहाबाद।

(5) कार्यालय पत्र-प्रणाली—बांकेलाल उपाध्याय, 1948, लखनऊ। यह पुस्तक पत्र-प्रणाली पर है, किन्तु इसमें अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दावली भी है, जो अच्छी है।

(6) शासन शब्दकोश—राहुल सांकृत्यायन तथा अन्य, 1948, प्रयाग। यह लगभग 16 हज़ार शब्दों का अच्छा कोश है। नये शब्द कम बनाये गये हैं। प्रचलित शब्दों को प्रायः ले लिया गया है। 'अगवढ़' (ऐडवांस) जैसे लोकभाषाओं में प्रचलित शब्द भी अपनाए गए हैं।

(7) विहार विधानसभा-शब्दावली—इसका छोटा रूप 1949 में तथा वड़ा 1952 में पटना से निकला। अच्छा प्रयास है, किन्तु सभी शब्द अच्छे नहीं (secret ballot के लिए, गूढ़ शलाका') कहे जा सकते।

(8) आंग्ल-भारतीय प्रशासन शब्दकोश—डॉ० रघुवीर तथा जी० एस० गुप्ता, 1949, नागपुर। वेद, पुराण, सूत्र, स्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों से भी शब्द लिए गए हैं। नये भी बनाए गए हैं (complicated—संजटिल)। प्रचलित सरल शब्द (complaint के लिए फ़रियाद, शिकायत) भी हैं।

(9) शासन शब्दप्रकाश—न्यायविभाग, मध्यभारत, 1953, ग्वालियर। 9,000 से ऊपर शब्द हैं। प्रचलित शब्द (टिकट, टेलीफ़ून, नाज़िर, शिकमी, रुक़्क़ा) ले लिए गए हैं। नये शब्द भी हैं (addendum—संयुज)।

(10) प्रशासन शब्दकोश—नागपुर, 1953। मध्यप्रदेश शासन का यह कोश डॉ० रघुवीर की देखरेख में बना। इसमें कठिन शब्द (acid fast—अम्लाधाव्य) भी हैं।

(11) प्रशासन शब्दावली—विराज।

(12) पद और पदाधिकारी—रामलोचन शर्मा कंटक, 1954, पटना। बिहार सरकार का यह प्रकाशन सामान्यतः ठीक है, किन्तु कुछ शब्द (सिनेट—अनुपद; एजेंसी—अभिकर्तृत्व; सिविल इंजिनियर—असैनिक अभियन्ता) खटकने वाले भी हैं।

(13) दे० क़ानून नं० 5।

(14) राजकीय प्रशासन-शब्दावली—बिहार सरकार के अनुवाद विभाग द्वारा प्रकाशित, पटना, 1955।

(15) प्रशासन-शब्दावली—शिक्षा एवं भाषा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ। ये छोटे-छोटे चार पैम्फ़लेट क्रमशः 1957, 1958, 1959 और 1960 में प्रकाशित हुए हैं।

(16) पदनाम-शब्दावली—भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा 1964 में दिल्ली से प्रकाशित। इस

अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में सभी तरह के अधिकारियों के पदनाम हैं।

(17) **प्रशासन-शब्दावली**—शिक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा 1965 में दिल्ली से प्रकाशित।

(18) **समेकित प्रशासन-शब्दावली**—भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा 1968 में दिल्ली से प्रकाशित।

## क़ानून

(1) **अ डिक्शनरी ऑफ़ मोहमेडन लॉ ऍंड बंगाल रेवेन्यू टर्म्स**—1917, कलकत्ता।

(2) **कचहरी टेकनिलिटीज** अथवा **वाकेबुलरी ऑफ़ लॉ टर्म्स**—पेट्रिक कारनेगी, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण 1853, द्वितीय संस्करण 1877।

(3) **एन अब्रिज्ड इंग्लिश-हिन्दुस्तानी लॉ ऍंड कर्माशियल डिक्शनरी**—फ़ैलन, 1858, कलकत्ता। फ़ौजदारी, माल, दीवानी तथा व्यवसाय के शब्द। अंग्रेज़ी शब्दों के प्रतिशब्द उर्दू लिपि में हैं, किन्तु उनमें हिन्दी शब्द भी हैं। यों उर्दू शब्द अधिक हैं।

(4) **वल्लभ त्रिभाषिक विधि-कोश** (The Vallabh Trilingual Law Dictionary)—पं० व्रजवल्लभ मिश्र, 1920, अलीगढ़। इसमें हर पृष्ठ पर तीन कालम हैं। प्रथम में उर्दू (फ़ारसी-अरबी), दूसरे में हिन्दी तथा तीसरे में अंग्रेज़ी शब्द हैं, इजारेदार—नियमकर्तृ—Lessc.

(5) **डिक्शनरी ऑफ़ लॉ टर्म्स**—लछमनदास कौशल तथा रंजीतसिंह सरकारिया, 1950, दिल्ली। इस अंग्रेज़ी-हिन्दी-पंजाबी कोश में लगभग छह हज़ार मुख्य शब्द हैं। संस्कृत शब्द भी काफ़ी हैं। पंजाबी प्रवृत्ति (abortive—निपफल) के कारण हिन्दी की दृष्टि से कुछ अशुद्धियाँ भी हैं।

(6) **विधि शब्द-सागर**—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, 1951, आगरा। इसमें संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों से शब्द (title—आगम; contract—संविद; possession भुक्ति; auction—प्रतिक्रोश) लिए गए हैं तथा अरबी-फ़ारसी के बहुत-से प्रचलित शब्द छोड़ दिए गए हैं।

(7) **ग्लॉसरी ऑफ़ लीगल ऍंड एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स**—लोकसभा सेक्रेटेरियट, 1954, दिल्ली। प्रचलित एवं सरल शब्द काफ़ी हैं। अपनी परंपरा के कुछ पुराने शब्द (acute—अतिपाती) भी हैं।

(८) **लॉ लेक्सिकन**—सुरेन्द्रनाथ ठाकुर, 1958, लखनऊ। दो भागों के इस अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में क़ानून के शब्दों का सुन्दर संकलन है। हाँ, कहीं-कहीं प्रचलित शब्द का न लिया जाना (जैसे 'कोर्ट' के लिए 'न्यायालय' दिया गया है, किन्तु 'कचहरी' नहीं है) अवश्य खटकता है।

(9) **विधि-शब्दावली**—राजभाषा विधायी आयोग की ओर से 1970 में दिल्ली से यह शब्दावली प्रकाशित हुई। इसमें शब्द-प्रविष्टियाँ तो कम हैं ही, जो हैं भी, उनमें बहुतों के प्रतिशब्द काफ़ी अटपटे हैं। उदाहरणार्थ, Brother of full blood—पूर्णरक्त का भाई; Brother of half blood—अर्धरक्त

का भाई। स्पष्ट ही इन पदबंधों की हिन्दी अभिव्यक्ति अस्पष्ट और लचर है। हिन्दी में इन अर्थों में 'सगा भाई' तथा 'सौतेला' या 'वैमातृक भाई' चलता है जो कहीं अच्छा है।

## भूगोल

(1) भूगोल-शब्दकोश—रामनारायण मिश्र, 1948, प्रयाग। यह वस्तुतः 'भूगोल' पत्रिका का शब्दकोश अंक था। इसमें शब्दों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी हैं।

(2) भौगोलिक शब्दकोश और परिभाषाएँ—डॉ० अमरनाथ कपूर, 1955, इलाहाबाद। अच्छा कोश है।

## साहित्य

(1) साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी, 1955, दिल्ली। रस, रीति, गुण, दोष, अलंकार, ध्वनि, शब्द-शक्ति तथा विभिन्न वादों से संबद्ध पारिभाषिक शब्दों का विवेचन है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के शब्दों के हिन्दी प्रतिशब्द भी हैं।

(2) हिन्दी साहित्य कोश—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य, 1958, बनारस। भारतीय काव्यशास्त्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, वाद, साहित्यिक काल एवं धाराएँ, तथा लोकसाहित्य आदि से संबद्ध। इसमें उपर्युक्त कोश की तरह पाश्चात्य काव्यशास्त्र से संबद्ध शब्दों के हिन्दी पर्याय भी हैं। इसका दूसरा भाग, 1963 में प्रकाशित हुआ जो, नामवाची शब्दावली का है।

(3) साहित्यिक शब्दावली—प्रेमनारायण टंडन, 1962, लखनऊ।

(4) मानविकी पारिभाषिक कोश—(प्रधान संपादक—डॉ० नगेन्द्र) —साहित्य खंड—डॉ० नगेन्द्र तथा अन्य, 1965, दिल्ली। इसमें अंग्रेजी शब्द, हिन्दी पर्याय और फिर उसका हिन्दी में प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन है।

## भाषाविज्ञान

(1) भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश— राजेन्द्र द्विवेदी, 1963, दिल्ली। शब्दों के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी है। अन्त में पाँच-पाँच पृष्ठों में पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी-हिन्दी तथा हिन्दी-अंग्रेजी शब्द-संग्रह है।

(2) भाषाविज्ञान कोश—भोलानाथ तिवारी, 1964, बनारस। इस कोश में विश्व की सभी मुख्य भाषाओं तथा भारत की सभी भाषाओं-उपभाषाओं, बोलियों, उपबोलियों, स्थानीय बोलियों के नामों आदि पर टिप्पणियों के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों पर भी टिप्पणियाँ हैं। मूल कोश शब्दावली कोश न होकर विषय कोश है। यों हिन्दी शब्दों के साथ कोष्ठक में उनके अंग्रेजी पर्याय भी दिए गए हैं। कोश के अन्त में अलग से भाषा-विज्ञान के लगभग 4000 पारिभाषिक अंग्रेजी शब्दों के लिए हिन्दी शब्द दिए गए हैं।

## व्यक्ति तथा कृति-कोश

हिन्दी में कुछ साहित्यकारों के संपूर्ण साहित्य या उनकी किसी एक कृति के भी कोश बने हैं। इस दिशा में प्रथम कार्य विलियम प्राइस का था। इन्होंने 1814 ई० में 'प्रेमसागर' के शब्दों का हिन्दी-अंग्रेजी कोश (A Vocabulary, Khariboli and English, of Principal Words occuring in the Premsagar) प्रकाशित (कलकत्ता) किया था। 1924 में महावीरप्रसाद मालवीय का तुलसी की 'विनय पत्रिका' के मुख्य शब्दों का 'विनय कोश' (इलाहाबाद) प्रकाशित हुआ। डॉ० सूर्यकान्त की 'पद्मावती शब्द-सूची' (1934, लाहौर) तथा 'तुलसी रामायण शब्दसूची' (1937, लाहौर), कोश न होते हुए भी इस प्रसंग में उल्लेख्य हैं। इनमें अर्थ के संकेत हैं, किन्तु मुख्यतः ये अनुक्रमणी हैं। केदारनाथ भट्ट का 'रामायण कोश' (1948, आगरा) रामचरित-मानस के प्रमुख शब्दों का कोश है। तुलसी के संपूर्ण साहित्य के एक कोश का संकलन हरगोविन्द तिवारी ने लगभग 50 वर्षों में इस सदी के पूर्वार्ध में किया था। इन पंक्तियों के लेखक ने इसका संपादन (1949-1953) किया तथा छूटे हुए लगभग 6000 शब्द इसमें जोड़े। 'तुलसी शब्द सागर' नाम से प्रकाशित (1954, इलाहाबाद) यह कोश हिन्दी में, किसी एक साहित्यकार की प्रायः समस्त शब्दावली को समाहित कर लेने वाला प्रथम कोश था। इस प्रकार का एक दूसरा कोश डॉ० प्रेमनारायण टंडन का 'ब्रजभाषा सूर कोश' है, जिसमें सूर के प्रायः सारे शब्दों के साथ-साथ ब्रजभाषा के ऐसे भी शब्द समाहित हैं जो सूर में नहीं हैं। इसका कार्य 1946 में प्रारंभ हुआ था किन्तु पूरा कोश 1962 (लखनऊ) में प्रकाशित हुआ है। डॉ० हरदेव बाहरी का 'प्रसाद साहित्य कोश' (1957, इलाहाबाद) शब्द कोश न होकर ज्ञान कोश है। इसमें प्रसाद की सभी कृतियों का परिचय, विषयवस्तु-संक्षेप, प्रसाद की सूक्तियाँ, उनकी पुस्तकों में आए, पात्र, स्थान, जाति, पेड़-पौधे आदि वर्णानुक्रम से दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, इसमें कामकाजी भी है, चाणक्य (चंद्रगुप्त) भी, हिमालय (कामायनी तथा अजातशत्रु) भी तथा अमीनाबाद पार्क (कंकाल) भी। सुधाकर पांडेय के 'प्रसाद काव्य कोश' (1957, बनारस) में प्रसाद के केवल काव्य ग्रन्थों के शब्द-संदर्भ तथा अर्थ दिए गए हैं। बद्रीदास अग्रवाल का 'मानस शब्द-सागर' (1955, कलकत्ता) रामचरितमानस के शब्दों की अनुक्रमणी है। लगता है कि इसका प्रस्तुतकर्ता कोश में शब्द-क्रम की वर्तमानकालीन स्वीकृत पद्धति से परिचित नहीं है। 'अं' से प्रारंभ होने वाले शब्द स्वरों के बाद में रखे गए हैं तथा इसी प्रकार त्र, ज्ञ वाले शब्द व्यंजनों के बाद। प्रायः दोहे के ऊपर आने वाली चौपाइयाँ दोहे के साथ मानी जाती हैं, किन्तु इसमें नीचे की चौपाइयों को साथ लिया गया है, जो परंपरा-विरुद्ध है। समासों को तोड़ने के कारण ऐसे कई शब्द जो मानस में हैं, इस कोश में नहीं पाए जा सकते, उदाहरणार्थ, 'उदक' केवल 'पादोदक' रूप में दिया गया है। इधर भारत सरकार ने कबीर, बीसलदेव रासो, साकेत, कामायनी आदि कुछ ग्रन्थों की शब्दानुक्रमणियाँ बनवाई हैं। कबीर की अनुक्रमणी डॉ० पारसनाथ तिवारी, साकेत की डॉ० उमाकांत गोयल

तथा कामायनी की प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने तैयार की है। शीघ्र ही ये प्रकाशित हो रही हैं।

**बोलीकोश**—हिन्दी की कुछ बोलियों के भी कोश बने हैं, जो निम्नांकित हैं : (1) Notes, and a short vocabulary of the Hinduvee dialect of Bundelkhand—सी० वी० लीच, जर्नल ऑफ़ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, 1843। (2) अवधी कोश—रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर,' 1955, इलाहाबाद। (3) राजस्थानी सबद कोस—सीताराम लालस; सं० नित्यानन्द, 1961। यह अंशतः प्रकाशित है। इस प्रसंग में नारायणसिंह भाटी के डिंगल कोश (1957, जोधपुर) का नाम उल्लेख्य है, यद्यपि यह आधुनिक राजस्थानी का कोश नहीं है। इसमें डिंगल के मध्यकाल में लिखे गए 6 पर्यायवाची, 1 अनेकार्थी तथा 2 एकाक्षरी कोश संगृहीत हैं। (4) मैथिली कोश। (5) सूर ब्रजभाषा कोश—प्रेमनारायण टंडन, 1962, लखनऊ। इसमें सूर के शब्दों के अतिरिक्त ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले अन्य शब्द भी हैं। (6) ताजुज्बेकी कोश—इन पंक्तियों के लेखक ने रूस में बोली जाने वाली हिन्दी बोली ताजुज्बेकी का एक कोश 1964 में सम्पादित किया था। 'ताजुज्बेकी' पुस्तक के परिशिष्ट में यह प्रकाशित है।

भोजपुरी, मगही, मैथिली, ब्रज, हरियानी, अवधी, बुन्देली आदि की कृषि एवं पारिभाषिक शब्दावली पर भी काम हो चुके हैं। प्रकाशित कार्यों का उल्लेख पीछे 'कृषि' विषयक पारिभाषिक कोशों के प्रसंग में किया जा चुका है।

**मुहावरा कोश**—हिन्दी के मुहावरा कोशों की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। 18वीं सदी में शब्दकोशों में तो मुहावरे मिल जाते हैं, किन्तु उनके स्वतन्त्र संग्रह नहीं मिलते। इस ओर ध्यान वर्तमान सदी के प्रथम चरण में गया और तब से उल्लेख्य कोश 9-10 ही निकले हैं : (1) हिन्दी मुहावरे—रामदहिन मिश्र, 1923, बाँकीपुर। (2) हिन्दुस्तानी मुहावरा कोश—रसूल अहमद। (3) लोकोक्तियाँ और मुहावरे—बहादुर चन्द्र, 1932, लाहौर। (4) हिन्दी मुहावरा कोश—जम्बुनाथन, 1935, बंगलौर। (5) हिन्दी मुहावरा कोश—आर० जे० सरहिन्दी, 1937, इलाहाबाद। (6) हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप शर्मा दिनकर, 1938, कलकत्ता। (7) हिन्दुस्तानी मुहावरे—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, 1940, कलकत्ता। (8) हिन्दी मुहावरा कोश—भोलानाथ तिवारी, प्रथम संस्करण 1951, द्वि० सं० 1964, इलाहाबाद। (9) वृहत् मुहावरा कोश (प्रथम भाग)—रामदहिन मिश्र, 1959, पटना। हिन्दी में एक अच्छे मुहावरा कोश की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है।

**लोकोक्ति कोश**—हिन्दी लोकोक्तियों की ओर सबसे पहले मध्ययुग में लोगों का ध्यान गया। इस प्रकार का प्राचीनतम संग्रह, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, जायसी का 'मसलानामा' है, जिसमें 71 लोकोक्तियाँ हैं। दूसरा संग्रह 'लोकोक्ति रस कौमुदी' है, जिसमें लगभग 300 लोकोक्तियाँ हैं। यह भारत जीवन प्रेस, काशी से छप (1890 ई०) चुका है। पहलवानदास की, 'उपखान विवेक वाणी' (19वीं सदी, प्रथम चरण) तथा प्रतापनारायण मिश्र का 'लोकोक्ति

शतक' भी लोकोक्तियों के अच्छे संग्रह हैं। जहाँ तक आधुनिक अर्थ में लोकोक्ति
के कोशों का प्रश्न है, सबसे पहले रोबक का ध्यान इस ओर गया और तब से अब
तक हिन्दी और हिन्दी प्रदेश की बोलियों के अनेक संग्रह निकल चुके हैं, जिनमें
प्रमुख निम्नांकित हैं : (1) A Collection of Proverbs and Proverbial
Phrases in the Persian and Hindoostanee language—थामस रोबक,
1824, कलकत्ता। (2) A Dict. of Hindustani Proverbs—फ़ैलन, 1884।
(3) महबूबुल अमसाल—महबूब आलम, 1887। इसमें हिन्दी, पंजाबी, फ़ारसी,
अरबी तथा अंग्रेज़ी की लोकोक्तियाँ हैं। (4) कहावत कल्पद्रुम—दर्याव सिंह,
बम्बई, 1897 ई०। इसमें हिन्दी, अंग्रेज़ी, गुजराती, संस्कृत, फ़ारसी और मराठी
की कहावतें हैं। (5) कहावत संग्रह—संतप्रसाद, 1902, गया। (6) 'लोकोक्ति'
या 'कहावत'—सिद्धेश्वर शर्मा, 1907, बनारस। (7) रामरत्न लोकोक्ति
संग्रह—रामरत्न अध्यापक, 1915 (दूसरा संस्करण) आगरा। (8) हिन्दी
लोकोक्ति कोश—विश्वम्भरनाथ खत्री, 1923, कलकत्ता। (9) घाघ और
भड्डरी—रामनरेश त्रिपाठी, 1931, इलाहाबाद। इसमें घाघ और भड्डरी की
कहावतें हैं। (10) लोकोक्तियाँ और मुहावरे—बहादुरचन्द्र, 1932, लाहौर।
(11) खेती की कहावतें—व्यथित हृदय, 1939, बाँकीपुर। इसमें घाघ-भड्डरी
की कहावतें हैं। (12) लोकोक्ति कौमुदी—वुद्धिनाथ शर्मा। (13) गढ़वाली
परवाणा—शालिग्राम वैष्णव, 1929, लैंसडौन। (14) घाघ और भड्डरी
की कहावतें—श्रीकृष्ण शुक्ल, 1941, बनारस। (15) मेवाड़ की कहावतें,
भाग 1—लक्ष्मीलाल जोशी, 1946, उदयपुर। (16) राजस्थानी कहावतें—
नरोत्तम स्वामी, मुरलीधर व्यास, 1949, कलकत्ता। (17) हिन्दी मराठी
लोकोक्ति कोश—गणेश रघुनाथ वैशंपायन, 1950, पूना। (18) मालवी
कहावतें—रतनलाल मेहता, 1950, उदयपुर। (19) प्यास (कुमाऊनी भाषा
में प्रचलित कहावतों का संग्रह)—चन्द्रलाल चौधरी, 1950, अल्मोड़ा। (20)
हिन्दी-ओड़िया मुहावरे और कहावतें—लिंगराज मिश्र, अनसूयाप्रसाद पाठक,
1951, कटक। (21) ग्राम-साहित्य (तीसरा भाग)—रामनरेश त्रिपाठी,
1952, दिल्ली। इसमें काफ़ी कहावतें हैं। यों कहावतों के अतिरिक्त पहेलियाँ
आदि और चीज़ें भी हैं। (22) राजस्थानी भीलों की कहावतें—फूलजीभाई
भील, 1954, उदयपुर। (23) बुन्देली कहावत कोश—कृष्णानन्द गुप्त, 1960,
लखनऊ। (24) राजस्थानी कहावतें—कन्हैयालाल सहल, 1960, कलकत्ता।
(25) कहावत-कोश—भुवनेश्वरनाथ मिश्र, 1965, पटना। इसमें भोजपुरी,
मगही, मैथिली लोकोक्तियाँ हैं। (26) लोकोक्ति मालिका—कृष्णन नायर,
1965, त्रिवेन्द्रम। इसमें हिन्दी, मलयालम तथा अंग्रेज़ी लोकोक्तियाँ तुलनात्मक
रूप में दी गई हैं। (27) बृहद् हिन्दी लोकोक्ति कोश—प्रस्तुत पंक्तियों के
लेखक ने इस संग्रह का संपादन अभी पूरा किया है। इसमें हिन्दी तथा अनेक
भारतीय एवं अभारतीय भाषाओं एवं बोलियों की लोकोक्तियाँ तुलनात्मक रूप
में दी गई हैं। इस समय यह कोश प्रेस में है।

**चरित्र-कोश**—हिन्दी में पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के भी कुछ

कोश निकले हैं, जिनमें प्रमुख निम्नांकित सात हैं : (1) भारतीय चरिताम्बुधि—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, 1919, लखनऊ।(2)हिन्दी साहित्य की ग्रन्तर्कथाएँ—भोलानाथ तिवारी, 1952, दूसरा संस्करण 1962, इलाहाबाद। (3) हिन्दी कथा कोश—ग्रन्तिम रूप में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक द्वारा संपादित, 1954, इलाहाबाद।(4)हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2—धीरेन्द्र वर्मा तथा ग्रन्य लोग, 1963, बनारस। इसमें ग्रन्य बातों के ग्रतिरिक्त लेखकों, कवियों, पौराणिक पात्रों तथा ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियाँ भी हैं। (5)भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश—सिद्धेश्वर शास्त्री, 1964, पूना।(6)वाल्मीकि रामायण कोश—रामकुमार राय, 1965, काशी।(7)महाभारत कोश—रामकुमार राय, 1964, काशी।

**विषय-कोश**—हिन्दी में कुछ विषयों के भी कोश (मात्र पारिभाषिक प्रतिशब्दों के नहीं) निकले हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं : (1) समाजशास्त्रीय विश्वकोश—शत्रुघ्न त्रिपाठी। (2)साहित्य कोश का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी, 1955, दिल्ली। (3) भौगोलिक शब्दकोश ग्रौर परिभाषाएँ—ग्रमरनाथ कपूर, 1955, इलाहाबाद। (4) हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1—धीरेन्द्र वर्मा तथा ग्रन्य लोग, 1958, बनारस।(5)भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी, 1963; दिल्ली। (6) भाषाविज्ञान कोश—भोलानाथ तिवारी, 1964, बनारस। (7)मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन)—नरवणे, 1965, दिल्ली। (8) मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य)—नगेन्द्र, 1965, दिल्ली।

**विश्वकोश**—बँगला विश्वकोश के संपादक नरेन्द्रनाथ वसु ने प्रथम 'हिन्दी विश्वकोश' (1925)प्रकाशित किया था। इधर नागरी प्रचारिणी सभा 'हिन्दी विश्व कोश' निकाल रही है। इसके कई खंड निकल चुके हैं। सच पूछा जाय तो ये दोनों ही प्रयास ग्रभी प्रारंभिक हैं ग्रौर ऐसा लगता है कि हिन्दी में ग्रच्छे स्तर के विश्वकोश निकलने में ग्रभी समय लगेगा।

यह है हिन्दी कोशों का संक्षिप्त इतिहास। वस्तुतः हिन्दी में इस दिशा में जितना भी काम हुग्रा है, वह कुछ ग्रपवादों को छोड़कर बहुत उच्च स्तर का नहीं है। इसके लिए सुदीर्घ परंपरा की ग्रपेक्षा होती है, जबकि ग्राधुनिक ग्रर्थों में हिन्दी कोश की परंपरा बहुत पुरानी नहीं कही जा सकती। फिर भी, इधर थोड़े समय में हिन्दी ने कोशों की दिशा में जो प्रगति की है वह पर्याप्त ग्राशाप्रद है, ग्रौर वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी में ग्रपेक्षित स्तर के कोशों का निर्माण होने लगेगा।

# परिशिष्ट

## (क)

## ख़ालिक़वारी : हिन्दी का प्रथम कोश

ख़ालिक़वारी हिन्दी-फ़ारसी का छंदोबद्ध कोश है जिसे हिन्दी का प्रथम द्विभाषिक कोश होने का गौरव प्राप्त है। वैसे तो इसमें अरबी के भी शब्द हैं, और कुछ तुर्की के भी, किन्तु इसमें वाक्य अथवा वाक्यांश केवल हिन्दी या फ़ारसी के ही हैं, अतः इसे हिन्दी-फ़ारसी कोश ही कहा जाएगा। अरबी तथा तुर्की के तो इसमें केवल वे ही शब्द हैं, जो फ़ारसी भाषा के शब्द-भंडार के अंग रहे हैं।

यह विवाद का विषय रहा है कि ख़ालिक़वारी किस कवि की रचना है। इसे लेकर तीन प्रकार के मत व्यक्त किए गए हैं :

(क) ख़ालिक़वारी प्रसिद्ध फ़ारसी कवि अमीर ख़ुसरो की रचना है। हिन्दी और उर्दू के काफ़ी सारे विद्वान् इस पक्ष में हैं। उदाहरण के लिए, डॉ० श्यामसुन्दर दास ने (हिन्दी भाषा का विकास, पृ० ७८) लिखा है : 'ख़ुसरो' ने हिन्दी और अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रचार बढ़ाने तथा हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर भाव-विनिमय में सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से ख़ालिक़वारी नाम का एक कोष पद्य में बनाया था। कहते हैं कि इस कोष की लाखों प्रतियाँ लिखवाकर तथा ऊँटों पर लदवाकर सारे देश में बाँटी गई थीं। किंवदन्ती भी है :

एक लाख ऊँट सवा लाख गाड़ी।
तेहि पर लादी खालिकवारी ॥

इसी प्रकार डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी इसे ख़ुसरो की रचना कहा है (हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० 78), किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि इसका जो रूप प्राप्त है वह अधूरा है। इस अधूरे कहने का अर्थ यह है कि वे भी मूलतः ख़ालिक़वारी को बहुत बड़ी रचना मानते हैं, और यह भी मानते हैं कि प्राप्त रूप उसका अंश-मात्र है। उर्दू के प्रथम आलोचनाशास्त्री मुहम्मद हुसैन आज़ाद लिखते हैं : ख़ालिक़वारी जिसका इख़्तिसार आज तक बच्चों का वज़ीफ़ा है, कई बड़ी-बड़ी जिल्दों में थी। इसमें फ़ारसी की बहरों ने अव्वल असर किया और इसी से यह भी मालूम होता है कि उस वक़्त कौन-कौन-से अलफ़ाज़ मुस्तेमिल थे जो अब मतरूक हैं। इसके अलावा बहुत-सी पहेलियाँ अजीबो-ग़रीब लताफ़तों से अदा की हैं जिनसे मालूम होता है कि फ़ारसी के नमक ने हिन्दी के ज़ायके में क्या लुत्फ़ पैदा किया है।...भटियारी के लड़के के लिए ख़ालिक़वारी लिख दी (आबेहयात,
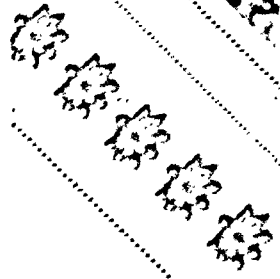
पृ० 71, 76, 86)। सईद ग्रहमद मारहरवी का कथन है कि ख़ालिक़वारी ग्ररवी-फ़ारसी-हिन्दी का मुख्तलिफ़ वहरों में लुग़त है। वह पहले कई वड़ी-वड़ी जिल्दों में थी, ग्राजकल जो ग्रामतौर पर रायज है, यह ग्रसल किताव का वहुत मुख्तसर-सा इंतिख़ाव है। मशहूर है कि ग्रमीर ख़ुसरो ने इसको किसी भटियारी की फ़रमाइश पर उसके दो लड़कों के वास्ते लिख दी थी। जव विरज भाषा ने वसते ग्रख़लाक़ से ग्ररवी-फ़ारसी ग्रलफ़ाज़ के मेहमानों को जगह दी तो एक नयी ज़वान पैदा होनी शुरू हुई, लेकिन वह मुद्दत तक दोहरों के रंग में जुहूर करती रही याने फ़ारसी की वहरें ग्रौर फ़ारसी के ख़्यालात उसमें न ग्राते थे। सवसे ग्रव्वल इसी खालिक़वारी में फ़ारसी वहरों ने ग्रपनी झलकें दिखाई है (हयाते ख़ुसरो, पृ० 126-127)। ग्रमीन चिरैयाकोटी विस्तार से ग्रपनी वात कहते हुए लिखते हैं : 'किताव की क़दामत साफ़ यह पता वतलाती है कि ये किताव ग्रहदे हज़रत ग्रमीर ख़ुसरो के मुत्तसिल ज़माने की तसनीफ़ है, जैसे 'चीतल' जो कि हज़रत ग्रमीर ख़ुसरो के ग्रहदे-ज़िन्दगी तक में एक हिन्दी सिक्के का नाम था ग्रौर हज़रत के क़रीव ग्रहद में ये मतरूक हो चला था। यहाँ तक कि उनके वाद तारीख़ में उसका नाम भी नहीं ग्राता, क्योंकि सलातीने हिंन्द की क़दीम सादगी जिस तरह ऐश-व-दौलत के सामानों से ग्रारास्ता हो गई थी, सिक्कों के सादा नाम भी ग्रशरफ़ी ग्रौर ग्रख़्तरे ज़र वग़ैरह-वग़ैरह तकल्लुफ़ात से वदल गए थे। वहरहाल 'चीतल' का चलन ग्रहदे-ख़ुसरवी से ग्रागे नहीं पाया जाता, या मुहावराते क़दीम जैसे 'मैं तुझ कहिया' (मैंने तुझसे कहा), 'तू कित रहिया' (तू कहाँ रहा), 'वाव उड़ानी' (हवा चली), ग्राखना (देखना), 'भाखना' (कहना), 'चाव' (शौक) वग़ैरह ग्रलफ़ाज़ की गवाही से खालिक़वारी का ज़मानए-तसनीफ़ ग्रहदे ख़ुसरो में क़तई तौर पर मुक़र्रर...हो सकता है। हम इस मुख्तसर को देखकर यही समझते हैं कि वच्चों को मुतरादिफ़ याद ग्रलफ़ाज़ कराने के लिए एक चीज़ है, लेकिन इस ज़खीम किताव की तदवीन से हज़रत ग्रमीर ख़ुसरो रहमतुल्लाह ग्रले का मंशा इससे कुछ ज्यादा था। उन्होंने यह किताव ऐसे वक़्त में लिखी थी जवकि मुसलमान ज़ौक-दर-ज़ौक वराहे खैवर वलख व वुखारा व ईरान व तूरान व तुर्किस्तान से मुगलों के हाथों तर्के-वतन करके हिन्दुस्तान ग्रा रहे थे, ग्रौर यहाँ पहुंचकर ज़वान न जानने की दुश्वारियों से शव-रोज़ उनका मुक़ाविला था ग्रौर ग्रहले हिन्द इन ताज़ा विलायत मेहमानों का माफ़ी-उज्ज़मीर समझने से ग्राजिज़ व परेशान थे। इन ग्रजनवियों में वाहम तारुफ़ कराने की ग़र्ज़ से हज़रत ग्रमीर ने उन तमाम लुग़ात व ग्रलफ़ाज़ को जो एक दूसरे की ज़वानों पर मौजूद ग्रौर कारग्रामद थे इस ख़ूवसूरती के साथ मुंसलिक कर दिया ग्रौर वेशक वह तमाम मजमुग्रा उन कई वड़ी जिल्दों में तमाम हुग्रा होगा, जिनके न मिलने पर ग्राज हमें हसरत है' (जवाहरे ख़ुसरवी, पृ० 5, 10)। मुहम्मद वहीद मिर्ज़ा ने पक्ष-विपक्ष की वातों को लेते हुए निष्कर्ष दिया है : 'ख़ालिक़वारी या उसका ज़्यादातर हिस्सा ग्रमीर ख़ुसरो की तसनीफ़ ज़रूर है' (ग्रमीर ख़ुसरो, पृ० 326)। मसऊद हुसैन रिज़वी भी इससे ख़ुसरो कृत मानते हैं, यद्यपि इसका उद्देश्य उनके ग्रनुसार कुछ ग्रौर है—'ख़ालिक़वारी ग़ालिवन वच्चों के लिए नहीं लिखी गई थी। ग्रमीर ख़ुसरो के ज़माने में चंगेज़ियों की ताख़्त व ताराज ने ईरान व तूरान

को ज़ेर-व-ज़बर कर दिया था। उनकी जदाल व कताल से तंग आकर हज़ारहा ईरानियों और तूरानियों ने हिन्दुस्तान में पनाह ली थी। इन लोगों को हिन्दुस्तानियों से बातचीत करने में बड़ी दिक़्क़त पड़ती थी। न वह इनकी बात समझते थे, न ये उनकी। क़यास कहता है कि इसी दिक़्क़त को दूर करने के लिए अमीर खुसरो ने फ़ारसी और हिन्दी के ज़रूरी हममानी यकजा करके नज़्म कर दिए होंगे (हिन्दुस्तानी (उर्दू पत्रिका), जनवरी 1931, पृ० 43)"।

(2) दूसरे वर्ग के लोग इसे खुसरो की रचना नहीं मानते। इसके अमीर खुसरो-कृत न होने की बात सबसे पहले प्रसिद्ध अनुसंधाता महमूद शीरानी ने कही। उन्होंने अपनी बात 'पंजाब में उर्दू' (पृ० 187) तथा 'खालिक़बारी' (भूमिका) इन दो पुस्तकों में कही है। शीरानी साहब को अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू के पुस्तकालय में खालिक़बारी की एक पांडुलिपि मिली, जिसका लिपिकाल 1774 ई० है। आरम्भ में छोटी-सी भूमिका है, जिसमें लेखक का नाम, पुस्तक का नाम तथा लेखन-काल दिया है। उनके द्वारा कही गई मुख्य बातें ये हैं—(क) यह जहाँगीर के समय के किसी ज़ियाउद्दीन खुसरो की रचना है। (ख) इसका नाम 'खालिक़बारी' न होकर 'हिफ़्ज़ुललिसान' है। (ग) बच्चों को फ़ारसी सिखाने के लिए बाबा इसहाक़ हलवाई के कहने से इसकी रचना की गई थी। बच्चों के लिए उन दिनों ऐसी बहुत-सी किताबें लिखी गई जैसे हामिदबारी, राज़कबारी, वाहिदबारी, अल्लाबारी, इज़दबारी, समदबारी आदि। (घ) 'मैं तुक कहिया' जैसे रूपों को बहुत पुराना कहा गया है, किन्तु वस्तुतः ये बहुत पुराने नहीं हैं। (ङ) 'चीतल' (जीतल) सिक्के के आधार पर भी इसको अमीर खुसरो से नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि यह बाद में भी था। आईन-ए-अकबरी में भी इसका उल्लेख मिलता है। (च) 'खुसरो शाह' कहने की परंपरा खुसरो के ज़माने में नहीं थी, अतः यह उस काल की रचना नहीं है। (छ) खुसरो की रचनाओं की प्राचीन सूचियाँ जो विभिन्न ग्रन्थों में हैं, उनमें कहीं भी खालिक़बारी का नाम नहीं है। (ज) इसमें छन्द-भंग तथा अर्थ की ग़लतियाँ हैं, अतः यह रचना महाकवि खुसरो की नहीं हो सकती। (झ) इसमें जो 'खुसरो' नाम है, वह तो किसी भी खुसरो का हो सकता है। खुसरो नाम के जाने कितने लोग हो चुके हैं। (ञ) खालिक़बारी में 'दाम' 'दमड़ा' शब्द हैं, जो अकबर के काल में थे, अतः यह ग्रन्थ उसके पहले का नहीं हो सकता। (ट) यह तूरानियों या ईरानियों के लिए नहीं लिखी गई है, क्योंकि ये लोग और पहले आ चुके थे। इन पंक्तियों के लेखक (भोलानाथ तिवारी) ने भी अपनी 'हिन्दी भाषा' (पृ० 128-129, संस्करण 1966) में लिखा था कि यह खुसरो की रचना नहीं है। मेरे तर्क ये रहे हैं—(क) अमीर खुसरो जैसे विद्वान् की रचना यदि खालिक़बारी होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि खालिक़बारी बहुत ही अव्यवस्थित है। कभी फ़ारसी शब्दों के समानार्थी हिन्दी शब्दादि दिए गए हैं, तो कभी वाक्यों के समानार्थी वाक्य। भाषा सीखने की दृष्टि से इन वाक्यों या शब्दों में कोई भी एकरूपता नहीं है। जो शब्द लिए गए हैं, उनमें सब ऐसे नहीं हैं, जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय, साथ ही प्रारम्भिक ज्ञान के लिए बहुत-से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द छूट भी गए हैं। जो

वाक्य दिए गए हैं, वे भी तुक या छन्द वैठाने की दृष्टि से लिए गए ज्ञात होते हैं। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से उनका प्रायः विल्कुल भी मूल्य नहीं है। कारक, काल-रचना ग्रादि की दृष्टि से भी ये महत्त्व नहीं रखते। (ख) छन्दों का विना किसी योजना के परिवर्तन ग्रौर कहीं-कहीं उनमें ग्रप्रवाह या दोष भी खालिक़वारी को महाकवि ख़ुसरो की रचना मानने में व्याघात उपस्थित करते हैं। (ग) बीच में ग्राता है—'तुर्की जानी ना।' तुर्की का विद्वान् ख़ुसरो यह लिखे कि उसे ग्रमुक शव्द की तुर्की नहीं ग्राती, यह बात कल्पनातीत है। यों सभी शव्दों के लिए तुर्की शव्द दिए भी नहीं गए हैं, ग्रतः ऐसा कथन बड़ा निरर्थक-सा लगता है। यह वात भी खालिक़वारी को ग्रमीर ख़ुसरो से सम्बद्ध करने में ग्रड़चन डालती है। (घ) खालिक़वारी के ग्रन्त में ग्राता है 'गदा भिखारी ख़ुसरोशाह,' यहाँ भी ग्रापत्ति उठाई जा सकती है कि 'शाह' क्यों कहा? जैसा कि लोगों ने कहा है कि ख़ुसरो के समय तक नामों के साथ इसे जोड़ने की परंपरा नहीं मिलती। (ङ) शव्दों की ग़लतियाँ भी हैं। हिन्दी 'काना' के लिए फ़ारसी शव्द 'कोर' दिया गया है, जवकि 'कोर' का ग्रर्थ 'ग्रन्धा' होता है। 'तिदर्व,' 'कुबक' ग्रौर 'हंस' को एक माना है, जवकि तीनों ग्रलग-ग्रलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुराज' तथा ग्रन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। खालिक़वारी से इस तरह की ग्रशुद्धियों के ग्रनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऐसी भद्दी ग़लतियाँ ख़ुसरो नहीं कर सकते, ग्रौर न ऐसी कम योग्यता के ग्रादमी को, जैसाकि खालिक़वारी का लेखक लगता है, ग़यासुद्दीन तुग़लक ग्रपने लड़के को हिन्दी पढ़ाने के लिए पुस्तक लिखने का ग्रादेश ही दे सकते हैं (कहा जाता है कि ग़यासुद्दीन तुग़लक के कहने से ग्रमीर ख़ुसरो ने उनके लड़कों को हिन्दी पढ़ाने के लिए इसे लिखा था)। उपर्युक्त बातों को देखते हुए यह कहना उचित नहीं लगता कि खालिक़वारी ख़ुसरो की रचना है।

(3) इन दो पक्षों के ग्रतिरिक्त एक तीसरा मत यह भी हो सकता है कि यह रचना मूलतः ख़ुसरो की है, किन्तु ग्राज जो उसका रूप है वह वहुत परिवर्तित ग्रौर कदाचित संक्षेपित है। ग्रव मेरा मत यही है ('हिन्दी कोशों की परंपरा,' भाषा-चिन्तन, पृ० 82)।

यहाँ पहले दोनों मतों—ख़ुसरो कृत है, ख़ुसरो कृत नहीं है—की कुछ मुख्य वातों को लें। (क) चिरैयाकोटी ने जो 'चीतल' या 'मैं तुम कहिया' की वात कही है, उससे इतना वड़ा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। यों 'चीतल' का उल्लेख ग्राइन-ए-ग्रकवरी तक में है, तथा 'मैं तुझ कहिया' जैसे प्रयोग वाद में भी मिलते हैं। (ख) किन्तु शीरानी साहव का या कहना भी ग़लत है कि 'दाम' 'दमड़ा' का प्रचलन ग्रकवर-काल में हुग्रा। वस्तुतः यह शव्द भारत में वहुत पुराना है। मूलतः यह शव्द यूनानी 'द्राख्मे' (Drakhme) है, जो सिकन्दर के साथ भारत में ग्राया। यह संस्कृत तथा प्राकृत ग्रादि में 'द्रम्य' 'दम्म' है। ग्ररवी-फ़ारसी में 'दिरम', 'दरम' रूप में भी यही शव्द है। यही 'दाम' ग्रादि रूपों में मिलता है। क्षतिपूरक दीर्घीकरण से 'दम्म' का ही 'दाम' वना जिसमें स्वार्थे प्रत्यय 'ड़ा' (जैसे मुख-मुखड़ा, टुक-टुकड़ा) लगने से 'दमड़ा' वना, जिसका ग्रल्पार्थक या स्त्रीलिंग 'दमड़ी' है।

साथ ही खालिक़बारी की सभी प्रतियों के पाठ में यह नहीं है।[1] (ग) ऐसे ही मैंने हिन्दी भाषा में 'जो आपत्ति उठाई है कि खुसरो जो स्वयं तुर्क थे, तुर्की जानते थे, कोश में कहें कि 'तुर्की जानी ना' यह बात समझ में नहीं आती। इसके उत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं : एक तो यह कि तुर्की में काफ़ी शब्द अरबी और फ़ारसी के हैं, अतः ज़रूरी नहीं कि सभी चीज़ों के लिए तुर्की नाम हों ही, दूसरे यह पंक्ति खालिक़बारी के सभी पाठों में नहीं है, अतः प्रक्षिप्त भी हो सकती है। (घ) 'खुसरो शाह' एक नाम रूप में नहीं आया है, बल्कि 'खुसरो' और 'शाह' पर्याय रूप में दिए गए हैं। दोनों का अर्थ 'बादशाह' है। साथ ही 'खुसरो' रचयिता का नाम भी है। (ङ) यह बात ठीक है कि खुसरो के ग्रन्थों की पुरानी सूचियों में 'खालिक़बारी' का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः उनमें उनकी किसी भी हिन्दी-रचना का उल्लेख नहीं है, क्योंकि उनकी गम्भीर रचनाएं केवल फ़ारसी में हैं, इसी कारण पुरानी प्रामाणिक सूचियों में केवल फ़ारसी ग्रन्थों के नाम हैं। किन्तु इसके साथ ही जैसे कुछ स्थानों पर यह उल्लेख है कि उन्होंने हिन्दी रचनाएँ कीं, उसी प्रकार कहीं-कहीं यह भी उल्लेख है कि उन्होंने खालिक़बारी की रचना की। उदाहरण के लिए, तजल्ली ने (देखिए—'हिन्दी कोशों की परंपरा,' भाषा-चिन्तन—भोलानाथ तिवारी, पृ० 83) अपने हिन्दी-फ़ारसी कोश 'अल्ला-खुदाई' (1650 ई०) में खुसरो तथा उनके ग्रन्थ खालिक़बारी ('बारी' रूप में) का उल्लेख किया है—

> शायद अज़ लुत्फ़े रहमन बारी।
> रुहे खुसरो तमामीदम यारी।

ऐसे ही औरंगज़ेब के समय में अब्दुल वासेह हाँसवी ने एक हिन्दी-फ़ारसी शब्द-कोश बनाया था जिसका नाम 'ग़रायबुललुग़ात' है। खान आरज़ू (जिनका वास्तविक नाम सिराजुद्दीन अली ख़ाँ था) ने हाँसवी के कोश में 'नवादिरुल अलफ़ाज़' रूप में परिवर्धन-परिवर्तन किए हैं। खान आरज़ू की मृत्यु 1756 ई० में हुई थी। इन्होंने 'उन्मन' और 'छुरा' के प्रसंग में खुसरो की खालिक़बारी का ज़िक्र किया है, जिसका अर्थ यह है कि उस समय ऐसा माना जाता था कि खालिक़बारी खुसरो की रचना है।

इस प्रकार 17वीं सदी से ही यह खुसरो के नाम से प्रसिद्ध है।

सारी बातों को देखते हुए निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि यह कोश प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो की रचना नहीं ही है। यों सनिश्चय यह कहने का बहुत प्रौढ़ आधार न होते हुए भी, कि यह उन्हीं अमीर खुसरो की है, संभावना उन्हीं की रचना होने की है। जहाँ तक शीरानी साहब के यह कहने का सम्बन्ध है कि यह किसी ज़ियाउद्दीन की है, असम्भव नहीं कि खुसरो की यह रचना मूलतः काफ़ी बड़ी रही हो, और ज़ियाउद्दीन नामक व्यक्ति ने उसी को अपने ढंग से संक्षेप करके इसहाक के कहने से बच्चों के लिए यह रूप दे दिया हो। शिरानी साहब

---

1 जो-जो प्रतियाँ मैंने देखी हैं उनमें क्रमशः 191, 192, 194. 215, 232 छन्द हैं। इस पुस्तक के अपने संस्करण में मैंने 194 छन्द दिए हैं (दे० अमीर ख़ुसरो और उनकी हिन्दी रचनाएँ)।

वाली पांडुलिपि की पुष्पिका में रचयिता के रूप में 'ज़ियाउद्दीन' के नाम का यह कारण हो सकता है। ऐसी स्थिति में खालिक़बारी के जितने भी वर्तमान रूप उपलब्ध हैं, उनकी अव्यवस्थाओं, कमियों और ग़लतियों का दायित्व मूल लेखक पर न होकर संक्षेप-कर्ता ज़ियाउद्दीन पर या वाद में उसमें प्रक्षिप्तांश जोड़ने वालों पर है। कहना न होगा कि आज खालिक़बारी के अनेक पाठ उपलब्ध हैं, और उनमें काफ़ी अन्तर है। मैंने अपना पाठ, जो अपनी पुस्तक 'अमीर खुसरो और उनकी हिन्दी रचनाएँ' में दिया है, इन्हीं के आधार पर तैयार किया है, यद्यपि मेरा यह दावा नहीं है कि पाठविज्ञान की दृष्टि से यह मेरा पाठ बहुत वैज्ञानिक है।

यों अगर कुछ लोग इस कोश को प्रसिद्ध अमीर खुसरो की रचना न मानें तब भी इसका महत्त्व विशेष कम नहीं होता, क्योंकि जहाँगीर के काल की रचना मानने पर भी, हिन्दी कोशों की परंपरा में यह काफ़ी प्राचीन कोश ठहरता है, अतः इसके ऐतिहासिक महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। एक बात और, महमूद शीरानी इसे जहाँगीर के काल की रचना मानते हैं, जब कि औरंगज़ेब के काल में, इसे अमीर खुसरो की रचना कहा गया है। एक पीढ़ी में ऐसी भूल नहीं हो सकती। अतः असम्भव नहीं कि मूलतः यह अमीर खुसरो की ही रचना हो।

खुसरो एटा ज़िले में पैदा हुए, अवध में भी कुछ दिन रहे तथा दिल्ली में काफ़ी रहे। खालिक़बारी के शब्द भी तीन प्रकार के हैं—खड़ीबोली के, व्रज भाषा के, पूर्वी के। अतः इस कोश के शब्द भी इसे अमीर खुसरो से सम्बद्ध होने की ओर कुछ संकेत करते हैं। दौलताबाद भी वे रहे जहाँ 'गोश्त' के लिए 'हेड़ा' शब्द चलता है। यों यह शब्द कबीर में भी आया है :

हेड़ा-रोटी खाय के सीस कटावे कौन।

निष्कर्षतः यह माना जा सकता है कि यह ग्रन्थ मूलतः ख़ुसरो की रचना है, किन्तु इसके प्राप्त रूप में लोगों ने काफ़ी परिवर्धन, परिवर्तन, संक्षेपण और प्रक्षेपण किए हैं।

खालिक़बारी क्यों लिखी गई, इसे लेकर भी विवाद रहा है। डॉ॰ श्यामसुन्दरदास के अनुसार हिंदी और अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रचार बढ़ाने तथा हिन्दू-मुसलमानों में विचार-विनिमय में सहायता पहुँचाने के लिए इसकी रचना हुई (हिन्दी भाषा का विकास, पृ॰ 78)। मुहम्मद हसन आज़ाद (आवेहयात, पृ॰ 86) तथा बहुत-से अन्य लोग इसे किसी भटियारी के लड़के के लिए लिखी मानते हैं। अमीन चिरैयाकोटी आदि के अनुसार उन ईरानी और तुर्की मुसलमानों के लिए यह लिखी गई जो भारत आ रहे थे तथा जिन्हें हिन्दी न समझने के कारण कठिनाई होती थी (जवाहरे खुसरवी, पृ॰ 10)। महमूद शीरानी के अनुसार बाबा इसहाक़ हलवाई के कहने से यह लिखी गई। एक मतानुसार ग़यासुदीन तुग़लक के कहने से उसे बेटे को हिन्दी पढ़ाने के लिए इसकी रचना की गई (हिन्दी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृ॰ 128-129)। व्रजरत्न दास के अनुसार अमीर ख़ुसरो ने अलाउदीन की आज्ञा से खालिक़बारी लिखी (उर्दू-साहित्य का इतिहास, पृ॰ 6)। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि हिन्दुस्तानियों को

फ़ारसी शब्दों का ज्ञान कराने के लिए इसकी रचना हुई। वस्तुतः इनमें कोई भी कथन बहुत सप्रमाण नहीं है।

यों इस बात के निर्णय के लिए निम्नांकित बातें महत्वपूर्ण हैं : (क) इस में शब्द हिन्दी, फ़ारसी, अरबी और तुर्की के हैं, किन्तु वाक्य या वाक्यांश केवल फ़ारसी या हिन्दी के हैं। (ख) इनमें भी फ़ारसी वाक्यों या वाक्यांशों की संख्या हिन्दी से अधिक है। (ग) साथ ही फ़ारसी वाक्य या वाक्यांश प्रायः सभी प्राप्त प्रतियों में समान रूप से पाए जाते हैं, उनमें पाठान्तर हैं भी तो बहुत कम, इसके विपरीत हिन्दी वाक्य तथा वाक्यांश में पाठभेद काफ़ी है, कुछ तो सभी प्रतियों में हैं भी नहीं। (घ) साथ ही कोशकार प्रायः फ़ारसी शब्द के लिए हिन्दी शब्द देने का यत्न करता दीखता है, (खाल तिल बाशद; संग पत्थर जानिए, अस्प मीरां हिंदवी घोड़ा चलाव, सोजन ओ रिश्तह बहिंदी सुई ताग, आदि) हिन्दी के लिए फ़ारसी शब्द नहीं। यदि ऐसे स्थल हैं भी तो कम। शायद केवल वहाँ, जहाँ छन्द की आवश्यकता ने ऐसा करने को मजबूर किया है। 'दर हिन्दी', 'दर हिन्दवी', 'बज़बान-ए-हिन्दवी' (हिन्दी या हिन्दवी में), 'बहिन्दी' (हिन्दी में) पद बार-बार कोश में आए हैं, जबकि 'दर ताज़ी' (अरबी में) कम, तथा 'बज़बान-ए-फ़ारसी' (फ़ारसी भाषा में) या इस प्रकार के पद और भी कम। इसके साथ ही जो शब्द इसमें आए हैं वे फ़ारसी का परिचय देने के लिए संकलित किए गए नहीं लगते, क्योंकि फ़ारसी दरबार की भाषा थी, शासन की भाषा थी, और ऐसे वातावरण के शब्द इस कोश में प्रायः नहीं के बराबर हैं। जो शब्द हैं; प्रायः दैनिक जीवन के हैं।

निष्कर्षतः ऐसा लगता है कि यह फ़ारसी माध्यम से हिन्दी का कोश है। इसका उद्देश्य है फ़ारसी शब्दों के लिए हिन्दी में प्रयुक्त समानार्थी शब्दों का ज्ञान कराना। फ़ारसी में अरबी तथा तुर्की शब्द भी हैं, अतः फ़ारसी के साथ अरबी (काफ़ी शब्द), तुर्की (बहुत कम) शब्द भी दिए गए हैं। असम्भव नहीं कि जो ईरानी, अरब, तुर्क यहाँ आए थे, उनको अपने दैनिक जीवन में हिन्दी या हिन्दवी-भाषी लोगों के सम्पर्क में आना पड़ता था, अतः उनकी दैनिक आवश्यकता के हिन्दी के शब्दों का ज्ञान कराने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया हो। हिन्दी वाक्य कदाचित केवल छन्द के कारण ही प्रायः प्रयुक्त किए हैं, क्योंकि व्यवस्थित रूप से उनका ज्ञान कराने का यत्न इसमें नहीं है। यदि फ़ारसी वाक्यों के समानार्थी हिन्दी वाक्यों का ज्ञान कराना होता तो कोश का स्वरूप कुछ भिन्न होता।

समवेततः खालिक़बारी में लगभग बारह सौ शब्द हैं, जिनमें प्रायः 4 तुर्की, 236 अरबी, 475 हिन्दी तथा 480 फ़ारसी के हैं। प्राचीन हिन्दी के शब्द-भंडार तथा अनेक हिन्दी शब्दों का ऐतिहासिक विकास जानने के लिए यह ग्रन्थ काफ़ी उपयोगी है। इस दृष्टि से इसका अध्ययन किया जाना चाहिए।

## (ख)

# हिन्दी विश्वकोश (सभा का) : कसौटी पर

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में संदर्भ-ग्रन्थों का कितना महत्त्व है, कहने की आवश्यकता नहीं। हमारा भारतीय वाङ्मय अन्य अनेकानेक क्षेत्रों की भाँति सन्दर्भ-ग्रन्थों के क्षेत्र में भी पर्याप्त अग्रणी रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यहाँ निघंटुओं, कोशों एवं अनुक्रमणियों आदि की परंपरा मिलती है। किन्तु आधुनिक पद्धति पर बनाए जाने वाले सन्दर्भ-ग्रन्थों की परम्परा यूरोपीय सम्पर्क के बाद ही सच्चे अर्थों में यहाँ प्रारम्भ हुई। विश्वकोश के क्षेत्र में भारत में बँगाली भाषा अग्रणी हुई। श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने 'बँगला विश्वकोश' का संपादन किया जिसका प्रकाशन 1911 में पूर्ण हुआ। श्री वसु ने ही अनेकानेक हिन्दी विद्वानों के सहयोग से बँगला विश्वकोश के आधार पर 25 भागों में 'हिन्दी विश्वकोश' प्रकाशित (1916 से 1925 तक) किया। और आगे चलकर मराठी, गुजराती आदि में भी कुछ ऐसे प्रयास हुए। महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश—जो एक प्रकार से विश्वकोश ही है—के प्रथम दो भाग भी हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हुए।

स्वतन्त्रता के उपरान्त सभी भारतीय भाषाओं में विश्वकोश की योजनाएँ बनीं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी विश्वकोश भी उसी शृंखला में है। इसे केन्द्रीय सरकार की सहायता से सभा ने प्रकाशित किया है।

इस तरह, यह विश्वकोश हिन्दी का तीसरा विश्वकोश है, यद्यपि इसे प्रथम भी कह सकते हैं, क्योंकि स्वतन्त्र रूप से हिन्दी का यही पहला विश्वकोश है। प्रथम दो, जैसा कि संकेत किया जा चुका है मूलतः बँगला तथा मराठी पर न्यूनाधिक रूप से आधारित थे।

1965 तक हिन्दी विश्वकोश के पाँच खंड प्रकाशित हुए थे। पहला 1960 में, दूसरा 62 में, तीसरा 63 में, चौथा 64 में, तथा पाँचवाँ 65 में। प्रस्तुत समीक्षा इन्हीं पर आधारित है। यों तो जब तक इसके सभी खंड प्रकाश में नहीं आ जाते इसका समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रकाशित खंडों के आधार पर जो प्रवृत्ति सामान्यतः दिखाई पड़ रही है, उसे लेकर मोटे रूप से कुछ बातें अवश्य कही जा सकती हैं। किन्तु उन बातों को लेने के पूर्व यह भी संकेत्य है कि हिन्दी में विश्वकोश अभी अपनी शैशवावस्था में है। विश्व के प्रसिद्ध विश्वकोश 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के प्रथम संस्करण (जो 18वीं सदी में

प्रकाशित हुआ था) को जो लोग देख चुके हैं, उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि विस्तार, प्रामाणिकता, शुद्धता तथा कोशोचित शैली आदि की दृष्टि से उसके प्रथम या प्रारम्भिक संस्करणों एवं वर्तमान संस्करण में आकाश-पाताल का अन्तर है। वस्तुतः विश्वकोश एक सुदीर्घ परम्परा के पश्चात् ही अपेक्षित स्वरूप ले पाता है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत हिन्दी विश्वकोश से हम बहुत अधिक आशा नहीं कर सकते, और इसमें यदि अनेकानेक कमियाँ मिलती हैं, तो उसके लिए हम केवल संपादक, संपादक-मंडल या प्रविष्टि-लेखकों को ही उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते हैं। उसका बहुत कुछ दोष हमारे यहाँ अपेक्षित परंपरा एवं वातावरण की कमी आदि भी है।

सभी प्रकार के कोशों में सबसे पहले हमारा ध्यान प्रविष्टि (entry) पर जाता है। वस्तुतः प्रविष्टि वह सूत्र है, जिसके सहारे पाठक कोश या विश्वकोश का उपयोग करता है। इसीलिए इसके चयन में बहुत सतर्कता अपेक्षित है। कोश के विस्तार को दृष्टि में रखते हुए यह चयन होना चाहिए ताकि कोई कम आवश्यक प्रविष्टि व्यर्थ में स्थान न पा जाय या आवश्यक प्रविष्टि छूट न जाय। इस दृष्टि से योग्य संपादक कदाचित् अपेक्षित सतर्कता नहीं बरत सके हैं। उदाहरण के लिए, 'उपकला' एवं 'उपचर्या' आवश्यक हैं, किन्तु 'उपग्रह' से अधिक आवश्यक नहीं कहे जा सकते। प्रस्तुत विश्वकोश में 'उपकला' और 'उपचर्या' तो हैं, किन्तु 'उपग्रह' नहीं है। इसी प्रकार 'उष्णदेशीय आयुर्विज्ञान' है, किन्तु 'उष्णकटिबन्ध' नहीं है। विश्वकोश के पाँचों खंडों में कुल प्रविष्टियाँ 4067 हैं, जिनमें इस प्रकार की अव्यवस्थाएँ शताधिक हैं।

'ताजमहल' विश्व की किसी भी भाषा के विश्वकोश के लिए अनिवार्यतः आवश्यक प्रविष्टि मानी जा सकती है, भारतीय भाषाओं के विश्वकोश—और उनमें भी हिन्दी के विश्वकोश के लिए तो कहना ही क्या? आश्चर्य है कि प्रस्तुत विश्वकोश में 'ताजमहल' नहीं है। इसी प्रकार 'आधुनिक चित्रकला,' 'उपमा' (उपमान दिया गया है), 'उल्लू,' 'ओस,' 'कटहल,' 'कत्थक', 'कथाकली,' 'करवा-चौथ,' 'कुटीर उद्योग,' 'किशोरावस्था' (adolescence), 'कुहासा' या 'कोहरा,' 'केशिका' (capillary), 'कैमरा,' 'कैलोरी,' 'कौवा,' 'खाँसी,' गुरुद्वारा,' 'घाटी' (valley), 'चलचित्र' (movies), 'छत्रक' (mushroom), 'छापामार युद्ध', 'छुई-मुई' (Mimosa pudica), 'जीवन बीमा' (Life insurance), 'जेब्रा,' 'टेलिविज़न,' 'ट्रांजिस्टर,' 'त्रिवेणी' तथा 'तितली' आदि अनेक अति आवश्यक प्रविष्टियाँ भी इसमें नहीं हैं। इनका छूट जाना विश्वकोश की उपादेयता के लिए निश्चित रूप से बहुत घातक है।

प्रविष्टियाँ वर्णानुक्रम से होनी चाहिए। इसकी भूलें भी प्रस्तुत विश्वकोश में मिल जाती हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। खंड तीन में 'खल्द,' 'खाद' और 'उर्वरक' तथा 'खादी' आदि शब्द क्रमानुकूल नहीं हैं। इन भूलों के कारण कई शब्द जो इस कोश में हैं, पाठक को नहीं मिल पाते। कहना न होगा कि इस प्रकार ग़लत क्रम में दी गई प्रविष्टियों का होना-न-होना बराबर है, क्योंकि उन्हें पाना बहुत कठिनसाध्य है।

प्रविष्टियाँ ऐसी होनी चाहिए कि एक ही सामग्री की पुनरुक्ति न हो। यदि ऐसा अपरिहार्य हो तो स्थान बचाने की दृष्टि से सामग्री एक स्थान, जहाँ वह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त हो, पर दी जानी चाहिए और दूसरे स्थान पर उसके अन्यत्र होने का संकेत कर दिया जाना चाहिए। कोश में इस बात का भी समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए, 'कीट' और 'कीट विज्ञान' दोनों ही प्रविष्टियों में लगभग एक ही सामग्री काफ़ी विस्तार से दी गई है। इसी प्रकार 'ढोर' के अन्तर्गत गाय तथा विभिन्न गोजातियों के विवरण तथा गाय के अन्तर्गत विभिन्न गोजातियों के विवरण में काफ़ी निवार्य पुनरुक्ति है तथा कहीं-कहीं परस्पर विरोध भी है।

विश्वकोश में प्रविष्टियों का प्रतिनिर्देश (cross-refrence) भी बहुत आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि किसी जीव या वस्तु आदि के लिए एक से अधिक शब्द प्रचलित हैं तो दोनों को यथा स्थान देकर, अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित शब्द के साथ अपेक्षित सामग्री देकर दूसरे शब्द के साथ केवल सन्दर्भ दे देना चाहिए। ऐसा न करने पर कभी-कभी अपेक्षित सामग्री के न मिलने की आशंका रहती है। प्रस्तुत कोश में 'कपोत' है, किन्तु कबूतर नहीं है। वस्तुतः 'कबूतर' का होना अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक था। टिप्पणी उसी के साथ होनी चाहिए थी। 'कपोत' यदि आवश्यक ही था तो उसके साथ 'दे० कबूतर' पर्याप्त होता। किन्तु यहाँ तो 'कबूतर' है ही नहीं। यह असंभव नहीं कि देखने वाला 'कबूतर' न पाकर यह समझ ले कि प्रस्तुत कोश में यह नहीं दिया गया है। उसका ध्यान 'कपोत' की ओर जाए ही, यह आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार 'आँख' नहीं है। शायद आगे 'नेत्र' हो। किन्तु आगे 'नेत्र' के दिए जाने से 'आँख' के छोड़ दिए जाने का औचित्य कदापि नहीं सिद्ध होता।

प्रविष्टियों में एकरूपता का भी प्रस्तुत कोश में विशेष ध्यान नहीं रखा गया है। उदाहरण के लिए, एक ओर तो 'अवधी भाषा और साहित्य,' 'असमिया भाषा और साहित्य,' 'चेक भाषा और साहित्य,' 'चीनी भाषा और साहित्य' जैसे संयुक्त शीर्षक हैं तो दूसरी ओर बिना किसी विशेष कारण के 'जापानी भाषा' और 'जापानी साहित्य' दो अलग-अलग शीर्षक हैं। एकरूपता की दृष्टि से इन्हें एक साथ रखना अधिक उचित था।

प्रविष्टियों की वर्तनी की ओर भी अनेक स्थलों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में 'क़ुरान' शब्द चलता है, न कि 'क़ुरआन'। यह ठीक है कि मूल शब्द 'क़ुरआन' ही है, किन्तु इसका कोष्ठक में उल्लेख पर्याप्त होता। इसी प्रकार हिन्दी में 'कोहनूर' चलता है न कि 'कोहेनूर' या 'कंधार' चलता है न कि 'कन्दहार'। इस प्रकार की अव्यवस्थाएँ और भी हैं। 'क़ाज़ी' और 'कागज' में पहले में शुद्ध उच्चारण देने का प्रयास है तो दूसरे में सामान्य। सर्वत्र एक ही प्रकार की नीति अपेक्षित थी।

हिन्दी वर्तनी में एकरूपता (बहन-बहिन, पहचान-पहिचान, अमरीका-अमेरिका, दिल्ली-देहली आदि) का अभाव है। हिन्दी विश्वकोश में भी अनेकरूपता है, यद्यपि संपादन के समय इसे कम किया जा सकता था। यदि केवल

एक उदाहरण द्वारा इस अनेकरूपता को अपने विराटतम रूप में दिखाना चाहें तो 'ह्वेनसांग' शब्द को ले सकते हैं। प्रस्तुत विश्वकोश के दूसरे खंड के 419 से 507 तक अर्थात् केवल 88 पृष्ठों में मुझे इसकी पांच वर्तनियां मिली हैं—

(1) हुयेनत्सांग (खंड 2, पृ० 445)
(2) युवान् च्वाङ् (खंड 2, पृ० 419)
(3) युवानच्वांग (खंड 2, पृ० 425)
(4) युवानच्यांग (खंड 2, पृ० 507)
(5) हुएनत्सांग (खंड 2, पृ० 450)

यों इसके अद्यावधि प्रकाशित खंडों में कम-से-कम 4-5 और भी वर्तनियां मेरे देखने में आई हैं :

(6) युवानच्वाङ् (खंड 2, पृ० 338)
(7) ह्वेनत्सांग (खंड 1, पृ० 208)
(8) ह्यूनत्सांग (खंड 1, पृ० 478)
(9) ह्वेनसांग (खंड 3, पृ० 468)

असम्भव नहीं कि इस शब्द की इन नौ के अतिरिक्त कुछ और भी वर्तनियां इस विश्वकोश में हों। पाठक कदाचित् इस बात की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे कि प्रविष्टि के रूप में इसकी वर्तनी प्रस्तुत विश्वकोश में किस रूप में रखी जाती है।

चालुक्य (खंड 3, पृ० 66)—चौलुक्य (खंड 3, पृ० 70) जैसे कुछ अन्य शब्दों में भी ऐसी अनेकरूपता है।

यों तो छापे की भूलें, किसी भी पुस्तक में सर्वथा निवार्य नहीं हैं, किन्तु विश्वकोश में इस दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सतर्कता अपेक्षित है। इसमें इस प्रकार की कुछ भूलें बहुत खटकती हैं। उदाहरणार्थ, 'विदारण' का 'विवरण' (उपनिषद् में), 'मरकारा' का 'मरेकाश' (कुर्ग में), 'पिशल' का 'पिरोल' (दंडी में) आदि। खंड 4 में पृ० 40 पर गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी की जन्मतिथि 1855 दी गई है, जब कि उनके बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने की तिथि 1805। स्पष्ट ही प्रूफ की गलती के कारण ही जन्म के 50 वर्ष पूर्व बी० ए० कर लेने की यह उलटबांसी बन गई है।

जहां तक विषयानुसार प्रविष्टियों का सम्बन्ध है, मुझे ऐसा लगा कि भौगोलिक नामों को सर्वाधिक लिया गया है। यों विश्वकोश में भौगोलिक नामों का होना बुरा नहीं है, किन्तु अफ्रीका, अमरीका के बिलकुल छोटे-छोटे नगरों पर लेखों ने इस विश्वकोश में कुछ असंतुलन-सा पैदा कर दिया है, इसमें संदेह नहीं। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि मूलतः यह विश्वकोश है, भूगोल का गजेटियर नहीं।

इस प्रकार भूगोल पर ध्यान तो अधिक दिया गया है, किन्तु भौगोलिक नामों पर जो टिप्पणियां दी गई हैं उनमें अनेकानेक स्थलों पर संक्षिप्ति, प्रामाणिकता, व्यवस्था तथा एकरूपता आदि का अभाव मिलता है। मेरा भौगोलिक ज्ञान बहुत अप्रौढ़ है, किन्तु मुझे भी अनेक टिप्पणियों में गलतियां मिलीं। इस प्रकार की कुछ अव्यवस्थाओं एवं अशुद्धियों आदि की ओर यहां संकेत करना अन्यथा न

नगरों के वर्णन में कहीं तो 1901 की जनसंख्या दी गई है, कहीं 1951 की, तो कहीं 1961 की। नगरों की परस्पर दूरी का निर्देश कहीं मील द्वारा किया गया है, तो कहीं किलोमीटर द्वारा। कुछ राज्यों के चित्र दिए गए हैं, किन्तु कुछ के नहीं। राज्य ही क्यों, देशों में भी यह अव्यवस्था है। उदाहरणार्थ, दक्षिणी अमरीका के विवरण के साथ उसका चित्र दिया गया है, किन्तु उत्तरी अमरीका के विवरण के साथ कोई चित्र नहीं है। अनन्तपुर नगर को मद्रास में वतलाया गया है, किन्तु यह कदाचित आंध्रप्रदेश में। 'गुंटुर' को भी मद्रास (खंड 2, पृ० 249) में वतलाया गया है, किन्तु वह भी कदाचित आंध्र में ही है। 'गंजाम' में वुरहानपुर की स्थिति कही गई है, किन्तु यह खंडवा में है। वहाँ सम्भवतः वरहामपुर है। इसी प्रकार ज़िंद, गुड़गाँव, कुर्ग, कुलपर्वत आदि में भी व्यौरे की ग़लतियाँ हैं।

विवरणात्मक एवं तथ्य-विपयक अशुद्धियाँ या कमियाँ और भी अनेक प्रकार की हैं। वस्तुतः आवश्यकता इस वात की है कि विभिन्न विपयों के विशेपज्ञों के पास संवद्ध विपयों की टिप्पणियाँ भेजकर संशोधित करा ली जाएँ। यहाँ मैं विभिन्न प्रकार की कुछ भूलों की ओर संकेत कर रहा हूँ। यदि पाठक क्षमा करें, तो मैं अपने से ही प्रारम्भ करूँ। खंड 3 में (पृ० 12 पर) मेरा (भोलानाथ तिवारी का) पता तेहरान विश्वविद्यालय, तेहरान (ईरान) दिया गया है, जवकि मैंने तेहरान विश्वविद्यालय आज तक कभी देखा ही नहीं। मैं था ताशकंद विश्वविद्यालय, ताशकंद (सोवियत संघ) में। 'कालिदास' में आया है—'गद्य के लिए वह शौरसेनी का उपयोग करता है, और पद्य के लिए महाराष्ट्री का।' यह वक्तव्य भ्रामक है, क्योंकि स्त्री एवं निम्न श्रेणी के पात्रों में ही यह वात मिलती है। जो पात्र संस्कृत में वोलते हैं उन पर यह नहीं लागू होती। 'गुणाढ्य' में वृहत्कथाश्लोकसंग्रह को क्षेमेन्द्रकृत कहा गया है, किन्तु यह रचना वुधस्वामी की है। क्षेमेन्द्र की रचना का नाम वृहत्कथामंजरी है। 'चक्रवाक' में 'कोकनद' को उसका पर्याय कहा गया है। वस्तुतः 'चक्रवाक' का पर्याय 'कोक' है। 'कोकनद' का अर्थ लाल कमल होता है। 'काव्य' में दंडी के काव्यादर्श से 'काव्यं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' उद्धृत किया गया है। ठीक श्लोकांश कदाचित् यह है—शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।' 'कोसल' में दक्षिण कोसल का कोई उल्लेख नहीं है। 'गुरु' में सिक्खों के दस गुरुओं की चर्चा अनावश्यक न होती। 'कुक्कुट युद्ध' में ईरान, चीन आदि में इसके अस्तित्व की चर्चा है, किन्तु प्राचीन भारत की कोई चर्चा नहीं है, जवकि भारत में इसके प्रचलन के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। 'गणेश' में उनकी पूजा-परंपरा आदि में अनार्य तत्व की ओर संकेत नहीं है। 'गुण' में व्याकरण में प्रयुक्त गुण-वृद्धि नहीं है।

किसी भी ग्रंथ में एक-दूसरे के विरोधी तथ्य पाठक को उलझाने वाले होते हैं। विश्वकोश जैसे प्रामाणिक आप्तग्रंथ में तो यह वात और भी अनपेक्षित है। किन्तु प्रस्तुत कोश में अनेक स्थलों पर विरोधी तथ्य दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, खंड 2, पृ० 296 पर कंचनचंगा को '28146 फुट ऊँचा, गौरीशंकर के वाद संसार का दूसरा सर्वोच्च पर्वत शिखर' कहा गया है। किन्तु खंड 4, पृ० 49 पर

गौरीशंकर की ऊँचाई 23440 फुट कही गई है। यदि गौरीशंकर की ऊँचाई 23440 फुट है, तो 28146 फुट ऊँचे कंचनचंगा से वह अधिक ऊँचा कैसे है? इसी प्रकार कन्नौज तथा कान्यकुब्ज में एवं 'ढोर' तथा 'गाय' के अन्तर्गत गोजातियों के वर्णन में भी परस्पर विरोध है। 'गुंटूर' को एक स्थान पर मद्रास में कहा गया है (खंड 2, पृ० 249), किन्तु दूसरे स्थान पर आंध्र में (खंड 3, पृ० 445)।

विवरण में उचित संतुलन का अभाव प्रस्तुत विश्वकोश में अनेक स्थलों पर खटकता है। उदाहरण के लिए, 'उपन्यास' पर एक कॉलम है, तो कहानी पर साढ़े तीन कॉलम। इसी प्रकार अटलांटिक महासागर का विवरण लगभग 50 पंक्तियों में है तो इंग्लिश चैनेल का 45 पंक्तियों में। अनेक स्थलों पर विषय-प्रतिपादन में एकरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए, रसायनशास्त्र की कुछ प्रविष्टियाँ देखी जा सकती हैं। एक ओर तो 'जर्मेनियम' का प्रतिपादन पर्याप्त उच्चकोटि का है। उसमें संकेत (symbol), परमाणु-क्रमांक (atomic number) तथा परमाणु-भार (atomic weight) आदि सभी का उल्लेख है, किन्तु 'आक्सीजन,' 'क्लोरीन,' 'आयोडीन' के प्रतिपादन बड़े अधूरे हैं। उनमें संकेत, परमाणु-क्रमांक, परमाणु-भार आदि अत्यन्त आवश्यक बातें छोड़ दी गई हैं, जिनके अभाव में टिप्पणियाँ बड़ी सतही हो गई हैं। इस प्रकार की कमियाँ अन्य कई विषयों में भी हैं।

पीछे संकेत किया जा चुका है कि प्रस्तुत कोश में 'ज़ेब्रा' नहीं है। देखते-दाखते 'चित्रगर्दभ' प्रविष्टि मिली। 'ज़ेब्रा' के लिए 'चित्रगर्दभ' शब्द का प्रयोग और वह भी प्रविष्टि के शीर्षक के रूप में किया गया है। प्रश्न यह उठता है कि यदि कोई 'ज़ेब्रा' देखना चाहे, तो वह कैसे जान सकता है कि कौन-सा शब्द उसे देखना चाहिए। 'चित्रगर्दभ' ज़ेब्रा के लिए हिन्दी में अति तो क्या अल्प प्रचलित शब्द भी नहीं है। शब्द-निर्माण एवं उसके प्रयोग की इतनी अधिक छूट कम-से-कम कोशकार को मेरे विचार में नहीं दी जानी चाहिए। वह शब्दकार नहीं है। खैर, मैं इस झगड़े में न पड़कर कि 'चित्रगर्दभ' 'ज़ेब्रा' का उपयुक्त प्रतिशब्द है या नहीं, केवल यह कहना चाहूँगा कि 'चित्रगर्दभ' के साथ ही यदि सामग्री देनी थी, तो भी 'ज़ेब्रा' को यथास्थान अवश्य देना चाहिए था और वहाँ 'दे० चित्रगर्दभ' संकेत होना चाहिए था। वस्तुतः इस प्रकार का यह अकेला उदाहरण नहीं है। इस प्रकार के अनेक शब्द प्रस्तुत विश्वकोश में दिए गए तो हैं, किन्तु उनके लिए प्रयुक्त प्रतिशब्द हिन्दी के प्रचलित शब्द नहीं हैं, अतः उन्हें संयोगवशात् तो पाया जा सकता है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन्हें खोज पाना सर्वथा असम्भव है। 'गर्दभ' और 'गदहा' दोनों ही कोश में नहीं हैं। सम्भव है किसी अन्य शब्द के अंतर्गत इस पर सामग्री हो, किन्तु वह किस काम की? इसी प्रकार 'उल्लू' या 'उलूक' नहीं है।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का अभाव है। जो थोड़े-बहुत बने भी हैं, उनके बारे में मतैक्य नहीं है। एक ही अंग्रेज़ी शब्द के लिए कोई व्यक्ति या संस्था एक हिन्दी शब्द के पक्ष में है, तो दूसरी संस्था या दूसरा व्यक्ति

यही नहीं, जिनके बारे में मतैक्य है, उनका भी समुचित प्रचार नहीं हुआ है। इसीलिए यह बहुत आवश्यक है कि हिन्दी विश्वकोश जैसे संदर्भ-ग्रंथों में इस प्रकार के सभी पारिभाषिक शब्दों के साथ कोष्ठक में अंग्रेज़ी पर्याय भी दिए जाएँ। प्रस्तुत विश्वकोश में इस बात का कुछ ध्यान रखा तो गया है, किन्तु काफ़ी (उपचर्या आदि) स्थानों पर अंग्रेज़ी पर्याय नहीं भी हैं, और इस अभाव के कारण अनेक स्थानों पर पाठक के समक्ष कठिनाई आना स्वाभाविक है। अनेक प्रविष्टियों के साथ अंग्रेज़ी शब्द दिया भी गया है, तो एकरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए, उष्मा के साथ कोष्ठक में लिखा है अंग्रेज़ी में 'हीट,' तो 'उद्यान विज्ञान' या 'ऊर्णाजिन' के साथ कोष्ठक में केवल 'हार्टिकल्चर' एवं 'फ़र' हैं और 'कंठार्ति' के साथ कोष्ठक में रोमन अंग्रेज़ी में Laryngitis है। इन तीन के अतिरिक्त कहीं-कहीं एक चौथी पद्धति भी है। उदाहरण के लिए, 'कंटशुंडी' के साथ कोष्ठक में नागराक्षर में 'अकांथोसेफ़ाला' तथा रोमन में Acanthocephala है। इसी प्रकार 'कपोतक' के साथ डव, (Dove) दोनों हैं। इन चारों के स्थान पर एक पद्धति ही अपेक्षित थी, कदाचित केवल रोमन में देना पर्याप्त होता।

अंत में छपाई आदि के विषय में भी दो शब्द कहे जा सकते हैं। छपाई में भी एकरूपता नहीं है। चौथे खंड के शीर्षक अपेक्षाकृत छोटे टाइप में हैं। साथ ही प्रविष्टियों के बीच रिक्त स्थान भी कम है। विश्वकोश स्थायी महत्त्व के होते हैं, किन्तु प्रस्तुत विश्वकोश की जिल्द इतनी सामान्य है कि बहुत जल्द वह फटने लगती है।

इस प्रकार सब कुछ ले-देकर प्रस्तुत विश्वकोश में काफ़ी कमियाँ हैं। किन्तु इन कमियों से विश्वकोश का महत्त्व कम नहीं होता। हमें आशा करनी चाहिए कि धीरे-धीरे परवर्ती संस्करणों में ये कमियाँ दूर होती जाएँगी।

• • •